दो सनातन माताएं - राम भक्त शबरी एवं कृष्ण भक्त सहजो बाई

लेखक
डॉ यतेंद्र शर्मा

दो सनातन माताएं - राम भक्त शबरी एवं कृष्ण भक्त सहजो बाई

लेखक
डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

३५मायना रिट्रीट, हिलरीज़, वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया – ६०२५

वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ईमेल: srkperth@outlook.com

DO SANATAN MATAEN – RAM BHAKT SHABRI EVAM KRISHNA BHAKT SAHAJO BAI
(HINDI)

ISBN: 978-1-7648041-4-1

Author / All rights Reserved

© Author: Dr. Yatendra Sharma

1st Edition: June 2024

E-Book

Published by: Shri Ram Katha Sansthan

35 Mayena Retreat, Hillarys
W.A. 6025, AUSTRALIA
Telephone: +61 8 94011543
Email: srkperth@outlook.com

अस्वीकरण

इस पुस्तक की सामग्री जनहित एवं सामान्य ज्ञान के लिए प्रदान की गई है| हमारा तद्भाव पाठक को कोई परामर्श देने का नहीं है| इस पुस्तक की सामग्री किसी भी प्रकार से विशिष्ट परामर्श का विकल्प नहीं है| आपको इस ज्ञान के आधार पर कोई भी निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक निपुण या विशेषज्ञ का परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए|

इस पुस्तक के लेखक, प्रकाशक और उनका कोई प्रतिनिधि किसी भी विषय में इस पुस्तक से सम्बंधित कोई प्रत्याभूति नहीं लेते| इस पुस्तक का पठन-पाठन-श्रवण पाठक स्वयं के संज्ञान से दायित्व ले कर ही करें|

यद्यपि हमने इस पुस्तक में सटीक ज्ञान देने का पूर्ण प्रयास किया है लेकिन किसी भी प्रकार कोई त्रुटि अथवा अकृता रह गई हो तो उसके लिए लेखक एवं प्रकाशक क्षमा प्रार्थी हैं और इसके परिणाम स्वरूप किसी विधि, सामाजिक, धार्मिक, इत्यादि का दायित्व नहीं लेते|

क्रमावली

अस्वीकरण........ 5
महान राम भक्त शबरी........ 8
प्रार्थना........ 9
राजकुमार राम का प्रथम जन्म दिन........ 10
महर्षि भारद्वाज का प्रयाग गुरुकुल........ 16
महाज्ञानी महर्षि भारद्वाज........ 17
महर्षि पुलस्त्य का गोवर्धन पर्वत को श्राप........ 19
कुर्तकी........ 23
दसराज्ञ युद्ध........ 24
महर्षि कुर्तुक एवं कुर्तकी का प्रयाग गमन........ 34
कुर्तकी का प्रयाग वास........ 45
भगवान् परशुराम का आगमन........ 47
सहस्त्रार्जुन वध........ 51
कुर्तकी के शोध........ 63
कुर्तकी का पूर्वजन्म........ 73
मंगला........ 79
श्रमणा........ 85
महर्षि मतंग........ 91
श्रमणा का पूर्व जन्म........ 98
शबरी नामकरण........ 109
शबरी का नया आश्रम........ 115
मारीचि से मित्रता........ 121
ब्रह्मऋषि नारद से मिलन........ 127
शबर सेन को मोक्ष एवं सूपर्णखा से भेंट........ 136
शांति प्रदायक महात्मा शबरी........ 143
श्री राम से मिलन एवं मोक्ष........ 149
श्री राम का राज्याभिषेक........ 155
कृष्ण भक्त सहजो बाई........ 159
आमुख........ 160
जन्म........ 165

बचपन एवं गुरु दीक्षा **176**
गुरु - संत शिरोमणी श्री चरण दास जी **183**
संत चरण दास जी के आश्रम में सहजो बाई का निवास **194**
सहज प्रकाश - एक झलक **207**
भगवान् कृष्ण दर्शन एवं समाधि **215**
श्री राम कथा संस्थान उद्देश्य 217
लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा 218

महान राम भक्त शबरी

प्रार्थना

भगवद्भक्तों में वैसे तो अनंत महात्मा, माताएं, ऋषिवरों आदि ने इस पृथ्वी पर अवतरण लिया है, लेकिन महात्मा शबरी एवं भक्त सहजो बाई का एक अलग ही स्थान है| भगवान् का कार्य निःस्वार्थ करते हुए उनकी भक्ति में लीन रह हमारे सामने इन दोनों ने साधुत्व का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है| मैं इस युग के महान साहित्यकार श्री संजीव कुमार श्रीवास्तव से सहमत होते हुए यह मानता हूँ कि प्रायः हमारे महान कथाकारों एवं इतिहासकारों ने अपने अपने महान ग्रंथों एवं काव्यों में नरत्व क्षेत्र को ही प्रधानता दी है| कुछ अपवादों के अतिरिक्त, जैसे महाकवि मैथली शरण गुप्त जी का 'साकेत', महाकवि अवधेश किशोर जी का 'श्रमणा' इत्यादि, कम ही ऐसे ग्रन्थ अथवा काव्य मिलते हैं जहां भारतीय नारियों के त्याग, उनकी भगवद्भक्ति और समर्पण का सचित्र वर्णन देखने को मिलता है| कुछ महान ग्रंथों, जैसे महर्षि वाल्मीकि जी की 'रामायण', महागोस्वामी तुलसी दास जी की 'श्रीरामचरितमानस', श्री केशव दास जी की 'रामचंद्रिका' इत्यादि, में अवश्य ही सनातन धर्म की महान नारियों, जैसे माता अनुसुइया, माता शबरी इत्यादि का कुछ उल्लेख तो अवश्य मिलता है परन्तु प्रधानतः इन सभी ग्रंथों का मुख्य उद्देश्य लोक चरित वर्णन ही रहा है|

इस धार्मिक पुस्तक, ' दो सनातन माताएं - राम भक्त शबरी एवं कृष्ण भक्त सहजो बाई' का उद्देश्य महान राम भक्त शबरी एवं महान कृष्ण भक्त सहजो बाई की जीवन गाथा को उद्धृत करना है| एक लंबे समय के अनुसंधान के पश्चात इस कृति की रचना संभव हो सकी है| इतिहासकार इन तथ्यों को संभवतः स्वीकार न करें| लेखक का उद्देश्य इतिहासकारों को नकारना एवं किसी की भावना को कोई ठेस पहुँचाना नहीं है| लेखक ने कुछ सनातन ग्रंथों का अध्ययन कर उनसे कुछ निचोड़ निकाल इस कृति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है| इस कथा का आधार विविध महर्षियों की संहिताएं, वाल्मीकि रामायण, श्रीरामचरितमानस, रामचंद्रिका, श्री अवधेश किशोर जी रचित श्रमणा, श्री संत चरणदास जी पर अनेक लेख एवं पुस्तकें, सहजो बाई साहित्य, अनगिनत लोक कथाएं, किवदंतियां एवं महापुरुषों के मुख वचन आदि हैं| लेखक इनकी सत्यता की कोई पुष्टि नहीं करता| आशा है कि लेखक का प्रयास अवश्य ही आपके हृदय को प्रिय लगेगा|

राजकुमार राम का प्रथम जन्म दिन

अवध में आज राजकुमार राम का प्रथम जन्म दिन मनाने की तैयारियां चल रहीं हैं| पिताश्री महाराजाधिराज चक्रवर्ती सम्राट दशरथ और तीनों माताएं, कौशल्या, कैकई एवं सुमित्रा, अत्यंत प्रसन्न हैं| महाराज के आदेश से अयोध्या नगरी इंद्रलोक के समान सजाई गई है| अयोध्या की सुंदरता का वर्णन करना वैसे तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, फिर भी इस छोटी बुद्धि द्वारा एवं महर्षियों ने जो अयोध्या की सुन्दरता का वर्णन किया है, वह अवश्य ही स्मरणीय है|

सरयू नदी के तट पर बसा हुआ यह सुन्दर अयोध्या नगर देवताओं के हृदय में भी ईर्ष्या जगा देता है| अयोध्या अर्थात अत्यंत सुन्दर, सुरक्षित, सुदृढ़ एवं अजेय नगर| महर्षि वाल्मीकि जी के अनुसार अयोध्या की स्थापना सरयू नदी के तट पर सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु के द्वारा की गई थी| इसकी स्थापना के काल का उल्लेख तो शास्त्रों में नहीं मिलता लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः सतयुग में इस की स्थापना की गई होगी| इसी वंश में अजेय चक्रवर्ती सम्राट इक्ष्वाकु हुए जिन्होंने अपनी राजधानी अयोध्या को बनाया| इन्हीं चक्रवर्ती सम्राट इक्ष्वाकु के वंशज त्रेता युग में चक्रवर्ती सम्राट दशरथ हैं जो वर्तमान में अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान हैं|

महाराज दशरथ का महल दिव्य स्वर्ण और रत्नों से जड़ित है| महल में मणि एवं रत्नों की अनेक रंगों की सुंदर ढली हुई फर्शें हैं| महल के चारों ओर अत्यंत सुंदर परकोटा बना हुआ है जिस पर सुंदर रंग बिरंगे कँगूरे बने हैं| गोस्वामी तुलसी दास जी श्रीरामचरितमानस में कहते हैं कि महल की सुंदरता का विवरण तो यह छोटी बुद्धि क्या करे, साधारण निवासी के गृह भी गगन चूमी अट्टालिकाओं के समान हैं| प्रत्येक गृह की छत पर शुभ शगुन दायक स्थापित कलश अपने दिव्य प्रकाश से मानो सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश को भी तिरस्कारित करते हैं| मणियों से सुसज्जित झरोखे ऐसे सुशोभित हैं जैसे सूर्य देव स्वयं अपनी उपस्थिति का भान अपने प्रकाश से कर रहे हैं| मूंगों की बनी हुई देहलियाँ एवं मणियों के खम्भे घनघोर काली रात्रि में भी सूर्य समान प्रकाशित होते रहते हैं| प्रत्येक गृह में देवी देवताओं की सुंदर चित्रशालाएँ हैं जो मुनियों के हृदय को भी लुभाने वाली हैं| सभी लोगों के आँगन भिन्न भिन्न प्रकार के पुष्पों की वाटिकाएँ से सुशोभित हैं जिनमें बहुत जातियों की सुंदर और ललित लताएँ वसंत समान फल फूल रहीं हैं|

एक वर्ष पूर्व आज ही के दिन के दिन चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को राजकुमार राम का जन्म हुआ था| वसंत ऋतु की सुंदरता अपनी चरम सीमा पर है| निःसंदेह वसंत समस्त ऋतुओं में सर्वश्रेष्ठ है| इसे ऋतुराज कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है| वृक्षों पर नव पल्लव अंकुरित हो रहे हैं| कलियाएँ खिलकर फूलों का रूप धारण कर रहीं हैं| कोयलों के मधुर कूकने से संगीत साम्राज्य का जैसे विस्तार हो रहा हो| लताएँ वृक्षों का आलिंगन करती प्रतीत होतीं हैं| खिले हुए अति सुगन्धित पुष्पों से चंहु ओर सुगन्ध का साम्राज्य फैला हुआ है| आम्र वृक्ष बौर से भरे हुए हैं| पुष्पों से झड़ता पराग ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वयं इन्द्र देव रंग बिरंगी मणियों के चूर्ण की वर्षा कर रहे हैं| पुष्पों पर मँडराते भंवरों की गुंजन ध्वनि और उद्यानों में नृत्य करती तितलियाँ अत्यंत शोभायमान हो रहीं हैं| खेतों में लहलहाते सरसों के पीले पुष्पों की सुंदरता देखते ही बनती है| ऐसा लगता है मानो पृथ्वी ने पीली साड़ी पहन रखी हो|

आज अयोध्या का प्रत्येक गृह एक बड़े उत्सव समान सजाया गया है| प्रत्येक नागरिक ने अपने गृह की स्वच्छता के बाद घर के दरवाजों को तोरण से सजाया है| स्थान स्थान पर रंगोली से घर आँगन सजे हुए हैं| रात्रि में प्रकाश हेतु घी के दीपों को श्रृंखला में सजाया गया है| रंग बिरंगे कांच के टुकड़ों से बने घड़े रूपी बर्तनों से दीप मालाओं को सजाकर समस्त मुख्य स्थानों की सुंदरता और शोभा बढ़ाई गई है| यह दृश्य देखते ही बनता है|

महाराज दशरथ के आज स्वयं के महल की सजावट का तो वर्णन कर पाना अति कठिन है| महल की दीवारों को अति सुन्दर रंग बिरंगे कांच और दर्पण से सजाया गया है| महल की छतों, फर्श के किनारे और दीवारों पर सुंदर अलंकरण चित्रित किए गए हैं| यहाँ दीवारों पर धार्मिक देवी देवताओं की आकृतियां अंकित की गई हैं| समस्त महल को विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत किया गया है| महल की सजावट के लिए स्वर्ण के अलंकरण का प्रयोग किया गया है|

महाराज दशरथ ने राजकुमार राम का जन्म दिन वैदिक रीति से मनाने के लिए गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ के साथ महर्षि श्रंगी एवं अन्य ऋषियों को आमंत्रित किया है| अंततः वह घड़ी आ गई जब भगवान् राम का जन्म हुआ था, दोपहर के बारह बजे| महर्षि वशिष्ठ एवं महर्षि श्रंगी के साथ साथ समस्त ऋषियों की वेद उच्चारण ध्वनि से समस्त वातावरण मनमोहक हो गया है|

जीवेम शरदः शतम्, बुध्येम शरदः शतम्, रोहेम शरदः शतम्, भवेम शरदः शतम्, भूयेम शरदः शतम्, भूयसीः शरदः शतात् |

ओ३म् उप प्रियं पनिन्पतं युवानमाहुतीवृधम् |
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ||
ओ३म् इंद्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् |
सर्वमायुर्जीव्यासम् ||
ओ३म् आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान जीव मा मृथाः |
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ||
ओ३म् शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान |
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ||
शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान |
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ||
ओ३म् सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ सवेभिरेवैः |
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ||
ओं जीवास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम |
ओं उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम ||
ओं सं जीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम |
ओं जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम ||

पूजा समाप्ति के बाद महाराज दशरथ ने समस्त ऋषि कुलों, ब्राह्मणों एवं निर्धनों के लिए अपना कोष खोल दिया| प्रत्येक ऋषि को सहस्त्र स्वर्ण मुद्राओं के साथ एक लक्ष्य गौ माताओं के दान से एवं समस्त ब्राह्मणों को न्यूनतम सौ स्वर्ण मुद्राओं एवं दस गौ माताओं से अलंकृत किया| निर्धनों को स्वर्ण एवं चांदी के सिक्कों से विदाई दी| वृहत भोज का आयोजन था जहाँ समस्त नगर वासियों के लिए भोजन की व्यवस्था थी|

महामंत्री सुमंत के मार्ग निर्देशन में यह भव्य समारोह संचालित किया जा रहा था| सायं चार बजे तक कार्यक्रम चला| इसके पश्चात महाराज दशरथ एवं सभी अतिथिगण विश्राम हेतु अतिथिगृह में अपने अपने स्थानों के लिए प्रस्थान कर गए| स्वयं महामंत्री सुमंत जी भी थोड़े विश्राम के लिए अपने गृह को प्रस्थान किए|

गृह के अंदर प्रवेश करने ही वाले थे कि घोड़े के टापों की ध्वनि ने उनका ध्यान आकर्षित किया| उन्होंने देखा कि घोड़े पर सवार कोई प्रतिष्ठित अधिकारी घायल अवस्था में उनके गृह की ओर बढ़ रहे हैं| समीप आते ही पहचाना, 'यह तो अरण्य क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारी अनंतदेव हैं|'

तुरंत अनंतदेव जी के पास पहुंचे| सहारा देकर उन्हें घोड़े से उतारा| एक सैनिक को तुरंत राजवैद्य को बुलाने के लिए भेजा| गृह के अंदर ले जाकर बिस्तर पर लिटाया तथा तुरंत जल पिलाया|

'यह आपकी ऐसी दशा कैसे हुई अनंत जी? किसका साहस कि चक्रवर्ती सम्राट के अति प्रतिष्ठित सैन्य एवं प्रशासनिक अधिकारी पर हाथ भी उठा सके?', सुमंत जी बोले|

अनंत जी को शीतल जल पीने एवं थोड़ा विश्राम करने के बाद ऊर्जा का संचालन हुआ| वह बोले, 'महामंत्री जी, अरण्य प्रदेश में राक्षसों ने फिर से उत्पात मचा दिया है| अचानक से हमला करते हैं| हमारे सभी गुप्तचरों को चुन चुन कर मार दिया जिस से हमें उनकी योजना का कोई भान नहीं हो पाता| आकस्मिक हमले से हैरान हमारे सैनिक उनका सामना करने के लिए तैयार नहीं हो पाते और हार का सामना करना पड़ता है| गुप्तचर व्यवस्था को सुदृढ़ करने का अति प्रयास किया परन्तु हमारी हर चाल हमारे विपरीत ही पड़ी| अभी इस हमले में हमारे अधिकतर सुरक्षा सैनिक मारे गए| मैंने स्वयं उनको ललकारा| मैं भी घायल हो गया| किसी प्रकार घोड़े का रुख अयोध्या की ओर किया ताकि मैं आपको यथा स्थिति का ज्ञान करा सकूं| भाग्य से जीवित आप तक पहुँच पाया|'

सुमंत जी गहन विचार में डूब गए| अनंतदेव जी ने सत्य ही कहा है, यह हमारी गुप्तचर व्यवस्था की असफलता ही है जिस कारण समय पर हमें शत्रुओं की योजना के बारे में पता नहीं चल पाता और आकस्मिक हमले से हमारे सुरक्षा सैनिकों को अत्यंत क्षति का सामना करना पड़ता है| अपनी गुप्तचर व्यवस्था को कैसे सुदृढ़ बनाया जाए, वह इस पर विचार कर ही रहे थे कि राजवैद्य जी का आगमन हो गया| राजवैद्य जी ने तुरंत अनंतदेव जी का प्राथमिक उपचार किया| इस गहन समस्या का समाधान महाराज स्वयं एवं गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी ही दे सकते हैं, ऐसा हृदय में विचार कर अनंतदेव

जी को साथ ले महामंत्री सुमंत जी तुरंत राजमहल को चल दिए| राजमहल के अतिथि कक्ष में पहुँच एक सैनिक के द्वारा महाराज को सूचित किया गया कि सुमंत जी एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर विचार विमर्श करना चाहते हैं| महाराजाधिराज तुरंत अपने कक्ष से अतिथि कक्ष में पधारे| गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी को भी आमंत्रण भेजा कि यदि संभव हो सके तो वह भी इस मंत्रणा में सम्मिलित हों| गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी का जीवन तो राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित था| राष्ट्र की कोई समस्या हो और उसका समाधान करने में उनकी मदद की आवश्यक्ता हो तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि महर्षि वशिष्ठ जी उपस्थित होने का प्रयास न करें|

महर्षि वशिष्ठ जी के आगमन पर अनंतदेव जी ने अरण्य क्षेत्र की समस्त घटनाओं की महाराज एवं महर्षि को जानकारी दी| सभी का यही एक मत था, ‘गुप्तचर व्यवस्था को सुद्दढ़ करना’| अचानक महर्षि वशिष्ठ जी के चेहरे पर मुस्कान बिखर गई| प्रभु की माया भी अनंत है| महर्षि श्रृंगी जी भी आज राजकुमार राम के प्रथम जन्म दिन पर आमंत्रित यहां उपस्थित हैं| उन्हें सादर इस मंत्रणा में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया जाए| गुरुदेव वशिष्ठ जी का यह सन्देश लेकर एक सैनिक तुरंत अतिथि गृह महर्षि श्रृंगी के पास गया| महर्षि वशिष्ठ जी का सन्देश सुन महर्षि श्रंगी जी तुरंत राजमहल के अतिथि गृह की ओर चल दिए|

अतिथि गृह पहुँचने पर स्वयं महर्षि वशिष्ठ जी एवं महाराज ने उनको सम्मान करते हुए एक ऊँचे आसन पर उन्हें बिठाया| महामंत्री एवं अनंतदेव जी ने इस अरण्य क्षेत्र की समस्या के बारे में उन्हें अवगत कराया|

समस्या को सुनने के बाद और सब से सहमति लेने के बाद महर्षि श्रंगी जी बोले, 'महर्षि वशिष्ठ जी, महाराज जी, महामंत्री जी एवं अनंतदेव जी, गुप्तचर व्यवस्था को सुद्दढ़ करने की अत्यंत आवश्यक्ता है| गुप्तचर व्यवस्था को सुद्दढ़ करने के लिए सर्व प्रथम एक नेतृत्व प्रदान करने वाले समर्थ गुप्तचर विशेषज्ञ की आवश्यक्ता है| जैसा मुझे प्रतीत होता है ऐसा गुप्तचर विशेषज्ञ आपकी राजसभा में नहीं है| आपको यह गुप्तचर विशेषज्ञ केवल महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल से ही मिल सकता है| उनके गुरुकुल में इसकी शिक्षा देने का विशेष प्रावधान है और जहाँ तक मेरी जानकारी है उन्होंने कुर्तकी को इसकी विशेष शिक्षा दी है| यदि महर्षि भारद्वाज जी से कुर्तकी की सेवाएं ले ली जाएं तो उनके नेतृत्व में आपकी गुप्तचर व्यवस्था सुद्दढ़ हो सकती है|’

‘साधुवाद, साधुवाद’, सभी ने उच्चारा| महर्षि भारद्वाज जी के गुरुकुल प्रयाग किसे भेजा जाए और कुर्तकी की सेवाएं अयोध्या राष्ट्र के लिए उनसे किस प्रकार माँगी जाएं, यह विचार महाराज ने रखा ही था कि गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी अपने आसन से करबद्ध खड़े हो गए और महर्षि श्रंगी जी को सम्बोधित करते हुए बोले, ‘हे महर्षि, महर्षि भारद्वाज आपका अत्यंत आदर करते हैं और आपकी कोई बात कभी नहीं टालते| मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि यदि आप प्रयाग जा सकें तो यह कार्य अवश्य ही संभव हो जाएगा|’

अपने पूज्य वरिष्ठ महर्षि वशिष्ठ के वचन सुन तुरंत महर्षि श्रंगी जी भी अपने आसन से खड़े हो गए और बोले, ‘प्रभु, आपका निर्देश मेरे लिए आपकी आज्ञा है| मैं यहां से शीघ्र, अति शीघ्र, महर्षि भारद्वाज जी के आश्रम के लिए प्रयाग प्रस्थान करूंगा और उनसे निवेदन कर अवश्य ही कुर्तकी की सेवाएं अयोध्या राष्ट्र के लिए मांगूँगा|’

उनके मधुर शब्दों को सुन महाराज ने तुरंत सुमंत जी को निर्देश दिया कि महर्षि श्रंगी जी की प्रयाग यात्रा का यथोचित प्रबंध किया जाए|

महर्षि भारद्वाज का प्रयाग गुरुकुल

महर्षि भारद्वाज का गुरुकुल माँ गंगा के तट पर प्रयाग राज में स्थित उस समय का विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा स्थल माना जाता है| सुना है कि यहां सैकड़ों की संख्या में देश विदेश से छात्र शिक्षा ग्रहण हेतु अध्ययन कर रहे हैं| महर्षि भारद्वाज जाति पाँति और लिंग भेद भाव से रहित होकर शिष्य की योग्यता के आधार पर ही अपने गुरुकुल में प्रवेश देते हैं| उनके गुरुकुल में आयुर्वेद, अस्त्र-शस्त्र, यंत्र से लेकर वेद-वेदान्तों की शिक्षा दी जाती है| ऐसा सुना गया है कि गुरुकुल को उन्होंने दस विभागों में विभाजित किया है जहाँ उचित आचार्यों के द्वारा हर विभाग से सम्बंधित विद्या दी जाती है| वह दस विभाग हैं - कृषि शास्त्र , जल शास्त्र, खनिज शास्त्र, नौका शास्त्र, रथ शास्त्र, अग्नि-यान शास्त्र, वेश्म शास्त्र, प्राकार शास्त्र, नगर रचना एवं यंत्र शास्त्र|

नानाविधानां वस्तूनां यंत्राणां कल्पसंपदा |
धातुनां साधनानां च वस्तूनां शिल्पसंज्ञितम् ||
कृषिर्जलं खनिश्चेति धातुखण्डं त्रिधाभिधम् ||
नौका-रथाग्नियानानां, कृतिसाधनमुच्ये |
वेश्म, प्राकार, नगर रचना वास्तु संज्ञितम् ||

यंत्र शास्त्र विभाग ने कुछ वर्ष पूर्व ही कुबेर देव के लिए वायुयान का अनुसंधान कर 'पुष्पक विमान' को निर्मित किया था जिसका पूर्ण वर्णन गुरुकुल की पत्रिका ‘यंत्र सर्वस्व’ में दिया गया है| सुना है कि लंकापति रावण ने युद्ध में कुबेर देव को हरा कर यह 'पुष्पक विमान' अब उनसे छीन लिया है और अपनी सेवा में लगा रखा है|

गुरुकुल की आयुर्वेदिक प्रयोगशाला में नित्य नई औषधियों के आविष्कार होते हैं| उन्होंने साधारण मनुष्य को रोग मुक्त एवं सौ से भी अधिक वर्ष तक जीवित रखने की औषधियों का अनुसंधान कर लिया है| वेद वेदान्तों के ज्ञान में तो उनके गुरुकुल की कोई समानता नहीं है| स्वयं ब्रह्म देव ने जिन महर्षि भारद्वाज को ऋग्वेद के सूत्र रचने की प्रेरणा दी हो, उनसे बड़ा वेदों का ज्ञानी कौन हो सकता है?

महाज्ञानी महर्षि भारद्वाज

शास्त्रों में इन्हें उतथ्य ऋषि का क्षेत्रज और देवगुरु बृहस्पति का पुत्र बतलाया गया है| इनकी माता ममता देवी हैं|

योऽङ्क्गारे्य ऋषिजमङ्गे तस्य पुरो बृहस्पषतः |
बृहस्पतेभमरद्वाजोषविथीषत य उच्यते ||

महर्षि भारद्वाज देवों के गुरु बृहस्पति और ममता देवी के प्रेम प्रणय से उत्पन्न पुत्र हैं| सामाजिक बहिष्कार के भय से इनकी माता ममता देवी ने इनका लालन पालन करने के लिए इन्हें मरुद्गण को सौंप दिया था| ऋग्वेद में उल्लेख है कि मरुद्गण महाज्ञानी हैं (प्रचेतसः मरुतः), बड़े दूरदर्शी हैं (दूरे दृशः), महान कवि एवं साहित्यिक हैं (कवयः मरुतः), अत्यंत कुशल एवं उत्तम उग्र सैनिक हैं (उग्राः मरुतः) तथा शत्रु को जड़ मूल से उखाड़कर फेंकने में समर्थ हैं (सुमाया मरुतः)| ऐसे गुणवान मरुद्गण का संरक्षण पा भारद्वाज जी की प्रखर बुद्धि ने अल्प अवधि में ही उनका समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया| मरुद्गण की प्रार्थना स्वीकार करते हुए सूर्यदेव ने उन्हें अपना शिष्य बना अस्त्र-शस्त्र और यंत्र विद्या दी| इंद्रदेव ने भी उन्हें अपना शिष्य बनाना स्वीकार किया और आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान की| तब मरुद्गण ने उन्हें ब्रह्मदेव की आराधना का आदेश दिया| ब्रह्मदेव भारद्वाज की आराधना से प्रसन्न हो स्वयं प्रकट हुए और उन्हें समस्त वेद, वेदान्तों का ज्ञान दिया|

उस समय पृथ्वी पर चक्रवर्ती सम्राट भरत का शासन था| चक्रवर्ती सम्राट भरत का विवाह विदर्भराज की तीन कन्याओं से हुआ था जिनसे उन्हें नौ पुत्रों की प्राप्ति हुई थी| सम्राट भरत के अनुसार इन पुत्रों में से कोई भी ऐसा नहीं था जो उनका उत्तराधिकारी बनने के उपयुक्त हो| सम्राट भरत की चाह थी कि उन्हें उन्हीं के समान शौर्यवान पुत्र प्राप्त हो जो उनके पश्चात पृथ्वी का सिंहासन संभाले| उनके राजपुरोहित और आध्यात्मिक गुरु महर्षि दीर्घतमस ने उन्हें मरुद्गण को प्रसन्न करने के लिए 'मरुत्सोम यज्ञ' करने की सलाह दी| महर्षि दीर्घतमस ने उन्हें बतलाया कि ऐसे पुत्र की प्राप्ति उनके अर्ध-भ्राता भारद्वाज के द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ से ही संभव है| अतः 'मरुत्सोम यज्ञ' कर मरुद्गण को प्रसन्न कर वह उनसे भारद्वाज को दत्तक पुत्र के रूप में मांग लें और तब भारद्वाज के द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ का अनुष्ठान करें|

चक्रवर्ती सम्राट भरत ने तब 'मरुत्सोम यज्ञ' किया| इस यज्ञ से प्रसन्न होकर मरुद्गण ने अपने पालित पुत्र 'भारद्वाज' को उपहार स्वरूप चक्रवर्ती सम्राट भरत को सौंप दिया| चक्रवर्ती सम्राट भरत के दत्तक पुत्र बनने के बाद भारद्वाज जी ने सम्राट भरत के लिए पुत्रेष्ठि यज्ञ अनुष्ठान किया| इससे उन्हें असित नाम के एक महान योद्धा पुत्र की प्राप्ति हुई जो चक्रवर्ती सम्राट भरत के बाद उनके सिंहासन पर बैठे और अश्वमेध यज्ञ कर चक्रवर्ती सम्राट बने| शास्त्रों में ऐसा वर्णित है कि चक्रवर्ती सम्राट भरत भारद्वाज को अपना युवराज बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया| उन्होंने सम्राट भरत से विनती की कि वह राजकुमार असित को युवराज बनाएं| उनके सुझाव पर और गुरुदेव महर्षि दीर्घतमस की आज्ञा से तब उन्होंने राजकुमार असित को युवराज घोषित कर दिया| अब भारद्वाज ने उनसे भारत भ्रमण करने की इच्छा प्रकट की| सम्राट की आज्ञा ले वह सर्वप्रथम ब्रज भूमि गोवर्धन पर्वत पर आए| उस समय गोवर्धन पर्वत महर्षि पुलस्त्य के श्रापवश वृक्षहीन थे|

महर्षि पुलस्त्य का गोवर्धन पर्वत को श्राप

एक बार महर्षि पुलस्त्य तीर्थ यात्रा करते हुए द्रोणांचल पर्वत पहुंचे| वहां उनके पुत्र गोवर्धन की सुंदरता और वैभवता को देख अत्यंत प्रसन्न हो गए| इस पर उन्होंने गोवर्धन को साथ ले जाने की इच्छा से उनके पिता द्रोणांचल पर्वत से निवेदन किया|

महर्षि पुलस्त्य द्रोणांचल पर्वत से बोले, ‘हे द्रोणांचल, तुम्हें विदित है कि मैं काशी में रहता हूं| मैं आपके पुत्र गोवर्धन को अपने साथ ले जाना चाहता हूं|’

काशी ले जाने पर अड़े महर्षि पुलस्त्य के निवेदन पर द्रोणांचल पर्वत पुत्र के लिए दुःखी तो बहुत हुए लेकिन पुत्र गोवर्धन पर्वत के समझाने पर उन्होंने अनुमति दे दी|

काशी जाने से पूर्व गोवर्धन पर्वत महर्षि पुलस्त्य से बोले, ‘हे प्रभु, मैं बहुत विशाल और भारी हूँ| आप मुझे काशी कैसे ले जाएंगे?’

इस पर महर्षि पुलस्त्य ने अपने तेज और बल के द्वारा हथेली पर रखकर उन्हें ले जाने की बात कही|

गोवर्धन ने महर्षि पुलस्त्य के यौगिक बल को प्रणाम करते हुए कहा, ’हे प्रभु, मेरी एक छोटी सी शर्त है| यदि आप ने मुझे एक बार हथेली में धारण करने के पश्चात कहीं उतार दिया तो मैं वहीं स्थापित हो जाऊँगा|’

गोवर्धन पर्वत के इस आग्रह को महर्षि पुलस्त्य ने स्वीकार कर लिया और गोवर्धन पर्वत को अपनी हथेली पर रखकर वह काशी चल दिए| महर्षि पुलस्त्य जब मथुरा क्षेत्र में पहुंचे तो गोवर्धन के मन में विचार आया, ‘भगवान श्री कृष्ण द्वापर युग में इसी धरती पर जन्म लेने वाले हैं और यहीं पर गाय चराने वाले हैं| ऐसे में वह उनके समीप रहकर मोक्ष प्राप्त करेंगे|’

यह सोचकर गोवर्धन पर्वत ने अपना भार अत्यंत अधिक कर लिया| उनके भार को उठाने में असमर्थ महर्षि पुलस्त्य ने उन्हें ब्रज भूमि में रख दिया| अब एक बार पृथ्वी पर

रख दिया तो गोवर्धन पर्वत को दिए वचनानुसार वह उन्हें दोबारा हथेली पर आने को बाधित नहीं कर सकते थे|

महर्षि पुलस्त्य को गोवर्धन पर्वत के इस छल पर क्रोध आ गया| क्रोधित होकर गोवर्धन पर्वत को श्रापित कर दिया, ‘ हे गोवर्धन, तुमने मेरे साथ छल किया है| मैं तुम्हें दंड स्वरुप श्राप देता हूँ| तुम्हारी समस्त सुंदरता नष्ट हो जाएगी| तुम वृक्ष विहीन हो जाओगे और तुम्हारा आकार भी निरंतर घटता जाएगा|’

श्राप सुनकर गोवर्धन रुदन करने लगे| महर्षि पुलस्त्य के चरणों पर गिरकर बोले, ‘हे भगवन, आप तो अन्तर्यामी हैं| आप जानते हैं कि भगवान् विष्णु स्वयं द्वापर युग में यहां कृष्णावतार में जन्म लेने वाले हैं| इंद्र के अभिमान को तोड़ने के लिए जब भगवान् एक पर्वत का सहारा लेंगे तो वह पर्वत मैं ही हुंगा| प्रभु की इच्छा से ही मेरे हृदय में यहां स्थापित होने की भावना आई है| मेरा इसमें कोई दोष नहीं है| मुझे क्षमा करें और श्रापमुक्त करें|’

गोवर्धन के वचनों को सुनकर महर्षि पुलस्त्य ने अपनी दिव्य दृष्टि जगाई और सत्यता जानी| भगवान् विष्णु ने गोवर्धन को ब्रज भूमि लाने के लिए उन्हें निमित्त बनाया है, यह जाना| एक ओर भगवान् के कार्य में सहायक होने की प्रसन्नता की अनुभूति, दूसरी ओर एक निर्दोष को श्राप देने का दुःख, महर्षि पुलस्त्य विषम स्थिति में आ गए| बिना सोचे समझे क्रोध कर गोवर्धन को श्राप देने के कृत्य की भगवान् से क्षमा याचना करने लगे| तभी उनके हृदय में एक नए विचार का संचार हुआ| गोवर्धन से बोले, ‘पुत्र, श्राप तो वापस नहीं लिया जा सकता| ब्राह्मण के मुख से निकले शब्द उस तरकश से निकले तीर के समान हैं जिन्हें वापस नहीं लिया जा सकता| लेकिन कालांतर में गुरु बृहस्पति के पुत्र भारद्वाज यहां पधारेंगे और तुम्हें श्राप मुक्त करेंगे|’

वृक्ष विहीन गोवर्धन पर्वत को देख भारद्वाज जी को दया आ गई| वह विष्णु देव की उपासना करने लगे और दीन भाव से प्रभु को पुकारने लगे, ‘हे भगवन, आप द्वापर युग में इस भूमि पर अवतार लेने वाले हैं और यही गोवर्धन पर्वत आपको कठिनाई में आश्रय देंगे| अतः उनकी दुविधा दूर करो और उन्हें फिर से सुंदरता का वरदान प्रदान करो|’

उनकी इस निःस्वार्थ तपस्या भाव से अति प्रसन्न हो भगवान् विष्णु ने स्वयं उनको वहां दर्शन दिए तथा महर्षि पुलस्त्य के श्राप से गोवर्धन पर्वत को मुक्त किया|

गोवर्धन पर्वत को भगवान् विष्णु से श्राप मुक्त कराकर भारद्वाज जी ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया| हिमालय पर्वत पर समुद्र तट से करीब ३,००० गज की ऊँचाई पर उन्हें एक अत्यंत सुन्दर स्थान दिखा| यहां की सुंदरता ने उनका हृदय जीत लिया| प्राकृतिक वैभव चारों ओर बिखरा पड़ा था| ऐसा लग रहा था कि प्रकृति अपने अनमोल कोष को मुक्त हस्त से लुटा रही है| हिमाच्छादित पर्वत श्रखलाएँ अद्भुत समाँ बाँध रहीं थीं| प्रातः कालीन सूर्य की किरणों से इनकी शोभा और भी निखर जाती थी| देवदार, चीड़ आदि आसमान को छूने वाले वृक्ष यहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे| छोटी छोटी नदियाँ, झीलें, वृक्ष, पशु, पक्षी सभी मिलकर यहां अद्भुत प्राकृतिक दृश्य उपस्थित कर रहे थे| भारद्वाज जी का मन यहां इतना रमा कि यहीं पास एक कंदरा में उन्होंने अपना निवास बना कर साधना करने का विचार बना लिया| भगवान् विष्णु की समाधि में वह लीन हो गए|

समाधि में लीन समय निकलता चला गया| जब उनकी साधना खुली तब भारतवर्ष में चक्रवर्ती सम्राट भागीरथ का शासन था| सम्राट भागीरथ जी ने घोर तपस्या से माता गंगा को प्रसन्न कर देवलोक से पृथ्वी पर आने के लिए मना लिया था| उनके पूर्वज कपिल मुनि के श्राप से भस्म हो गए थे| उन्हीं को मुक्ति दिलाने के लिए सम्राट भागीरथ ने यह घोर तप माँ गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए किया था| जहां से माँ गंगा देवलोक से पृथ्वी पर आईं, वह स्थान गंगोत्री भारद्वाज जी के साधना स्थल से कुछ ही दूरी पर था| माँ गंगा की कलकल ध्वनि ने उनका ध्यान उस ओर आकर्षित किया| गंगोत्री पर पहुंचे ही थे कि वहां उन्होंने एक अति सुन्दर अप्सरा को अर्ध नग्न अवस्था में गंगा में स्नान करते देखा| उनका हृदय इस सुन्दर अप्सरा के प्रेम में बंध गया| नहाने के पश्चात जब सुंदरी गंगा की गोद से निकलीं तो भारद्वाज जी ने इस अप्सरा से प्रणय निवेदन किया| अप्सरा ने भी भारद्वाज जी की कांति एवं सुंदरता से अत्यंत प्रभावित हो उनका प्रणय निवेदन स्वीकार किया| यह अप्सरा गंगा की भक्त घृताची थीं| गंगा के पृथ्वी लोक में आने के बाद वह गंगा के प्रेम में उनकी गोद में स्नान करने पृथ्वी लोक चली आईं थीं| गंगा के आशीर्वाद से दोनों ने गांधर्व विवाह किया और वह वहीं रहने लगे| समय बीतता गया| उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुए जिसका नाम उन्होंने द्रोण रखा| घृताची

को अब अपने स्वर्ग लोक की याद बहुत सताने लगी और एक दिन चुपके से वह भारद्वाज जी को छोड़कर स्वर्ग लोक चली गईं|

घृताची के इस प्रकार अचानक चले जाने से भारद्वाज जी का हृदय भी अब इस स्थान से उचाट हो गया| छोटे बच्चे द्रोण को लेकर वह हिमालय की ऊंची चोटियों से उतर कर माँ गंगा के समतल स्थान में आ गए| उनका प्रथम पड़ाव काशी रहा| यहां उन्होंने भगवान् शिव की आराधना की| प्रसन्न हो भगवान् शिव प्रगट हुए और उन्हें एक गुरुकुल की स्थापना करने का आदेश दिया और स्थान बताया, प्रयागराज| तब प्रयाग गंगा तट पर स्थित एक छोटा सा गांव ही था| भगवान् शिव की आज्ञानुसार भारद्वाज जी प्रयाग आ गए और वहां एक गुरुकुल की स्थापना की| समय आने पर उन्होंने राजकुमारी सुशीला से विवाह किया और गुरुकुल का संचालन करने लगे| आज त्रेता युग में यह गुरुकुल विश्व विख्यात है और समस्त विश्व का एक मात्र सबसे बड़ा शिक्षा स्थल बना हुआ है|

कुर्तकी

जैसा उपरोक्त वर्णित है, महर्षि श्रृंगी, महर्षि वशिष्ठ, महाराजाधिराज दशरथ, महामंत्री सुमंत एवं अरण्य वन के अयोध्या के प्रशासनिक अधिकारी श्री अनंत देव के मंत्रणा में अरण्य वन में राक्षसों के उत्पात को ना रोक पाने का कारण उपयुक्त गुप्तचर सेवा का अभाव पाया गया| गुप्तचर प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए महर्षि भारद्वाज की शिष्या गुप्तचर विशेषज्ञ एवं अस्त्र शस्त्र विद्या प्रवीण कुर्तकी की सेवाएं लेने का निश्चय किया गया और महर्षि श्रृंगी जी को महर्षि भरद्वाज जी के आश्रम में इस कार्य हेतु भेजा गया|

आचार्य कुर्तकी, महर्षि भारद्वाज की परम शिष्या, महर्षि कुर्तुक की पुत्री, प्रयाग गुरुकुल में अग्नियान शास्त्र विभाग की मुखिया एवं प्रयाग गुरुकुल की उपकुलपति थीं| उन्हें गुरुकुल में अस्त्र-शस्त्र ज्ञान, नए नए प्रकार के अस्त्रों की शोध और गुप्तचरी का विशेषज्ञ माना जाता था| इसके अतिरिक्त उनका आयुर्वेद ज्ञान एवं यंत्र शास्त्र ज्ञान भी अतुलनीय था| पुष्पक विमान निर्माण में उनकी मुख्य भूमिका थी| साथ ही अग्नि-वाण जैसे घातक अस्त्रों की भी उन्होंने खोज की थी| महर्षि भारद्वाज का उन्हें उत्तराधिकारी समझा जाता था|

लद्दाख में लेह नगर से करीब २०० मील दूर हिमालय पर्वतों की श्रृंखला में महर्षि कुर्तुक का आश्रम था| महर्षि वशिष्ठ जी के शिष्य महर्षि कुर्तुक ने अभी अभी दसराज्ञ युद्ध में गहन भूमिका निभाई थी| महर्षि कुर्तुक के साथ साथ उनकी किशोरी पुत्री कुर्तकी का रण कौशल इस युद्ध में देखते ही बनता था| यहीं उनकी प्रतिभा से प्रभावित महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें भगवान् विष्णु के त्रेता युग के अवतार श्री राम द्वारा उन्हें मोक्ष प्राप्ति का वरदान दिया था|

दसराज्ञ युद्ध

कितना भयानक युद्ध था दसराज्ञ युद्ध, यह सोचकर आज भी आचार्य कुर्तकी की रूह काँप जाती है| वैसे तो इस युद्ध में उस समय के विश्व के दस महापराक्रमी सम्राटों ने भाग लिया था, लेकिन विशेषतः यह युद्ध दो महान सिद्ध पुरुषों, एक ओर राजऋषि विश्वामित्र और दूसरी ओर महर्षि वशिष्ठ जी, के नेतृत्व में लड़ा गया था|

प्रजापति के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट कुश, इनके पुत्र कुशनाभ और सम्राट कुशनाभ के पुत्र सम्राट गाधि थे| महा शूरवीर एवं पराक्रमी विश्वरथ (बाद में जिनका नाम विश्वामित्र पड़ा) चक्रवर्ती सम्राट गाधि के पुत्र थे| चक्रवर्ती सम्राट गाधि के वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करने के बाद राजकुमार विश्वरथ सम्राट के सिंहासन पर पदासीन हुए|

विश्व विजय के लिए निकले सम्राट विश्वरथ अपनी सेना को लेकर एक समय महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में आए| उस समय महर्षि वशिष्ठ ईश्वर भक्ति में लीन होकर यज्ञ कर रहे थे| सम्राट विश्वरथ उन्हें प्रणाम कर वहीं बैठ गए| यज्ञ क्रिया से निवृत होकर महर्षि वशिष्ठ ने सम्राट विश्वरथ का हृदय से आदर सत्कार किया और उनसे कुछ दिन आश्रम में ही रह कर आतिथ्य ग्रहण करने का अनुरोध किया| इस पर सम्राट विश्वरथ विचार करने लगे कि उनकी विशाल सेना साथ में है| सेना सहित मेरा आतिथ्य करने में महर्षि वशिष्ठ जी को अत्यंत कष्ट होगा, अतः सम्राट विश्वरथ ने नम्रता पूर्वक प्रस्थान की अनुमति माँगी| किन्तु महर्षि वशिष्ठ जी के अत्यधिक अनुरोध पर थोड़े दिनों के लिये उन्होंने उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया| महर्षि वशिष्ठ जी ने गौ माता कामधेनु का आह्वान किया| माँ की अनुकम्पा से तुरंत सम्राट विश्वरथ तथा उनकी सेना के लिये छः प्रकार के व्यंजन तैयार हुए एवं साथ ही समस्त प्रकार के सुख, सुविधा की व्यवस्था हुई| महर्षि वशिष्ठ जी के आतिथ्य से सम्राट विश्वरथ और उनके साथ आई समस्त सेना अत्यंत प्रसन्न हुईं|

गौ माता कामधेनु का चमत्कार देखकर सम्राट विश्वरथ विस्मित हो गए| उन्होंने गौ माता को प्राप्त करने के विचार से महर्षि वशिष्ठ जी से कहा, 'मुनिवर, कामधेनु जैसी गौ वनवासियों के पास नहीं, सम्राटों के पास शोभा देती हैं, अतः आप इसे मुझे दे दीजिये| इसके बदले में मैं आपको सहस्रों स्वर्ण मुद्रायें दे सकता हूँ|'

इस पर महर्षि वशिष्ठ जी बोले, ‘राजन, यह गौ मेरा जीवन है, मेरी माँ है| अपनी माँ को मैं कैसे बेच सकता हूँ?’

महर्षि वशिष्ठ जी के गौ माँ को न देने पर अभिमान में चूर सम्राट विश्वरथ ने सैन्य बल के आधार पर बलात गौ को हड़प लेने का आदेश दे दिया| उनके सैनिक गौ माँ को हाँकने लगे| गौ माँ कामधेनु ने किसी प्रकार उन सैनिकों से अपना बन्धन छुड़ा लिया और महर्षि वशिष्ठ के पास आकर विलाप करने लगीं|

महर्षि वशिष्ठ बोले, ‘हे गौ माँ, सम्राट विश्वरथ मेरे अतिथि हैं| इन्हें मैं श्राप भी नहीं दे सकता और इनकी विशाल सेना से विजय भी प्राप्त नहीं कर सकता| मैं स्वयं को विवश अनुभव कर रहा हूँ|’

उनके इन वचनों को सुन कर गौ माँ कामधेनु ने कहा, ‘हे ब्रह्मर्षि, एक ब्राह्मण के बल के सामने क्षत्रिय का बल कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता| आप मुझे आज्ञा दीजिये| मैं एक क्षण में इस क्षत्रिय राजा को उसकी विशाल सेना सहित नष्ट कर दूँगी|’

कोई उपाय न देख कर महर्षि वशिष्ठ जी ने गौ माँ कामधेनु को सम्राट विश्वरथ से युद्ध की अनुमति दे दी|

अनुमति पाते ही गौ माँ कामधेनु ने योगबल से पह्लव सैनिकों की एक सेना उत्पन्न कर दी| वह सेना सम्राट विश्वरथ की सेना के साथ युद्ध करने लगी| सम्राट विश्वरथ ने अपने पराक्रम से समस्त पह्लव सेना का विनाश कर डाला| अपनी सेना का विनाश होते देखकर गौ माँ कामधेनु ने सहस्रों शक, हूण, बर्वर, यवन और काम्बोज सैनिक उत्पन्न कर दिये| सम्राट विश्वरथ ने उन सैनिकों का भी वध कर डाला| तब गौ माँ कामधेनु ने अत्यंत पराक्रमी मारक शस्त्रास्त्रों से युक्त पराक्रमी योद्धाओं को उत्पन्न किया जिन्होंने शीघ्र ही शत्रु सेना को गाजर मूली की भाँति काटना आरम्भ कर दिया| अपनी सेना का विनाश होते देख सम्राट विश्वरथ के सौ पुत्र अत्यन्त कुपित हो महर्षि वशिष्ठ जी को मारने दौड़े| महर्षि वशिष्ठ जी ने उनमें से एक पुत्र को छोड़ शेष सभी को भस्म कर दिया| अपनी सेना तथा पुत्रों के नष्ट हो जाने से सम्राट विश्वरथ बड़े दुःखी हुए और युद्ध में हार स्वीकार कर अपनी राजधानी लौट आए|

सम्राट विश्वरथ ने सोचा कि मेरी समस्त शक्तियां एक ब्राह्मण की शक्ति से अति सूक्ष्म हैं, अतः मुझे महर्षि वशिष्ठ से बदला लेने के लिए सिद्धियां प्राप्त करनी होंगी| अपने पुत्र को राज सिंहासन सौंप कर वह तपस्या करने के लिये हिमालय की कन्दराओं में चले गये| कठोर तपस्या करके सम्राट विश्वरथ ने महादेव को प्रसन्न कर लिया और उनसे दिव्य शक्तियों के साथ सम्पूर्ण धनुर्विद्या ज्ञान का वरदान प्राप्त कर लिया|

इस प्रकार सम्पूर्ण धनुर्विद्या ज्ञान प्राप्त कर सम्राट विश्वरथ प्रतिशोध की भावना से महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे| उन्हें ललकार कर सम्राट विश्वरथ ने अग्नि बाण चला दिया| अग्नि बाण से समस्त आश्रम में आग लग गई और आश्रमवासी भयभीत होकर इधर उधर भागने लगे| महर्षि वशिष्ठ ने भी अपना धनुष संभाल लिया और बोले, 'सम्राट विश्वरथ, मैं आपके सामने खड़ा हूँ, आप मुझ पर वार करें| आज मैं आपके अभिमान को चूर कर आप को बता दूँगा कि क्षात्र बल से ब्रह्म बल श्रेष्ठ है|'

क्रुद्ध होकर सम्राट विश्वरथ ने 'आग्नेयास्त्र', 'वरुणास्त्र', 'रुद्रास्त्र', 'ऐन्द्रास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र', सभी दिव्य अस्त्र एक साथ छोड़ दिये जिन्हें महर्षि वशिष्ठ ने अपने मारक अस्त्रों से मार्ग में ही नष्ट कर दिया| इस पर सम्राट विश्वरथ ने और भी अधिक क्रोधित होकर 'मानव', 'मोहन', 'गान्धर्व', 'जूंभण', 'दारण', 'वज्र', 'ब्रह्मपाश', 'कालपाश', 'वरुणपाश', 'पिनाक', 'दण्ड', 'पैशाच', 'क्रौंच', 'धर्मचक्र', 'कालचक्र', 'विष्णुचक्र', 'वायव्य', 'मंथन', 'कंकाल', 'मूसल', 'विद्याधर', 'कालास्त्र' आदि सभी अस्त्रों का प्रयोग कर डाला| महर्षि वशिष्ठ ने उन सब को नष्ट करके ब्रह्मास्त्र छोड़ने के लिये जब अपना धनुष उठाया ही था कि सभी देव, नर, नारी, किन्नर आदि भयभीत हो गये| महर्षि वशिष्ठ उस समय अत्यन्त क्रुद्ध थे अतः उन्होंने ब्रह्मास्त्र छोड़ ही दिया| ब्रह्मास्त्र की भयंकर ज्योति और गगन भेदी नाद से सारा संसार पीड़ा से तड़पने लगा| सब ऋषि, देव आदि उनसे प्रार्थना करने लगे कि आपने सम्राट विश्वरथ को परास्त कर दिया है, अब ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न हुई ज्वाला को शान्त करें| इस प्रार्थना से द्रवित होकर उन्होंने ब्रह्मास्त्र को वापस बुलाया और मन्त्रों से उसे शान्त किया|

पराजित होकर सम्राट विश्वरथ मणिहीन सर्प की भाँति पृथ्वी पर बैठ गये और सोचने लगे कि निःसंदेह क्षात्र बल से ब्रह्म बल ही श्रेष्ठ है| अब मैं तपस्या करके ब्राह्मण की पदवी और ब्रह्मत्व तेज प्राप्त करूँगा| इस प्रकार विचार करके वह अपनी पत्नी सहित दक्षिण दिशा की ओर चल दिये| उन्होंने तपस्या करते हुए अन्न का त्याग कर केवल

फलों पर जीवन यापन करना आरम्भ कर दिया| कई वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा, ‘हे राजऋषि, तुमने अपने तप से सब लोक जीत लिये हैं, वर मांगो| तप के प्रभाव से तुमने राजऋषि की उपाधि अर्जित कर ली है| अब समस्त ब्रह्माण्ड तुम्हें राजऋषि विश्वामित्र के नाम से सम्बोधित करेगा|’

ब्रह्मा से कई प्रकार के दिव्य अस्त्र-शस्त्र का वरदान मांगकर फिर से अपनी प्रतिशोध की ज्वाला को ठंडा करने के लिए उन्होंने महर्षि वशिष्ठ से युद्ध की योजना बनाई और इस प्रकार जन्म हुआ, दसराज्ञ युद्ध की भूमिका का|

राजऋषि विश्वामित्र ने भारतवर्ष के ऐसे दस राजाओं को एकत्रित किया जो महर्षि वशिष्ठ अथवा उनसे संरक्षित हस्ति सम्राट सुदास से किन्हीं न किन्हीं कारणों से रुष्ट थे| इनमें दस्यु सम्राट भेदा, नूरी (आधुनिक अफगानिस्तान का भाग) सम्राट अलीन, परुष्णि (आधुनिक रावी नदी घाटी) सम्राट अनु, बेताब घाटी सम्राट एवं महर्षि भृगु के वंशज ऋषि भृगु, बोलन दर्रा सम्राट भालन, गान्धार सम्राट द्रुह्यु, शाल्व सम्राट मत्स्य, पार्थीआ (आधुनिक ईरान) सम्राट परसु, सरस्वती नदी घाटी सम्राट पुरु एवं स्किथी सम्राट पणि प्रमुख थे|

सम्राट सुदास एवं उनके संरक्षक महर्षि वशिष्ठ जी के विरुद्ध एक भीषण महायुद्ध की घोषणा कर दी गई| रावी नदी तट के एक स्थान को इस युद्ध के लिए चुना गया|

सम्राट सुदास इस युद्ध की घोषणा से विचलित हो गए| गुप्तचरों ने बताया कि इन दस राज्यों के समूह के पास संयुक्त अतुलित बलशाली ६६,००० पैदल सेना, २०० रथ, २,००० घुड़सवार और ५० हाथियों की सेना है जबकि सम्राट सुदास के पास केवल ६,५०० पैदल सेना थी| सम्राट सुदास के पास गिने चुने युद्ध में प्रशिक्षित घोड़े एवं हाथी थे| महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें सांत्वना दी और ज्ञान दिया, ‘सत्यमेव जयते’| महर्षि वशिष्ठ ने बतलाया कि हमारे किसी भी प्रकार के उकसाने के बिना यह युद्ध हम पर थोपा जा रहा है| सम्राट सुदास आप क्षत्रिय हैं, इस से भाग नहीं सकते| आप निश्चिंत इस युद्ध का संचालन मुझे करने दीजिए, विजय अवश्य ही आपकी होगी| महर्षि वशिष्ठ जी को युद्ध संचालन का नेतृत्व दे सम्राट सुदास युद्ध की तैयारी में लग गए|

महर्षि वशिष्ठ जी के सामने दो समस्याएं थी| यदि युद्ध में राजऋषि विश्वामित्र दैविक अस्त्रों का प्रयोग करते हैं तो उसका उत्तर देना उन्हें भली भांति आता है| महर्षि अगस्त्य के भ्राता महर्षि वशिष्ठ जी को स्वयं ब्रह्मदेव एवं भगवान् विष्णु ने समस्त प्रकार के दैविक अस्त्रों की काट उन्हें बता रखी थी| उन्हें लगता था कि इसका भान अवश्य ही राजऋषि विश्वामित्र को है| संभवतः वह दैविक अस्त्रों का प्रयोग नहीं करेंगे| यदि उन्होंने पारम्पारिक अस्त्रों से युद्ध किया तो महर्षि वशिष्ठ के लिए यह अनीति होगी कि वह दैविक अस्त्रों का उपयोग करें| ऐसे में राजऋषि विश्वामित्र द्वारा संरक्षित एवं नेतृत्व प्राप्ति की हुई इन दस राजाओं की इतनी विशाल सेना, लगभग सम्राट सुदास से दस गुनी, का सामना कैसे किया जा सकता है? उन्हें तब महर्षि कुर्तुक का विचार आया| उन्होंने तुरंत अपने एक शिष्य को महर्षि कुर्तुक के आश्रम कुर्तुक लद्दाख को इस युद्ध में भाग लेने हेतु आमंत्रण देते हुई भेजा|

महर्षि वशिष्ठ जी जानते थे कि इन दस राजाओं की सेना के पास पारम्पारिक लकड़ी और पत्थर के बने हथियार हैं| महर्षि कुर्तुक ने लोहे से बने युद्ध हथियार, भाले, तलवार एवं तीरों इत्यादि का अन्वेषण किया है| इन लोहे के बने हथियारों की मार शत्रु सेना पर असहनीय होगी और वह अवश्य ही विचलित हो जाएगी, ऐसा विचार महर्षि वशिष्ठ करने लगे|

महर्षि कुर्तुक महर्षि वशिष्ठ जी के एक प्रतिभावान शिष्य थे| उनकी प्रतिभा से प्रभावित महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें 'महर्षि' की उपाधि से विभूषित किया था और उनको अपना स्वतंत्र आश्रम लद्दाख में स्थापित करने की अनुमति दी थी| लद्दाख में हिमालय की सुन्दर घाटिओं में उन्होंने अपना आश्रम स्थापित किया जो कुर्तुक के नाम से जाना जाता था|

महर्षि वशिष्ठ का सन्देश सुन महर्षि कुर्तुक ने तुरंत हस्ति प्रस्थान की तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया| उन्हें पता था कि महर्षि वशिष्ठ को इस युद्ध में भाग लेने के लिए उनके द्वारा अन्वेषित लोहे के हथियारों की आवश्यक्ता होगी, अतः उन्होंने जो भी उस समय लोहे के हथियार, तीर, भाले एवं तलवार आदि उपलब्ध थे, उनके साथ यात्रा की योजना बनाई| पुत्री कुर्तकी को साथ लिया| अत्यंत प्रतिभाशाली, कुशाग्र बुद्धि की कुर्तकी ने अपने पिता के साथ इन अस्त्रों का अन्वेषण किया था और वह इनको प्रयोग में लाने की कला में अत्यंत कुशल थीं|

महर्षि कुर्तुक हस्ति पहुंचे और अपने गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ को साष्टांग प्रणाम कर मिले| तब उन्होंने अपनी पुत्री कुर्तकी का परिचय भी महर्षि वशिष्ठ जी से कराया| अपने लोहे से बने हथियार महर्षि वशिष्ठ जी के सम्मुख रख दिए| इन हथियारों की संख्या बहुत कम थी अतः यह आवश्यक था कि इनकी संख्या में वृद्धि की जाए| महर्षि वशिष्ठ जी के आदेश पर तुरंत पूरे राज्य के लोहार उपस्थित हुई और उन्हें महर्षि कुर्तुक एवं उनकी पुत्री कुर्तकी के निर्देश में हथियार बनाने की आज्ञा दी गई| लोहारों की दिन रात की मेहनत से कुछ ही समय में हथियारों का भण्डार निर्मित हो गया|

निर्धारित समय पर सम्राट सुदास की सेना रावी नदी के तट युद्ध स्थल पर पहुँची और वहां एक स्वच्छ स्थान पर अपना पड़ाव डाला| महर्षि वशिष्ठ ने महर्षि कुर्तुक को सम्राट सुदास की ओर से सेनापति का भार संभालने का अनुरोध किया| महर्षि वशिष्ठ जी की आज्ञा सिर पर धारण कर पिता कुर्तुक एवं पुत्री कुर्तकी इस युद्ध की योजना में लग गए और व्यूह रचना प्रारम्भ की|

इधर राजऋषि विश्वामित्र ने अपनी सेना का नेतृत्व करने के लिए सम्राट अनु का चयन किया| परुष्णि सम्राट अनु इसी रावी नदी क्षेत्र के सम्राट थे और उन्हें युद्ध कला का विशेषज्ञ माना जाता था| रात्रि के द्वितीय पक्ष तक शिविर में सभी सम्राटों के साथ राजऋषि विश्वामित्र रण नीति पर विचार विमर्श करते रहे| तत्पश्चात, 'अगला दिन बहुत भयंकर होने वाला है, अब तुम सब लोग भी थोड़ा विश्राम कर लो', ऐसा कहकर राजऋषि विश्वामित्र जी विश्राम के लिए अपने शिविर में चले गए|

राजऋषि विश्वामित्र अपने शिविर में अपनी शैया पर लेटे सोने का प्रयास कर रहे थे| निद्रा देवी आने का नाम ही नहीं ले रहीं थीं| पुरानी स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क पर बुरी प्रकार छा रहीं थीं| महर्षि वशिष्ठ जी से दो बार पराजय का अपमान उन्हें रह रह कर क्रोधित और ग्लानि की अनुभूति करा रहा था|

'कल बस मैं अपने सारे अपमान का प्रतिशोध लूंगा', यह सोच कर उन्हें एक अत्यंत सुखद अनुभूति हुई| मेरे पास ६६,००० सशत्र सेना बल है जबकि सम्राट सुदास के बाद केवल ६,५००| मुख पर प्रसन्नता छा गई| कल गाजर मूली के समान मैं उनकी सेना को कुचल दूंगा| साथ में सम्राट सुदास को भी वीरगति प्रदान करूंगा| लेकिन महर्षि वशिष्ठ को वीरगति? नहीं, नहीं| मेरा उद्देश्य उन्हें वीरगति देना नहीं, बल्कि

उनको बंदी बना कर अपने अपमान का बदला लेना है और उनसे कामधेनु गौ को प्राप्त करना है| मैंने सेनापति सम्राट अनु एवं सभी अपनी सेना में सम्मिलित सम्राटों को आदेश दे ही दिया है कि वह महर्षि वशिष्ठ को किसी भी प्रकार की शारीरिक हानि न पहुंचाएं बल्कि बंदी बना कर मेरे सम्मुख उपस्थित करें| तभी नींद का एक झोंका आ गया| उन्होंने देखा, ब्रह्मदेव उनके सामने खड़े हैं| कुछ क्रोधित मुद्रा में लग रहे हैं|

'हे राजऋषि, कल के युद्ध में किसी प्रकार भी मेरे दिए दैविक अस्त्रों का उपयोग न करना| यदि तुमने ऐसा किया तो वशिष्ठ इसका भयंकर प्रत्युत्तर देंगे जो पूरी सृष्टि के लिए विनाशकारी होगा| ऐसा हुआ तो मैं तुम्हें भयंकर श्राप दूंगा|’ ब्रह्मदेव के यह कठोर शब्द सुन राजऋषि विश्वामित्र हड़बड़ा कर उठ गए|

इधर रात्रि के पहले पहर में महर्षि वशिष्ठ के शिविर में महर्षि वशिष्ठ, सम्राट सुदास, सेनापति महर्षि कुर्तुक और कुर्तकी रण नीति पर विचार विमर्श कर रहे थे|

महर्षि वशिष्ठ बोले, ‘राजऋषि विश्वामित्र के दस सम्राटों की सेना में हमसे दस गुना दल बल है| हम सीधी लड़ाई में उनसे विजय प्राप्त करने में असमर्थ हैं| हमें सोच समझ कर रण नीति बनानी होगी|’

तभी कुर्तकी के चेहरे पर मुस्कान आ गयी|

‘अवश्य महर्षि| यह युद्ध सत्य पर थोपा गया असत्य का उदाहरण है| हर प्रकार से, साम, दाम, दंड, भेद, और आवश्यक हुआ तो छल भी, कोई भी नीति उपयोग की जाए, विजय अवश्य प्राप्त करनी है,’ कुर्तकी बोलीं|

'अवश्य पुत्री, लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क में क्या चल रहा है?', पिता महर्षि कुर्तुक ने उत्सुकता पूर्वक पूछा| तब कुर्तकी ने अपनी पूरी रण नीति को सबके सम्मुख रखा|

'नियमित युद्ध क्षेत्र से २ मील की दूरी पर रावी नदी के तट पर ही एक विशाल पर्वत श्रृंखला है| इसमें प्रवेश करने के लिए एक संकरे मार्ग से जाना पड़ता है| हमारे सैनिक अपने आधुनिक लोहे के बने हथियारों, तीर, भाले एवं तलवारों आदि से युक्त इस पर्वत श्रृंखला की ऊंचाई पर तैनात होंगे| हमारे दो सौ घुड़सवार शत्रु की सेना के पास

पहुँच उन पर आक्रमण करने का अभिनय करेंगे| लेकिन जैसे ही शत्रु की सेना उन पर आक्रमण करेगी वैसे ही रण भूमि छोड़ वह घुड़सवार हमारे सैनिक इस घाटी की पर्वत श्रृंखला की ओर भागेंगे| शत्रु की सेना को समझने का अवसर ही नहीं मिलेगा कि हमारी योजना क्या हो सकती है, अतः वह युद्ध के इस वातावरण में प्रतिशोध के लिए इन हमारे सैनिकों को मारने के लिए उनका पीछा करेंगे| हमारे सैनिक इस संकीर्ण मार्ग से जैसे ही पारित हो जाएंगे और शत्रु सैनिक जैसे ही प्रवेश करने का प्रयास करेंगे, हमारे सैनिक अपने आधुनिक हथियारों से उन पर पर्वत की ऊंची श्रृंखला से हमला बोल देंगे| अवश्य ही शत्रु सेना को इस से बहुत बड़ी क्षति होगी| ऐसी आशा है कि वह निराश होकर अपनी सेना का इस प्रकार संहार देख हताश हो जाएंगे और रण भूमि छोड़ भागने लगेंगे| यदि वह भागने लगे तो फिर उनको एकत्रित करना बहुत कठिन होगा और संभवतः हमारी विजय होगी,' अपनी योजना कुर्तकी ने स्पष्ट की|

'साधुवाद, साधुवाद' शब्दों के साथ महर्षि वशिष्ठ की करतल ध्वनि के साथ शिविर गूँज उठा|

‘थोड़ा सा छल अवश्य है इस योजना में, लेकिन युद्ध और प्रेम में विजय हेतु सब उचित है| पुत्री, अपनी योजना को कार्यान्वित करो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है| हाँ, यदि राजऋषि विश्वामित्र ने किसी भी प्रकार के दैविक अस्त्रों का उपयोग किया तो वह मुझ पर छोड़ दो| मैं उसका उपयुक्त प्रत्युत्तर देने में समर्थ हूँ और प्रण करता हूँ कि उस से हमारी सेना को कोई क्षति नहीं होगी,’ कुर्तकी की प्रशंसा करते हुए महर्षि वशिष्ठ बोले|

इस प्रकार हुआ विश्व में प्रथम 'छापामार युद्ध' योजना का प्रारम्भ|

सब की सहमति और आशीर्वाद प्राप्त करने के तुरंत बाद रात्रि के दूसरे पहर में ही कुर्तकी ने अपनी सेना की विभिन्न टुकड़ियों के प्रमुखों को बुलाया और पूरी युद्ध योजना से अवगत कराया| रात्रि के चतुर्थ पहर तक सभी सैनिक अपने अपने स्थानों पर हथियारों से युक्त तैनात हो गए|

अगले दिन एक भीषण युद्ध के प्रारम्भ की कल्पना लिए राजऋषि विश्वामित्र द्वारा संगठित सम्राट अनु के सैन्य नेतृत्व में शत्रु सेना निर्धारित युद्ध स्थल पर आ खड़ी हुई|

शत्रु की सेना एक समुद्र के सैलाब के समान लग रही थी जिस का कोई अंत ही दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था|

योजना के अनुसार सम्राट सुदास के दो सौ घुड़सवार युद्ध की इच्छा लिए सम्राट अनु की सेना के समक्ष आ गए| लेकिन जैसे ही सम्राट अनु ने 'आक्रमण' शब्द से अपनी सेना को प्रोत्साहित करते हुई युद्ध की घोषणा की, यह घुड़सवार युद्ध छोड़ भागने लगे| इस प्रकार इनके युद्ध छोड़ भागने से, इस से पहले कि सैन्य अधिकारी इसके पीछे छिपी किसी योजना का आभास कर सकते, शत्रु सेना में प्रसन्नता की लहर जाग उठी| इसे उन्होंने अपनी विजय का एक संकेत समझा और इन घुड़सवारों को पकड़ उन्हें वीरगति पहुंचाने को दौड़ पड़े | यही तो कुर्तकी चाहतीं थीं|

शत्रु सेना का पर्वत श्रृंखला के संकीर्ण प्रवेश मार्ग में पहुंचते ही विनाशकारी दृश्य हुआ| चहुँ ओर से तीर और भालों ने शत्रु सेना को लहूलुहान कर दिया| वह समझ ही नहीं पा रहे थे कि यह वार कहाँ से हो रहा है? विभिन्न अन्य प्रकार के हथियारों से उन पर आक्रमण होगा, इसकी तो उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी| कोई चार, पांच घंटे का ही युद्ध चला होगा कि शत्रु सेना घबरा कर तितर बितर हो गई और अपनी जान बचाने भागने लगी| सम्राट अनु और उनके अन्य साथी सम्राटों ने बहुत प्रयास किया कि वह अपनी सेना का उत्साह बढ़ा सकें, लेकिन पूर्ण प्रकार से असमर्थ रहे| जब लगभग पूरी सेना भाग गई, तब महर्षि कुर्तुक के कुछ सैनिक तलवार से बाकी सेना पर टूट पड़े|

इस प्रकार महर्षि कुर्तुक की व्यूह रचना एवं उनकी सेना के लोहे से बने हथियारों की मार शत्रु सेना के दिग्गज सहन नहीं कर पाए और कुछ ही घंटों में युद्ध समाप्त हो गया| शत्रु सेना हर प्रकार से परास्त हो गई थी| कुछ घंटों में ही चले इस युद्ध में लगभग १०,००० शत्रु सैनिकों को वीरगति प्राप्त हुई जब कि सम्राट सुदास के केवल ५०० सैनिक ही वीरगति को प्राप्त हुए| इस युद्ध में शत्रु सेना के ६ सम्राट वीरगति को प्राप्त हुए| बाकी बचे ४ सम्राटों को सम्राट सुदास ने अभयदान दे दिया और आदेश दिया कि वहां से न्यूनतम २०० कोस दूर जा कर बसें|

अपनी इस बुरी पराजय से निराश हो तथा इस भय से कि कहीं सम्राट सुदास के सैनिक उन्हें बंदी न बना लें, राजऋषि विश्वामित्र रणक्षेत्र से पलायन कर गए और

भूमिगत हो गए| ऐसा सुना गया कि वह हिमालय की कंदराओं में फिर से तपस्या करने हेतु चले गए ताकि उन्हें 'ब्रह्मऋषि' सम्मान एवं पद की प्राप्ति हो सके|

इस विजय के पश्चात महर्षि वशिष्ठ के निर्देशन में सम्राट सुदास ने एक अखंड भारत की स्थापना की|

इस युद्ध में विजय का पूरा श्रेय महर्षि वशिष्ठ एवं सम्राट सुदास ने महर्षि कुर्तुक और उनकी पुत्री कुर्तकी को दिया और सम्मान के साथ कोष का एक बड़ा भाग देकर सम्राट सुदास ने उनकी विदाई की योजना बनाई| लद्दाख वापस जाने से पहले महर्षि कुर्तुक ने अपने पुराने मित्र महर्षि भारद्वाज से उनके गुरुकुल प्रयाग जाकर उनसे मिलने की अनुमति के लिए महर्षि वशिष्ठ जी से अनुरोध किया| महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें आदर सहित प्रयाग के लिए विदा किया और उनकी सुरक्षा के लिए सौ सैनिक उनके साथ यात्रा में जाने के लिए नियुक्त किए|

महर्षि कुर्तुक एवं कुर्तकी का प्रयाग गमन

महर्षि कुर्तुक एवं उनकी पुत्री कुर्तकी के लिए विशेष सुविधाओं से युक्त दो रथों का प्रबंध किया गया| सम्मान के साथ सौ घुड़सवार सैनिकों के साथ पर्याप्त कोष का भाग उन्हें दक्षिणा स्वरूप दे एवं यात्रा में भोजन का उचित प्रबंध कर महर्षि वशिष्ठ एवं सम्राट सुदास ने उन्हें स्वयं द्वार तक आकर विदा किया| सैनिकों को उचित आदेश दिया कि वह महर्षि कुर्तुक एवं उनकी पुत्री कुर्तकी को महर्षि भारद्वाज के प्रयाग स्थित गुरुकुल में उनसे मिलान कर उन्हें सुरक्षित कुर्तुक आश्रम छोड़ कर ही लौटें|

कुर्तकी को पिता से कुछ जानने की उत्सुकता थी अतः वह अपना रथ छोड़ पिता के रथ में ही आ गईं| पिता को सम्मान सहित प्रणाम कर उनके पास बैठ गईं| कुर्तकी का अपने पिता पर अत्यंत प्रेम उमड़ रहा था| एक छोटी बालिका समान उनके कंधे पर अपना सिर रखकर अपने पिता से बड़ी ही उत्सुकता से बोलीं, 'पिताश्री, आपने गुरुदेव वशिष्ठ जी के बारे में तो मुझे बहुत कुछ बताया है, लेकिन आपकी मित्रता महर्षि भारद्वाज से कैसे हुई? यह तो आपने मुझे कभी बताया ही नहीं| मैं यह जानने को अत्यंत उत्सुक हूँ| आप यदि उचित समझें तो मुझे महर्षि भारद्वाज से अपनी मित्रता का विवरण विस्तार पूर्वक बताएं|'

कुर्तकी की माँ तो कुर्तकी के बचपन में ही स्वर्गवासी हो गईं थीं| माँ की मृत्यु के बाद उनका लालन पालन करने में माँ और पिता दोनों का ही भार पिताश्री ने ही उठाया था| कई ऋषि पुत्रियों के विवाह प्रस्ताव आए लेकिन पिता ने अपना जीवन इस प्रिय पुत्री के लालन पालन में ही समर्पित कर दिया था| उन्हें स्मरण था कि बचपन में उन्हें पुरुषों के समान वस्त्र पहनने का और पुरुषों की ही प्रकार अस्त्र, शस्त्र विद्या सीखने एवं घुड़सवारी करने इत्यादि में अत्यंत रुचि थी| लड़कियों के समान वस्त्र पहनना एवं उन्हीं के समान गृह कार्य दक्षता में प्रवीण होने में उन्हें कोई रुचि नहीं थी| इसी कारण न जाने कितनी बार आश्रम की ऋषि पुत्रियों एवं ऋषि पत्नीओं के उपहास का उन्हें कारण बनना पड़ा था| लेकिन पिता ने उनका सदैव समर्थन किया| आश्रम के अधिष्ठाता एवं गुरु होने के कारण जब उन्होंने अपनी आज्ञा आश्रमवासीओं को सुनाई कि कुर्तकी को वह अपनी पुत्री नहीं बल्कि पुत्र समझ उसको अपना दीक्षित शिष्य मानते हैं, तब कोई उनके सम्मुख तो कुछ नहीं बोल पाया था लेकिन पृष्ठ में उनको आलोचना का शिकार होना पड़ा था| इन आलोचनाओं से दूर उनकी उपेक्षा करते हुए

पिता ने अपना पूर्ण वैदिक, अस्त्र, शस्त्र, आयुर्वेदिक एवं समस्त ज्ञान जो उन्होंने अपने गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी एवं महर्षि वाल्मीकि जी से पाया था, सब पुत्री को दे दिया| पुत्री के नए प्रकार के अस्त्र, शस्त्र में अनुसंधान एवं आविष्कार में अत्यंत रुचि देख उसके लिए उन्होंने प्रयोगशाला भी बनवा दी थी| कुर्तुक आश्रम में ही नहीं परन्तु पूर्ण विश्व में कुर्तकी की प्रतिभा के समक्ष सभी नत मस्तक थे|

पुत्री के इन शब्दों ने पिता महर्षि कुर्तुक की पुरानी स्मृतियों को नूतन कर दिया| पुरानी स्मृतियों से गदगद महर्षि बोले, 'अवश्य पुत्री| यह उस समय की बात है जब मैं महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में उनका शिष्य ब्रह्मचारी कुर्तुक था| महर्षि वशिष्ठ केवल आश्रम एवं गुरुकुल के कुलपति अथवा सम्राट सुदास के कुलगुरु ही नहीं थे, वह समस्त आर्य वंश के अध्यक्ष एवं कुलगुरु थे| उसी समय आर्यों के दो वंश, त्रित्सु और भरत, में युद्ध छिड़ा हुआ था| भरत विश्वरथ (जो बाद में विश्वामित्र नाम से प्रख्यात हुए) की पत्नी उग्रा की हत्या आर्यों ने कर दी थी|'

'उग्रा! यह कौन थीं पिता जी?', उत्सुकतावश कुर्तकी ने पूछा|

महर्षि कुर्तुक बोले, 'उग्रा दस्यु सम्राट शम्बर की पुत्री थीं| दस्यु अनार्य थे अतः उग्रा एक अनार्य राजकुमारी थीं| आर्य विश्वरथ और उग्रा में प्रेम हो गया| विश्वरथ ने उग्रा से विवाह करना चाहा जिसकी अनुमति आर्य गुरु महर्षि वशिष्ठ जी ने नहीं दी| अतः दस्यु प्रथा के अनुसार विवाह कर पति-पत्नी के रूप में वह दोनों दस्यु सम्राट शम्बर के महल में रहने लगे| आर्यों को यह स्वीकार नहीं था| अतः उन्होंने संगठित हो दस्युराज पर आक्रमण बोल दिया| उन्होंने उनके सभी पुत्रों का अपहरण कर लिया और उनके ९९ किलों को अपने आधीन कर लिया| आर्य सेनापति उग्रा और विश्वरथ दोनों की ही हत्या करना चाहते थे लेकिन उग्रा ने अपने पराक्रम से स्वयं को एवं विश्वरथ को बलि होने से बचा लिया| भयंकर युद्ध हुआ| इस युद्ध में अंततः आर्यों की विजय हुई और दस्युराज को आर्यों से संधि के लिए विवश होना पड़ा| आर्यों की शर्त थी कि वह उग्रा और विश्वरथ को अपने महल में शरण न दें, अतः उग्रा के पिता शम्बर ने इस युद्ध का दोष अपनी पुत्री उग्रा को दे उसे कुल द्रोहिणी कह उसका त्याग कर दिया| इस संधि ने उग्रा और विश्वरथ को दस्युराज महल छोड़ कहीं और बस जाने को विवश कर दिया|'

विश्वरथ अपनी पत्नी उग्रा को लेकर अपने गुरु महर्षि अगस्त्य के आश्रम को चल दिए| उन्होंने सोचा कि वहां चल कर उग्रा को उनकी पत्नी रूप में आर्यों द्वारा स्वीकृति मिलने का कोई न कोई समाधान अवश्य मिल जाएगा| महर्षि अगस्त्य ने लोपामुद्रा के प्रेम में आसक्त हो उनसे विवाह किया था| लोपामुद्रा एक क्षत्राणी राजकुमारी दक्षिण के पाण्यराजा मलयध्वज की पुत्री थीं| अगस्त्य ब्राह्मण एवं लोपामुद्रा क्षत्राणी, इस विवाह का भी आर्य घोर विरोध कर रहे थे| स्वयं आर्यों के संरक्षक महर्षि वशिष्ठ भी अपने बड़े भ्राता के इस कृत्य से अत्यंत दुखी थे| उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि अवश्य ही देव आर्य वंश से प्रतिकूल हैं और लोपामुद्रा का आर्य गुरु महर्षि अगस्त्य से विवाह के लिए प्रेरित करना उनकी आर्य वंशावली को भ्रष्ट करने की एक योजना है| लेकिन वह अपने भाई के आगे विवश थे| महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के प्रेम और समर्पण ने आर्य वंश में जातीय विवाह की पद्धति को चुनौती दे दी थी| महर्षि अगस्त्य ने त्रित्सु वंश का कुल गुरु पद त्यागने का भी निश्चय कर लिया था| इस विचार से भी महर्षि वशिष्ठ बहुत चिंतित थे| महर्षि अगस्त्य ही आर्य वंश के एक मात्र ऐसे गुरु थे जिन्होंने विश्वरथ के उग्रा से विवाह को कभी अनुचित नहीं ठहराया था| इस कारण विश्वरथ को पूरी आशा थी कि वहीं उनको न्याय मिलेगा|

महर्षि अगस्त्य के आश्रम में शरण लेने के पश्चात भी आर्य राजकुमार विश्वरथ पर दबाव डालने लगे कि अनार्य उग्रा को छोड़ दें अथवा अपनी दासी बना लें| यह विश्वरथ को स्वीकार नहीं था| एक सायं जब सूर्य देव ढल चुके थे और थोड़ा अन्धेरा होने लगा था, महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा अपने आश्रम की कुटिया के आँगन में वार्तालाप कर रहे थे तब उन्होंने एक छाया को पास की झाड़ी से निकल कर अपने पास आने का अनुभव किया| उस छाया ने लोपामुद्रा की हत्या करने के उद्देश्य से एक चमकते हुए प्रखर धार वाले चाकू से उन पर हमला बोल दिया| लोपामुद्रा की चीख निकल पड़ी और उन्होंने अपने पूरे बल से उस छाया को धक्का दे दिया| तभी उन्हें इस छाया के कर्कश स्वर भी सुनाई दिए और वह उसे पहचान गईं|

‘यह तो भैरव है| आर्य सेना का सेनापति’, चीखकर लोपामुद्रा बोलीं|

महर्षि अगस्त्य ने उस छाया को पकड़ने का और अपने पास रखे एक शस्त्र से उस पर आघात करने का प्रयास भी किया| उसी समय यह भिड़ंत स्वर सुन विश्वरथ भी अपने कक्ष से बाहर निकल आए| उन्होंने पीछे से भैरव को पकड़ने का प्रयास किया| तब

भैरव ने विश्वरथ को धक्का दे महर्षि अगस्त्य पर चाकू से आक्रमण कर उन्हें मारने का प्रयास किया| उसी समय अंदर से महर्षि अगस्त्य की पुत्री रोहिणी की दर्द भरी चीख सुनाई दी, 'पिताजी, पिताजी, उग्रा की हत्या कर दी गई है|

अट्टहास कर तब भैरव चीखा, 'हाँ, मैंने ही उग्रा की हत्या की है| अब दूसरी महर्षि अगस्त्य की, तीसरी विश्वरथ की और चौथी लोपामुद्रा की हत्या भी अवश्य ही करूंगा|'

इससे पहले कि वह अपना आघात कर पाता, विश्वरथ ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया और छुरा घोंप कर उसकी हत्या कर दी|

इस अचानक आक्रमण से महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा दोनों ही सदमे में थे| दोनों को चोटें भी आईं थीं| तुरंत आश्रम के वैद्य को बुला कर उन्हें वैद्यशाला में स्थानांतरित कर दिया गया| अब विश्वरथ अपने कक्ष की ओर दौड़े जहाँ उग्रा का मृत शरीर पड़ा हुआ था| उग्रा के मृत शरीर को लेकर विश्वरथ आर्य आचार्य प्रतर्दना के पास पहुंचे और उनसे विनती करने लगे कि वह अग्नि देव को उपस्थित कर उग्रा के मृत शरीर की उन्हें आहुति दें| यह आर्यों की उस काल की प्रथा आज तक चली आ रही है कि मृत शरीर को उसकी शुद्धि के लिए अग्नि देव को अर्पित किया जाता है| लेकिन एक अनार्य कन्या के लिए यह आर्य कृत्य करने के लिए आर्य आचार्य प्रतर्दना तत्पर नहीं थे|

आर्य आचार्य प्रतर्दना बोले, 'हे शक्तिशाली आर्य विश्वरथ, आप दस्युराज शम्बर की पुत्री को देवलोक में स्थान प्राप्त कराने हेतु मुझे उसके मृत शरीर को अग्नि में समर्पित करने का आदेश दे रहें हैं| यह हर प्रकार से अनुचित है और आर्यों को स्वीकार नहीं है| उग्रा के मृत शरीर को दस्युओं के धार्मिक संस्कारों के अनुसार पृथ्वी में शवाधान की आज्ञा दें|'

इससे दुःखी विश्वरथ ने उग्रा को पृथ्वी में शवाधान की आज्ञा तो अवश्य दे दी लेकिन प्रण किया कि एक दिन मैं अवश्य ही ब्रह्म स्तर को प्राप्त कर इस प्रथा को केवल आर्य वंशों के लिए ही नहीं अपितु सभी जन जातियां के लिए उपलब्ध कराऊंगा|

इस घटना ने त्रित्सु और भरत वंशीओं के बिगड़ते अग्नि रूपी रिश्तों में घी का कार्य किया| इस अग्नि को शांत करने के लिए एवं अपने बड़े भ्राता महर्षि अगस्त्य के घायल

होने का समाचार सुन गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ ने तुरंत दक्षिण में महर्षि अगस्त्य के आश्रम जाने का निश्चय किया| वहां से लौटने का समय कोई निश्चित नहीं था, अतः कहीं मेरी शिक्षा अधूरी न रह जाए इसलिए उन्होंने मुझे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेजने का निश्चय किया| महर्षि वाल्मीकि के नाम एक पत्र लिख उन्होंने तुरंत मुझे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम प्रस्थान करने की आज्ञा दी|

गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ अगले दिन ही दक्षिण अपने भ्राता महर्षि अगस्त्य के आश्रम को प्रस्थान कर गए और मैं भी पैदल महर्षि वाल्मीकि के आश्रम की ओर निकल पड़ा| मार्ग कठिन था| जब सायं होने लगती तो मैं तटस्थ ग्राम के किसी मंदिर में रात्रि बिताता और उसी ग्राम से जो भी भिक्षा मिलती, खा कर अपने शरीर को जीवित रखने का प्रयास करता| पौष्टिक भोजन न मिलने से और यात्रा की थकान से शनैः शनैः मेरा शरीर दुर्बल होता गया| किसी प्रकार मैं महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच गया| फटे कपड़े, शरीर बस कंकाल मात्र, अब एक कदम आगे बढ़ने की भी हिम्मत नहीं रह गई थी| बस मूर्छित होने वाला ही था कि एक युवक को अपने समीप आते देखा| युवक ने मुझे सम्हाला और किसी प्रकार आश्रम में अपने कक्ष में ले गए| मुझे फलाहार कराया और प्रेम भरे शब्दों में पूछा, 'वेशभूषा से तो तुम ब्रह्मचारी लगते हो| हे युवक, तुम कौन हो और किस हेतु महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारा आगमन हुआ है?’

तब मैंने अपना नाम, आने का उद्देश्य एवं गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी का महर्षि वाल्मीकि के नाम पत्र उन्हें थमा दिया| गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ का नाम सुनकर और यह जानकर कि मैं उनके आश्रम से आया हूँ, मेरा कर उन्होंने अपने कर में ले लिया, चूमने लगे और बोले, ‘मेरे अहोभाग्य कि मैंने महर्षि वशिष्ठ के शिष्य के दर्शन किए|’

ऐसी विनम्रता दिखाकर इस युवक ने अपना परिचय कराया| वह कोई और नहीं बल्कि ब्रह्मचारी भारद्वाज ही थे| अपने कपड़ों में से नए कपड़े देते हुए मुझ से विनम्रता पूर्वक स्नान करने का आग्रह कर, पत्र लेकर वह महर्षि वाल्मीकि की कुटिया में चले गए|

स्नान करने के पश्चात ब्रह्मचारी भारद्वाज ने मुझे भोजन दिया| कई सप्ताह बाद भर पेट भोजन के पश्चात मुझे निद्रा आ गयी| मुझे कुछ नहीं पता कि मैं कितना सोया, लेकिन अवश्य ही वह दूसरा दिन रहा होगा| निद्रा खुलने पर मैंने देखा कि वही युवक,

ब्रह्मचारी भारद्वाज, मेरे ही समीप एक दूसरी चटाई पर बैठे हुए थे| मुझे प्रणाम कर बोले, 'मित्र, स्नान कर लो फिर महर्षि वाल्मीकि से मिलने चलेंगे|

इस प्रकार मेरा परिचय उस समय के ब्रह्मचारी भारद्वाज जी से हुआ |

स्नान एवं कुछ फलाहार करने के पश्चात ब्रह्मचारी भारद्वाज जी मुझे महर्षि वाल्मीकि से मिलाने उनकी कुटिया पर ले चले| मेरे शरीर का प्रत्येक अंग प्रफुल्लित हो रहा था| गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी की कृपा से मुझे आज उन महान आदि कवि के दर्शन होंगे जिनके दर्शन भगवान् के ही समान दुर्लभ हैं| उनके द्वारा लिखित संस्कृत का प्रथम श्लोक मेरे कर्णों में गूँजने लगा|

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वंगमः शाश्वतीः समाः |
यत्क्रौंचमिथुनादेकं वधीः काममोहितम् ||

‘हे दुष्ट, तुमने प्रेम में मग्न क्रौंच पक्षी को मारा है| जा, तुझे कभी भी प्रतिष्ठा की प्राप्ति नहीं हो पाएगी और तुझे भी वियोग झेलना पड़ेगा|’

कुटिया में प्रवेश करते ही एक तपस्वी मूर्ति को देखा जिनके चेहरे पर विचित्र कांति थी| मुस्कुराहट के साथ उन्होंने मेरा स्वागत, 'आओ वत्स', कहकर किया| मैंने तुरंत ही इस दिव्य मूर्ति स्वरूप महर्षि को साष्टांग प्रणाम किया|

‘जानता हूँ पुत्र, मार्ग में तुम्हें अत्यंत कठिनाइओं का सामना करना पड़ा होगा| कुछ दिन पूर्ण विश्राम करो| आश्रम में भारद्वाज तुम्हारे रहने का सब प्रबंध कर देंगे| मेरे भ्राता वशिष्ठ कैसे हैं? मुझे पूर्ण वृतांत सुनाओ’, नम्र विनीत स्वर में महर्षि वाल्मीकि बोले |’

तब मैंने विस्तारपूर्वक सब वृतांत, किस प्रकार महर्षि अगस्त्य, लोपामुद्रा एवं राजकुमार विश्वरथ पर आर्य सेनापति भैरव ने महर्षि अगस्त्य के आश्रम में उनकी हत्या करने के उद्देश्य से आक्रमण किया और विश्वरथ पत्नी उग्रा की हत्या करने में समर्थ हुआ, महर्षि वाल्मीकि को सुनाया| यह भी बताया कि महर्षि वशिष्ठ अपने घायल बड़े

भ्राता अगस्त्य से मिलने एवं दो आर्य वंशों में संधि कराने के प्रयास हेतु दक्षिण की यात्रा पर गए हुए हैं|

यह समाचार सुन महर्षि के चेहरे पर चिंता भाव दृष्टिगोचर होने लगे| वह चुपचाप कुटिया से बाहर निकले और माँ गंगा समीप पहुँच कुछ प्रार्थना करते हुए दिखाई दिए|

महर्षि वाल्मीकि स्वयं निषाद प्रजाति से सम्बंधित थे| ब्रह्मऋषि नारद से ज्ञान बोध होने के पश्चात प्रभु ने उनकी घोर तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें ब्रह्म-ज्ञान दिया था| एक बार वह जब आर्यावृत के भ्रमण पर थे तब दस्युराज शम्बक के अतिथि बने थे| वहां दस्युराज ने उन्हें दस्यु कुल का कुलगुरु बनने का आमंत्रण दिया था और अपनी पुत्री उग्रा को उनके चरणों में डालकर उसे आशीर्वाद देने का करबद्ध निवेदन किया था| उन्होंने दस्युराज का कुलगुरु बनने का निवेदन तो अवश्य ही स्वीकार नहीं किया परन्तु उग्रा के व्यक्तित्व से प्रभावित हो वह उसे अपनी पुत्री समान प्रेम करने लगे थे| आज उसकी हत्या के समाचार ने उन्हें विचलित कर दिया और गंगा तट पर संभवतः उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना कर रहे होंगे|

ब्रह्मचारी भारद्वाज के आग्रह पर उन्हीं की कुटिया में मैंने भी अपना आसन बना लिया और यहां से हमारी मित्रता प्रारम्भ हुई |

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में मैंने ब्रह्मचारी भारद्वाज के साथ ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति की| शिक्षा समाप्ति पर स्वयं भारद्वाज जी अपने रथ से मुझे महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में छोड़ने आये| तब तक भी महर्षि वशिष्ठ जी दक्षिण यात्रा से वापस नहीं लौट पाए थे| कुछ दिनों महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में रह कर भारद्वाज जी तो वापस अपने दत्तक पिता चक्रवर्ती सम्राट भरत की राजधानी लौट गए और मैं वहीं गुरुदेव के वापस आने की प्रतीक्षा करता रहा|

अंततः कुछ महीनों बाद गुरुदेव का दक्षिण से अपने आश्रम में आगमन हुआ| उन्हें मेरी शिक्षा पूर्ण होने पर अत्यंत प्रसन्नता हुई और मुझे 'महर्षि' पद से अलंकृत कर अपना स्वतंत्र आश्रम अपनी प्रजाति के मध्य लद्दाख में स्थापित करने की आज्ञा दी| उनका आशीर्वाद लेकर मैंने लद्दाख की ओर प्रस्थान किया| यात्रा लम्बी थी| उसकी समस्त व्यवस्था महर्षि वशिष्ठ जी ने की थी| महर्षि के आग्रह पर सम्राट ने दस सशत्र सैनिकों

का दल एवं यात्रा में पूर्ण सुविधा का ध्यान रखते हुऐ और यह जानते हुऐ कि मुझे नए आश्रम की स्थापना के लिए धन की आवश्यक्ता होगी, पर्याप्त धन राशि के साथ मेरी विदाई की| और तब जैसा तुम जानती हो मैंने कुर्तुक लद्दाख में अपने नए आश्रम की स्थापना की|

समय बीतता चला गया| मुझे सुनने में आया कि भारद्वाज जी ने आर्यावृत भ्रमण करते समय गोवर्धन पर्वत को महर्षि पुलस्त्य के श्राप से मुक्त करा दिया है और वह तत्पश्चात हिमालय की कंदराओं में तपस्या हेतु चले गए हैं| वहां उन्होंने घोर तपस्या से भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर उनसे मनवांछित वर प्राप्त किया है| वहीं वह माँ गंगा की शिष्या अप्सरा घृताची के प्रेम में बंध गए और उनसे गांधर्व विवाह कर लिया है| इस विवाह बंधन से उन्हें द्रोण नाम के पुत्र की प्राप्ति हुई है| फिर सुनने में आया कि घृताची उन्हें छोड़ देवलोक चली गईं हैं और वह अपने पुत्र के साथ काशी लौट आए हैं| यहां उन्होंने महादेव की आराधना की और उनकी आज्ञा से प्रयागराज में गुरुकुल की स्थापना की है| उन्हें 'महर्षि' पद का सम्मान स्वयं महादेव ने दिया|

इसी समय मुझे महर्षि भारद्वाज जी के प्रयाग गुरुकुल से संदेश वाहक के द्वारा एक सन्देश मिला जिसमें महर्षि भारद्वाज जी ने मुझे तुरंत प्रयाग आने का निवेदन किया| गुरु भाई की प्रार्थना मेरे लिए आदेश थी, अतः मैं तुरंत प्रयाग को चल दिया| प्रयाग गुरुकुल देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया कि कैसे इतने कम समय में महर्षि भारद्वाज जी ने विश्व प्रसिद्ध गुरुकुल की स्थापना कर ली थी| मेरे आने का समाचार सुन तुरंत भारद्वाज जी मेरी और दौड़े और बड़े प्रेम एवं आदर के साथ उन्होंने मेरा स्वागत किया| मेरी यह जानने की अत्यंत उत्सुकता थी कि इतनी दूर से महर्षि ने मुझे क्यों बुलाया है? ऐसा क्या कार्य हो सकता है जिसे पूर्ण करने में महर्षि को मेरी मदद की आवश्यक्ता हो?

इस उत्सुकता को दूर होने में अधिक समय नहीं लगा| लम्बी यात्रा के कारण उस दिन तो मैं बहुत थका हुआ था अतः महर्षि ने आग्रह किया कि माँ गंगा में स्न्नान कर एवं भोजन कर अभी अतिथि विश्रामगृह में विश्राम करूँ और अगले दिन उनसे मिलने पर फिर चर्चा करेंगे| अगले दिन ब्रह्म-मुहूर्त में उठ, माँ गंगा में स्नान एवं ध्यान कर जब मैं आश्रम लौटा तो महर्षि मेरी अल्पाहार के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे| अल्पाहार ले कर वह मुझे अपने कक्ष में ले गए और बोले, ' महर्षि कुर्तुक जी, एक बड़ी दुविधा में पड़ा

हूँ| आप ही इसका समाधान कर सकते हैं| आप तो जानते ही हैं कि चक्रवर्ती सम्राट भरत ने मुझे दत्तक पुत्र बनाया था| उनके परिवार की ओर से राजकुमारी सुशीला से विवाह करने का प्रस्ताव आया है और मुझ पर अत्यंत दबाब भी है| मैं ब्राह्मण, राजकुमारी सुशीला एक क्षत्रिय, मेरा ऐसा मानना है कि यह विवाह किसी भी प्रकार आर्य गुरुकुल श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ जी को स्वीकार्य नहीं होगा| मैं उनकी स्वीकृति के बिना विवाह नहीं करूंगा| राजपरिवार की ओर से तथ्य दिया जा रहा है कि चूंकि चक्रवर्ती सम्राट भरत का मैं दत्तक पुत्र हूँ, अतः मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय कन्या से विवाह आर्यों के नियम के विपरीत नहीं है| लेकिन मैं एक तो देव गुरु बृहस्पति का पुत्र और दूसरे ब्राह्मण के रूप में ही तपस्या से भगवान् विष्णु और महादेव की दया का पात्र बना हूँ, ऐसे में राजकुमारी सुशीला से विवाह के लिए कैसे तैयार हूँ? मुझे व्यक्तिगत रूप में इस विवाह से विरोध नहीं है| मैं राजकुमारी सुशीला को बहुत अच्छी प्रकार से जानता हूँ| वह एक अत्यंत सुशील सांस्कृतिक कन्या हैं जिन्हें वेदों के साथ साथ अस्त्र, शस्त्र विद्या का भी पूर्ण ज्ञान है| मेरी मति में वह अवश्य ही मेरे लिए उपयुक्त पत्नी सिद्ध होंगी लेकिन महर्षि वशिष्ठ जी की अनुमति आवश्यक है और यह कार्य केवल आप ही कर सकते हैं| मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि यात्रा की थकावट की समाप्ति पर आप महर्षि वशिष्ठ के आश्रम प्रस्थान करें और उनसे इस विवाह की अनुमति प्राप्त करें|’

मैंने हृदय में सोचा कि यह अत्यंत कठिन कार्य सिद्ध हो सकता है| मेरे गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ अपने स्वयं के भ्राता महर्षि अगस्त्य के राजकुमारी लोपामुद्रा के विवाह से कितने दुःखी थे| वह बड़ा ही कठिन समय था| इस विवाह के पश्चात भयंकर आग ने पूरे तृत्सुग्राम (त्रित्सु सम्राट की राजधानी और उस समय का महर्षि वशिष्ठ का आश्रम) को नष्ट कर दिया था|

‘यह अवश्य ही अग्नि देव के इस विवाह का विरोध प्रदर्शन है’, ऐसा गुरुदेव मानते थे|

उनका मत था कि आर्य वंश को दूषित करने के लिए यह अनार्यों की एक चाल थी जिसमें उनके भ्राता महर्षि अगस्त्य फँस गए और राजकुमारी लोपामुद्रा ने उन्हें मोहित कर अपने जाल में फंसा लिया| ऐसे में क्या वह महर्षि भारद्वाज का विवाह राजकुमारी सुशीला से होने में अपनी सहमति देंगे? यह एक कठिन प्रश्न अवश्य था लेकिन गुरु

भाई का निवेदन के कारण मैंने प्रयास तो करना ही था| अतः अगले दिन मैं तृत्सुग्राम के लिए विदा हुआ|

गुरुदेव के आश्रम पहुँच मैं सीधा उनकी कुटिया में गया और साष्टांग प्रणाम किया| मुझे देख गुरुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए और गले से लगा लिया|

गुरुदेव बोले, 'वैसे मेरी सुधि कभी नहीं आई कुर्तुक और अब भारद्वाज के आग्रह पर मुझ से मिलने आए हो| मैं राजकुमारी सुशीला के भारद्वाज से विवाह प्रस्ताव के बारे में जानता हूँ| मुझे इसकी सूचना स्वयं राजपरिवार ने दी है और मेरी अनुमति माँगी है| बहुत विचार के बाद मैं इस विवाह के विरोध में नहीं हूँ| राजकुमारी सुशीला को मैंने स्वयं विद्या दी है, वह मेरी पुत्री समान है| मैं अपनी पुत्री का अहित चाहूंगा, ऐसा भारद्वाज ने कैसे सोच लिया? जाओ अभी विश्राम करो और लौटते में प्रयाग जाकर भारद्वाज से कह दो कि मैं स्वयं इस विवाह का पुरोहित हो यह विवाह कराऊंगा|'

गुरुदेव की सर्वभूत दृष्टि ज्ञान के कारण मुझे आश्चर्य तो अवश्य नहीं हुआ, लेकिन इतनी शीघ्र इसकी अनुमति मिल जाएगी, ऐसा विश्वास ही नहीं हो रहा था|

कुछ दिन गुरुदेव के आश्रम में रह उनसे आशीर्वाद ले मैंने प्रयाग को प्रस्थान किया और शीघ्र प्रयाग पहुँच यह शुभ समाचार महर्षि भारद्वाज को सुनाया| गुरुभाई ने मुझे हृदय से लगा लिया और मेरा अति आभार मानते हुए बोले,' महर्षि कुर्तुक, यह कार्य केवल आप ही कर सकते थे| मुझे पता था कि यदि आप यह अनुरोध लेकर महर्षि वशिष्ठ के पास जाएंगे तो वह स्वीकृति अवश्य दे देंगे| अब आप महर्षि वशिष्ठ जी की अध्यक्षता में इस विवाह की धार्मिक रीतियों को मेरे पुरोहित के रूप में सम्हालें और विवाह पश्चात ही अपने आश्रम को विदाई लें|’

राजपरिवार को महर्षि भारद्वाज जी ने इस विवाह की स्वीकृति का सन्देश भेज दिया और गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी को शुभ मुहूर्त निकाल इस विवाह की अगवानी करने की विनती का सन्देश भी भेज दिया गया| गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी के निकाले मुहूर्त पर समय में यह पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हुआ और उसके कुछ समय बाद मैं गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ एवं महर्षि भारद्वाज का आशीर्वाद ले कर कुर्तुक आ गया|

इस प्रकार पुरानी स्मृतियों को नूतन करते एवं अन्य पौराणिक कथाओं का गान करते महर्षि कुर्तुक का सैन्य समूह महर्षि भारद्वाज के आश्रम प्रयाग पहुँच गया| यह गोधूलि का समय था| दूर से ही उन्हें गुरुकुल एवं तटस्थ माँ गंगा घाट में अति प्रकाश की अनुभूति हुई| महर्षि कुर्तुक का हृदय प्रसन्नता से भर गया| अवश्य ही मेरे मित्र को मेरे आगमन की सूचना मिल गई है और यह मेरे और मेरे समूह के स्वागत की तैयारी है|

कुर्तकी का प्रयाग वास

महर्षि भारद्वाज जब उस दिन ब्रह्ममुहूर्त में माँ गंगा स्नान कर ध्यानस्थ बैठे तो उन्हें अपने मित्र गुरु भाई महर्षि कुर्तुक के आने का आभास हो गया| उन्हें दसराज्ञ युद्ध में महर्षि वशिष्ठ के निर्देशन में सम्राट सुदास की विजय का समाचार मिल चुका था| उन्हें पूर्ण विश्वास था कि महर्षि कुर्तुक उनसे मिलने प्रयाग अवश्य आएंगे, अतः वह उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे| ध्यानावस्था में आभास के उपरान्त उन्होंने अपने शिष्यों को महर्षि कुर्तुक और उनके साथ आने वाले समूह के स्वागत की तैयारी प्रारम्भ करने का निर्देश दिया| पूरा गुरुकुल पुष्पों और दीप मालाओं से सजाया गया|

इस दिन महर्षि भारद्वाज का प्रयाग गुरुकुल देवलोक जैसा दृष्टिगोचर हो रहा था| गोधूलि बेला में जब गुरुकुल और माँ गंगा घाट पर सैकड़ों की संख्या में दीपों की लड़ी जली तो ऐसा लग रहा था कि देवताओं की टोली पृथ्वी पर आ गयी है| यह अलौकिक एवं अद्भुत मनोहर छटा देखते ही बनती थी| जैसे ही शिष्यों को समाचार मिला कि महर्षि कुर्तुक का समूह अब कुछ दूरी पर ही है तो उनके माँ गंगा घाट पर गूंजते वेद मंत्रों, स्तुतियों के बीच गंगा आरती, शंख और घंटों की ध्वनि के बीच भजन से पूरा वातावरण भक्ति रस से भरा हुआ हो गया| एक साथ जलते असंख्य दीपों की छटा से ऐसा लग रहा था जैसे दीपों की गंगा बह रही हो| इस अलौकिक प्रकाशोत्सव के बीच समझना कठिन हो रहा था कि दीप माला लिए मां गंगा देवगणों का स्वागत अभिनंदन कर रहीं हैं अथवा दीप मालाओं के साथ त्रिपुरारि शंकर और गंगा का आभार व्यक्त करने के लिए देवगण लालायित हो उठे हैं|

गुरुकुल के समीप पहुंचते ही शिष्टाचार वश महर्षि कुर्तुक ने अभिनंदन सहित एक पत्री सैन्य दल के प्रमुख के हाथ महर्षि भारद्वाज के पास भेजी और आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति माँगी| सैन्य दल प्रमुख ने आश्रम पहुँच महर्षि भारद्वाज को साष्टांग प्रणाम किया और पत्री उनको सौंपी| पत्री पा स्वयं महर्षि भारद्वाज जी सैन्य प्रमुख के साथ जिस हाल में बैठे थे वैसे ही अपने मित्र महर्षि कुर्तुक से मिलने दौड़ कर जाने लगे| तब सैन्य दल प्रमुख के निवेदन पर कि महर्षि भारद्वाज को पैदल जाने में कष्ट होगा, वह यहीं प्रतीक्षा करें, शीघ्र ही महर्षि कुर्तुक आपके दर्शन करेंगे, तब महर्षि भारद्वाज जी आश्रम के द्वार पर ही रुक गए|

महर्षि कुर्तुक प्रयाग गुरुकुल के द्वार से कुछ पहले ही रथ से उतर कर अपनी पुत्री कुर्तकी के साथ पैदल महर्षि भारद्वाज से मिलने दौड़े| यह मिलन दृश्य देखने योग्य था| महर्षि भारद्वाज ने पुष्पमाला पहना कर महर्षि कुर्तुक को प्रेम से गले लगा लिया| तब महर्षि कुर्तुक ने पुत्री कुर्तकी का परिचय महर्षि भारद्वाज जी से कराया| कुर्तकी ने तुरंत साष्टांग प्रणाम कर महर्षि भारद्वाज जी का अभिनंदन किया|

महर्षि भारद्वाज गदगद हो गए और बोले, 'पुत्री, मैंने दसराज्ञ युद्ध में तेरे पराक्रम के बारे में बहुत कुछ सुना है| आज तुझे देख मेरे नेत्र तृप्त ही नहीं हो पा रहे| धन्य है तू और धन्य हैं तेरे माता-पिता जिन्होंने तुझे जन्म दिया|'

तभी ऋषि-पत्नी सुशीला जी भी वहीं दौड़ी चली आईं| महर्षि कुर्तुक ने उन्हें प्रणाम कर अपनी पुत्री कुर्तकी को उनके चरणों में डाल दिया| ऋषि-पत्नी गुरु-माँ सुशीला जी के नेत्रों से आंसू बहने लगे| माँ समान उन्होंने पुत्री को गले से लगा लिया| तब गुरु-माँ सुशीला जी कुर्तकी को लेकर अंदर अपनी कुटिया में चली गईं और महर्षि भारद्वाज जी एवं महर्षि कुर्तुक जी ने गुरुकुल की विशेष अतिथिशाला कक्ष में प्रवेश किया| उनके निवास की उचित व्यवस्था कर महर्षि भारद्वाज जी ने तब उन्हें विश्राम करने का निवेदन किया| कुर्तकी के निवास की व्यवस्था गुरु-माँ सुशीला जी ने अपनी ही कुटिया में की|

महर्षि भारद्वाज के आश्रम में निवास करते हुई महर्षि कुर्तुक को तीन दिन हो गए| यह तीन दिन कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला| बातों के सिलसिले का कोई अंत ही नहीं हो रहा था| महर्षि भारद्वाज जी एवं गुरु-माँ सुशीला जी बार बार स्वयं कुर्तकी के मुख से दसराज्ञ युद्ध की योजना एवं उन्हें किस प्रकार विजय प्राप्त हुई, यह सुनकर थक ही नहीं रहे थे| कुर्तकी ने इन तीन दिनों में प्रत्येक दिन गुरुकुल का भ्रमण किया और शिष्यों से मिलकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव किया| उन्हें गुरुकुल के यंत्र-शास्त्र विभाग ने अति प्रभावित किया| महर्षि भारद्वाज एवं उनके शिष्यों के नए नए अस्त्र, शस्त्र बनाने के शोध कार्य देख कर उनकी उत्सुकता बहुत बढ़ गई| हृदय में सोचा कि पिताश्री से प्रार्थना करेंगी कि वह उन्हें कुछ समय के लिए गुरुकुल में समय बिताने और यदि संभव हो सके तो गुरुदेव महर्षि भारद्वाज की छाया में उनकी शिष्या बन उनसे शिक्षा लेने का अवसर प्रदान करें| तभी चौथे दिन भगवान् परशुराम का आगमन हुआ|

भगवान् परशुराम का आगमन

भगवान् परशुराम के अचानक इस प्रकार बिना सूचना के आगमन से दोनों ही महर्षियों को अत्यंत अचम्भा हुआ| दोनों ने तुरंत दंडवत हो उनको प्रणाम किया| भगवान् परशुराम से आशीर्वाद पा उन्हें एक उच्च स्थान पर आसीन किया| उनके साथ एक स्त्री और एक बच्चा भी था| महर्षि भारद्वाज उन स्त्री को पहचानने का प्रयास कर रहे थे| तभी उनको याद आया कि यह तो सम्राट सुदास की पुत्री शशियासी है| इन्हें तो दस्यु सम्राट भेदा ने अपहरण कर अपनी पत्नी बना लिया था| यह यहां कैसे? और वह भी भगवान् परशुराम के साथ! इन विचारों की श्रंखला में महर्षि भारद्वाज खोये हुए ही थे कि तभी भगवान् परशुराम के शब्द उन्हें सुनाई दिए|

भगवान् परशुराम ने कहना प्रारम्भ किया, 'भारद्वाज, तुम जानते हो कि शशियासी का अपहरण कर भेदा ने एक अत्यंत दुष्ट कार्य किया था जिससे तृत्सुओं और दस्युओं में वैरता चरम सीमा पर थी| वशिष्ठ के संरक्षण में और कुर्तुक के सैन्य नेतृत्व में सुदास ने दसराज्ञ युद्ध में भेदा की हत्या कर दी| अपने अपमान का प्रतिशोध ले सुदास ने शशियासी को दस्युओं से मुक्त कर लिया| अभाग्य से पापी भेदा ने आर्य राजकुमारी के साथ बलात विवाह किया और इस पवित्र कुमारी को अपवित्र कर एक घिनौना कार्य किया| इस अमंगल विवाह से एक पुत्र की प्राप्ति भी हुई| मेरी और वशिष्ठ दोनों की ही यह इच्छा है कि इन दोनों माता एवं पुत्र को पवित्र कर आप इनका आर्य कुल में अधिष्ठापन करें और तब मैं इस शशियासी के पुत्र को दस्यु सिंहासन पर बिठा दस्यु राज्य को आर्य का ही एक भाग घोषित कर दूँ| आर्य कुल गुरु वशिष्ठ के आदेशानुसार अब इन्हें आर्य रीति के अनुसार पवित्र कराना आवश्यक है और इस क्रिया को यथोचित क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने तुम्हें आदेश दिया है| इसीलिए मैं इस कन्या और बच्चे को लेकर तुम्हारे पास लाया हूँ|'

शशियासी, एक अत्यंत सुन्दर राजकुमारी त्रित्सु नरेश सुदास की सुपुत्री थीं| दस्यु सम्राट भेदा उनकी सुंदरता पर मुग्ध हो गया तथा उनसे विवाह करने का उसके हृदय में विचार आया| लेकिन वह जानता था कि सम्राट सुदास आर्य हैं और वह अनार्य दस्यु| यह विवाह आर्यों को किसी भी प्रकार स्वीकृत नहीं होगा| इसलिए उसने राजकुमारी का अपहरण करने और बलात विवाह करने की योजना बनाई|

अपने गुप्तचरों द्वारा उसने राजकुमारी के नित्य क्रिया कलापों को जाना| एक निश्चित समय पर प्रति दिन जब राजकुमारी शशियासी त्रित्सुग्राम के यमुना नदी के राजसीय तट पर अपनी सखिओं के साथ स्नान करने जातीं तो उनकी सुरक्षा में तैनात सैनिकों की संख्या दस या पंद्रह से अधिक नहीं होती थी| यही समय दस्युराज भेदा को उनके अपहरण करने का उपयुक्त लगा|

एक दिन इसी समय उसने राजकुमारी का अपहरण करने हेतु इन सुरक्षा में नियुक्त सैनिकों पर हमला कर दिया| सुरक्षा में तैनात सम्राट सुदास के सैनिकों की संख्या इन आक्रमणकारी सैनिकों से कहीं कम थी| वह इस अप्रत्याशित आक्रमण से अचंभित हो गए और यद्यपि अपनी जान हथेली पर रख हर प्रकार से उन्होंने इन दस्युओं से युद्ध किया, लेकिन वीरगति को प्राप्त हुए| भेदा राजकुमारी शशियासी का अपहरण करने में सफल हो गया| अपने रथ में बलात उन्हें बिठाकर उसने अपनी राजधानी की ओर घोड़ों को तीव्र गति से दौड़ाया| जब तक सम्राट सुदास को इसका पता चला, वह त्रित्सुग्राम से बहुत दूर जा चुका था|

सम्राट सुदास दस्युराज भेदा के इस दुःसाहस से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने इसका प्रतिशोध लेने के लिए दस्युराज पर आक्रमण की योजना बनाई| लेकिन उनके गुप्तचरों ने बताया कि दस्युराज भेदा ने अन्य शासकों, नूरी सम्राट अलीन, परुष्णि सम्राट अनु, बोलन दर्रा सम्राट भालन, गान्धार सम्राट द्रुह्यु एवं शाल्व सम्राट मत्स्य, से संधि कर उनके विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार कर रखा है| उन सब की संयुक्त सेना सम्राट सुदास का सामना करने को तत्पर है| इसके अतिरिक्त भरत वंशी विश्वरथ का सम्राट सुदास से वैर होने के कारण वह भी सम्राट का साथ नहीं देंगे| सम्राट सुदास का सैन्य बल इस संयुक्त सैन्य बल से कहीं कम था| यदि सम्राट सुदास ने आक्रमण किया तो हार निश्चित थी|

इस परिस्थिति में सम्राट सुदास को खून का घूँट पी कर अपना यह अपमान सहना पड़ा और प्रतिशोध लेने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगे| दसराज्ञ युद्ध में उन्हें यह अवसर मिला और उन्होंने भेदा की हत्या कर अपना प्रतिशोध पूर्ण किया|

दस्युराज भेदा ने राजकुमारी शशियासी का इस प्रकार अपहरण कर उनसे बलात गांधर्व विवाह किया और इस विवाह से उनके एक पुत्र 'सुचरित' का जन्म हुआ| इसी

राजकुमार सुचरित एवं सम्राज्ञी शशियासी को लेकर भगवान् परशुराम महर्षि भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे हैं ताकि इनका शुद्धीकरण कर इन्हें आर्य वंश में अधिष्ठापित किया जा सके और दस्यु राज्य को आर्य राज्य का भाग घोषित कर सुचरित को वहां के सिंहासन पर बिठा दिया जाए|

भगवान् परशुराम एवं महर्षि आर्यगुरु वशिष्ठ जी के आदेशानुसार अगले दिन ब्रह्म-मुहूर्त में राजकुमार सुचरित एवं सम्राज्ञी शशियाशी की शुद्धीकरण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई| स्वयं दोनों महर्षियों, महर्षि भारद्वाज एवं महर्षि कुर्तुक, ने इसका नेतृत्व किया|

सर्वप्रथम मंत्रोचारण के साथ उन्हें माँ गंगा में स्नान कराया गया|

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती |
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेअस्मिन्सन्मिधिं कुरु ||

इसके पश्चात यज्ञ वेदी पर मंत्रोचारण से अग्निदेव को आवाहन कर उनको यज्ञ हवि समर्पित कर इन दोनों माँ पुत्र की शुद्धि की गई|

ऊँ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोअपि वा |
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्यभ्यंतर शुचि: ||
यानि कानि पापानि जन्मान्तरकृतानि च |
तानि तानि प्रणश्चन्ति प्रदक्षिणा पदे-पदे ||
मंत्र हीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन |
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ||

पुत्र सुचरित एवं सम्राज्ञी शशियासी की शुद्धिकरण प्रक्रिया की समाप्ति पर उन्हें आर्य घोषित किया गया और उनका आर्यों के नियम पालन करने का शपथ ग्रहण समारोह हुआ|

शुद्धीकरण के पश्चात भगवान् परशुराम उन दोनों को लेकर दस्यु राजधानी जाने के लिए तत्पर हुए जहां राजकुमार सुचरित को सम्राट बना सिंहासन पर आरूढ़ कराना था एवं जब तक बालक राजकुमार सुचरित वयस्क नहीं हो जाते तब तक माँ

शशियासी को उनका संरक्षक नियुक्त करना था| इसके बाद उन्हें एक और अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य सहस्त्रार्जुन का वध करना था|

भगवान् परशुराम ने महर्षि कुर्तुक की ओर देखा और इन दोनों कार्यों में उनकी सहायता के लिए उनके साथ चलने का आग्रह किया| भगवान् परशुराम का आग्रह उनकी आज्ञा ही थी अतः इसे शीश पर धारण कर तुरंत महर्षि कुर्तुक उनके साथ चलने को तत्पर हो गए| कुर्तकी भी उनके साथ जाना चाहतीं थी लेकिन भगवान् परशुराम ने इशारे से उन्हें मना कर उनका उत्तरदायित्व महर्षि भारद्वाज को सौंपा|

'भारद्वाज, आशा है हम शीघ्र ही यह दोनों कार्य समाप्त करके वापस लौटेंगे तब तक पुत्री कुर्तकी तुम्हारे संरक्षण में यहीं रहेंगी| सम्राट सुदास के सैनिक जो महर्षि कुर्तुक के साथ आए थे उनकी विदाई करो| लौटने के बाद हम कुर्तुक एवं कुर्तकी को उनके आश्रम लद्दाख में भेजने का उचित प्रबंध करेंगे,' भगवान् परशुराम ने महर्षि भारद्वाज को आज्ञा दी|

सहस्त्रार्जुन वध

भगवान् परशुराम एवं महर्षि कुर्तुक सम्राज्ञी शशियासी और उसके पुत्र सुचरित की शुद्धिकरण एवं उनके आर्यवंश में अधिष्ठापित होने की प्रक्रिया के पश्चात महर्षि भारद्वाज के आश्रम से विदा लेकर सर्व प्रथम महर्षि अगस्त्य के आश्रम में पहुंचे| यहां उनका उद्देश्य महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा का आशीर्वाद प्राप्त कर सुचरित को दस्यु सिंहासन पर बैठाना एवं उनके द्वारा शुद्धिकरण की प्रक्रिया के बाद अन्य दस्यु समाज के प्रत्येक नर नारी को आर्य वंश में अधिष्ठापित करने की अनुमति लेना था| भगवान् परशुराम जानते थे कि लोपामुद्रा दस्युओं को आर्य प्रणाली सिखाने एवं उसका पालन कराने का बहुत वर्षों से प्रयास कर रहीं हैं| लोपामुद्रा का दस्यु समाज पर प्रभाव और उनका आदर उनके यह दोनों कार्य, सुचरित को दस्यु सम्राट घोषित करना एवं दस्यु समाज को आर्यवंश में अधिष्ठापित करना, सुलभ कर देंगे|

भगवान् परशुराम एवं महर्षि कुर्तुक सम्राज्ञी शशियासी और उसके पुत्र सुचरित को लेकर जैसे ही महर्षि अगस्त्य के आश्रम में पहुंचे, तत्काल महर्षि अगस्त्य को उनके आगमन की सूचना दी गई| भगवान् परशुराम का आगमन सुन महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा नंगे पैर ही उनके अभिवादन के लिए आश्रम के द्वार के ओर दौड़े| महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा ने भगवान् परशुराम को साष्टांग प्रणाम किया| तब महर्षि कुर्तुक एवं सम्राज्ञी शशियासी ने महर्षि अगस्त्य को दंडवत प्रणाम किया और सम्राज्ञी शशियासी ने अपने पुत्र को उनके चरणों में डाल दिया| अभिवादन शिष्टाचार के बाद महर्षि अगस्त्य सभी अतिथिओं को लेकर अपनी कुटिया में आए| फलाहार के पश्चात भगवान् परशुराम ने अपनी योजना से अवगत कराया|

भगवान् परशुराम बोले, ‘हे महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा, आर्यों के कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ की आज्ञानुसार सम्राज्ञी शशियासी एवं राजकुमार सुचरित का शुद्धिकरण कर उन्हें आर्यवंश में अधिष्ठापित कर दिया गया है| अब आपकी अनुमति से राजकुमार सुचरित का दस्यु सिंहासन पर अभिषेक करना है तथा उनके वयस्क होने तक राजमाता सम्राज्ञी शशियासी को उनका संरक्षक बनाना है| साथ ही दस्यु राज्य को आर्यावर्त में लीन कर देना है| शुद्धिकरण के पश्चात दस्यु समाज को आर्यवंश में अधिष्ठापित करने के लोपामुद्रा के प्रयासों का आदर करते हुए दस्यु समाज के नर

नारियों को भी आर्यवंश में स्वीकार करना है| इस कार्य की सफलता के लिए अपनी अनुमति एवं शुभ कामनाएं दीजिये|'

महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के 'साधुवाद, साधुवाद' शब्दों के उच्चारण से समस्त वातावरण गूँज उठा| लोपामुद्रा विशेषकर आगे आईं और एक बार फिर भगवान् परशुराम के चरणों में अपना शीश नवा करबद्ध विनती करने लगीं, 'हे भगवन, इस शुभ कार्य में यदि आपकी अनुमति हो तो मैं भी आपके साथ दस्यु राजधानी चलना चाहती हूँ तथा अपने कर से राजकुमार सुचरित का सम्राट सिंहासन पर अभिषेक करना चाहती हूँ|'

लोपामुद्रा के विनीत वचन सुन भगवान् परशुराम बोले, 'देरी किस बात की लोपामुद्रा, महर्षि अगस्त्य से आशीर्वाद और आज्ञा लो तथा तुरंत हमारे साथ प्रस्थान की तैयारी करो|'

महर्षि अगस्त्य से आशीर्वाद और आज्ञा ले भगवान् परशुराम ने अपने समूह के साथ दस्युराज राजधानी की ओर प्रस्थान किया|

राजधानी पहुँचने पर भगवान् परशुराम, महर्षि कुर्तुक, माता लोपामुद्रा, राजमाता शशियासी एवं राजकुमार सुचरित के दर्शन के लिए पूरा नगर ही उमड़ पड़ा| सैन्य अधिकारियों ने प्रजा को किसी प्रकार नियंत्रित किया और भगवान् के साथ पूरा समूह राजमहल पहुंचा|

राजभवन पहुंचने पर महामंत्री को भगवान् परशुराम ने राजकुमार सुचरित को सिंहासीन आरूढ़ करने की घोषणा की और तुरंत इसकी व्यवस्था करने का महामंत्री को आदेश दिया| भगवान् परशुराम की आज्ञा का तुरंत पालन हुआ|

अगले दिन शुभ मुहूर्त में भगवान् परशुराम एवं महर्षि कुर्तुक को एक उच्च आसन पर आसीन कर उनकी पूजा करने के बाद स्वयं माता लोपामुद्रा ने राज्याभिषेक की प्रक्रिया का संचालन किया| राजकुमार सुचरित को पूर्व की ओर मुख करके प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ण निर्मित सुंदर सिंहासन पर विराजमान कराया| दूसरी ओर हाथी दांत के बने हुए स्वर्ण विभूषित शुभ सिंहासन पर राजमाता शशियासी को बैठाया गया|

महामंत्री समेत सभी मंत्री पृथक पृथक सिंहासनों पर विराजमान हुए| राजकुमार सुचरित को सिंहासन पर बिठाकर आर्य वैदिक रीति के अनुसार श्वेत पुष्प स्वस्तिक, अक्षत, भूमि, स्वर्ण, रजत एवं मणि का स्पर्श कराने के तदुपरांत माता लोपामुद्रा ने उनको स्वर्ण मुकुट से विभूषित किया| इसके पश्चात महामंत्री, सेनापति आदि सभी विभूतियों ने पुरोहित को आगे कर बहुत सी मांगलिक सामग्री साथ लिये सम्राट सुचरित के दर्शन किए| तब माता लोपामुद्रा के निर्देश पर राजपुरोहित ने वेदी पर अग्नि को स्थापित करके उसमें विधि और मंत्र के साथ आहुति दी|

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः | स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ||
स्वस्ति नस्ताक्षर्यो अरिष्टनेमिः | स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ||
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ||

तत्पश्चात भगवान् परशुराम, महर्षि कुर्तुक एवं माता लोपामुद्रा ने उठकर सर्व प्रथम वेदी की पूजा की एवं भगवान् परशुराम ने शंख हाथों में ले कर उसके जल से सम्राट सुचरित का अभिषेक किया| भगवान् परशुराम की आज्ञा से शंख द्वारा अभिषेक हो जाने के पश्चात सभी मान्यगणों ने अभिषेक किया| तदन्तर राजमाता शशियासी ने सर्व प्रथम भगवान् परशुराम को, तदुपरांत महर्षि कुर्तुक एवं माता लोपामुद्रा को शीश नवाकर सम्राट सुचरित की ओर से धर्मानुसार आभार प्रकट किया| इस प्रकार सम्राट सुचरित का राज्याभिषेक पूर्ण हुआ|

तब भगवान् परशुराम अपने सिंहासन से उठे और सभी को सम्बोधित कर बोले, 'हे सम्राट सुचरित, राजमाता शशियासी, महर्षि कुर्तुक, माता लोपामुद्रा, महामंत्री, मंत्रीगणों, सेनापति, एवं सभी दस्यु राज्य प्रजा, सम्राट सुचरित के वयस्क होने तक राजमाता शशियासी उनकी संरक्षक बन राज्य का कार्यभार सम्हालेंगी| मैं ऐसी आशा करता हूँ कि सभी महामंत्री, मंत्रीगण, सेनापति एवं प्रजा का इसमें राजमाता को पूर्ण सहयोग मिलेगा| सम्राट सुचरित एवं राजमाता शशियासी का आर्यवंश में अधिष्ठापन हो चुका है अतः यह राज्य अब आर्यावर्त का की एक भाग है| मैं लोपामुद्रा के माध्यम से सभी इस राज्य के नर नारियों को आर्यवंश में अधिष्ठापित होने के लिए आमंत्रित करता हूँ| लोपामुद्रा इस शुद्धिकरण प्रक्रिया का पूर्ण प्रबंध करेंगी| यदि किसी को इसमें कोई आपत्ति हो तो वह अभी मेरे सम्मुख अपने विचार रखे|'

भगवान् परशुराम के इस संबोधन के समाप्त होते ही आदरपूर्वक महामंत्री, मंत्रीगण, सेनापति एवं राज्य के समस्त उपस्थित अधिकारीगण अपने अपने सिंहासनों से खड़े हो गए और सब ने भगवान् परशुराम के चरणों में शीश नवाया| तब सब की ओर से महामंत्री बोले, 'हे भगवन्, हम धन्य हुए जो आपके चरण कमल से आज हमारी यह अपवित्र भूमि पवित्र हो गई| आपके आदेश का अक्षरशः पालन होगा| मेरा और मेरे सभी मंत्रीगणों, सेनापति एवं सेना का समर्पण सम्राट सुचरित एवं राजमाता शशियासी को रहेगा| प्रजा आर्यवंश में सम्मिलित होने के आपके निर्णय का स्वागत करती है तथा हम प्रण करते हैं कि हम आज से आर्य वंश की प्रथाओं का पूर्ण पालन करेंगे|'

इस प्रकार समस्त राज्य को आर्यावर्त में विलीन कर एवं राज्य के सभी अधिकारियों से सम्राट एवं राजमाता के प्रति स्वामी-भक्ति का वचन ले कर, माता लोपामुद्रा को वहीं कुछ दिवस व्यवस्था को सम्हालने हेतु रहने का आदेश दे कर, भगवान् परशुराम एवं महर्षि कुर्तुक ने अपने दूसरे उद्देश्य की पूर्ति, सहस्त्रार्जुन का वध करने के लिए वहां से प्रस्थान किए|

मध्य प्रदेश के महिष्मती नगर का सम्राट सहस्त्रार्जुन एक क्रूर शासक था| सहस्त्रार्जुन क्षत्रियों के हैहय वंश के सम्राट कार्तवीर्य और सम्राज्ञी कौशिक का पुत्र था| उसका जन्म नाम तो अर्जुन था लेकिन दत्तात्रेय भगवान को प्रसन्न करने के लिए उसने घोर तपस्या की| उसकी तपस्या से प्रसन्न भगवान दत्तात्रेय ने उसको वरदान मांगने को कहा| तब अर्जुन ने भगवान् दत्तात्रेय से एक सहस्त्र कर मांगे ताकि उसे युद्ध में कोई हरा न सके और वह अविजित हो| भगवान् दत्तात्रेय से इस प्रकार वरदान प्राप्त कर उसका नाम अर्जुन से सहस्त्रार्जुन हो गया था| महान पराक्रमी सम्राट सहस्त्रार्जुन ने लंकापति रावण तक को भी बंदी बना लिया था|

एक बार लंकापति रावण माहिष्मती नगर सम्राट सहस्त्रार्जुन से मिलने गए| उस समय सम्राट सहस्त्रार्जुन अपनी पत्नियों के साथ नर्मदा नदी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे| नर्मदा नदी के तट पर पवित्र वातावरण देख लंकापति रावण ने वहां भगवान शिव की पूजा करना प्रारम्भ कर दिया| लंकापति रावण ने भगवान् शिव की साधना के लिए जो स्थान चुना वहां से थोड़ी ही दूरी पर सम्राट सहस्त्रार्जुन अपनी पत्नियों के साथ जल-क्रीड़ा में मग्न थे| सम्राट सहस्त्रार्जुन ने अपने एक सहस्त्र करों से खेल खेल में ही नर्मदा

नदी का बहाव रोक दिया जिससे नर्मदा का जल तटों के ऊपर चढ़ने लगा| जिस नर्मदा तट पर लंकापति रावण भगवान शिव की पूजा कर रहे थे वह तट नर्मदा के जल में डूबने लगा| अचानक नर्मदा में आई इस बाढ़ का कारण जानने के लिए तब लंकापति रावण ने अपने सैनिकों को भेजा| तभी सम्राट सहस्त्रार्जुन ने अचानक नर्मदा का जल छोड़ दिया जिससे लंकापति रावण की पूरी सेना बहाव में बह गई| अपने सैनिकों की मृत्यु से आहत लंकापति रावण ने सम्राट सहस्त्रार्जुन को युद्ध के लिए ललकारा| नर्मदा तट पर ही रावण और सम्राट सहस्त्रार्जुन में भयंकर युद्ध हुआ| अंत में सम्राट सहस्त्रार्जुन ने लंकापति रावण को बंदी बना लिया| जब यह बात लंकापति रावण के दादा महर्षि पुलस्त्य को पता चली तो वह सम्राट सहस्त्रार्जुन के पास आए और अपने पौत्र को कारागार से मुक्त करने की विनती करने लगे| सम्राट सहस्त्रार्जुन ने महर्षि का सम्मान करते हुए रावण पर विजय पाने के बाद भी उसे मुक्त कर दिया और उससे मित्रता कर ली| लंकापति रावण से विजय प्राप्त कर सम्राट सहस्त्रार्जुन घमंड में चूर हो कर धर्म की सभी सीमाओं को लांघने लगा| उसके अत्याचार और अनाचार से जनता त्राहि त्राहि पुकारने लगी| धार्मिक ग्रंथों को मिथ्या बताकर ब्राह्मणों का अपमान करना, ऋषियों के आश्रम को नष्ट करना, ऋषियों का बिना कारण वध करना, निरीह प्रजा पर निरंतर अत्याचार करना, यहां तक कि अपने मनोरंजन के लिए अबला स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करना, उसकी दैनिक प्रवर्ति बन चुके थे|

एक बार सहस्त्रार्जुन जौनपुर क्षेत्र वन में आखेट के लिए गया| इसी वन में भगवान् परशुराम के पिता महर्षि जमदग्नि का आश्रम था| भूख प्यास से व्याकुल सहस्त्रार्जुन अपने सैनिकों के साथ महर्षि के आश्रम में जल एवं आहार प्राप्त करने के उद्देश्य से गया| महर्षि जमदग्नि ने अपनी गाय कामधेनु की सहायता से सहस्त्रार्जुन और उसके सैनिकों का राजसी स्वागत किया और उनके भोजन एवं रहने का पूर्ण प्रबंध किया| गौ माँ कामधेनु का चमत्कार देखकर सहस्त्रार्जुन उस पर मुग्ध हो गया तथा उसने महर्षि जमदग्नि से गाय कामधेनु को उसे भेंट करने के लिए कहा| महर्षि जमदग्नि ने गौ कामधेनु को उसे देने से मना कर दिया| तब वह बल पूर्वक गौ कामधेनु का अपहरण कर अपनी राजधानी की ओर चला| उस समय भगवान् परशुराम आश्रम में नहीं थे| जब भगवान् परशुराम आश्रम लौटे तो पिता महर्षि जमदग्नि ने उन्हें पूर्ण विवरण बताया कि किस प्रकार सहस्त्रार्जुन अपने सैनिकों के साथ आश्रम में आया और किस प्रकार वह गौ कामधेनु का अपहरण कर अपनी राजधानी की ओर गया है|

भगवान् परशुराम जी अति क्रोधित मुद्रा में तब सहस्त्रार्जुन का वध करने उसकी राजधानी माहिष्मती की ओर तीव्र गति से चले| सहस्त्रार्जुन ने जब सुना कि भगवान् परशुराम जी उसका पीछा कर रहें हैं तो उनकी शक्ति को जानते हुए उनके डर से वह गौ कामधेनु को छोड़ वन में छिप गया| भगवान् परशुराम जी गौ कामधेनु को लेकर अवश्य वापस अपने पिता के आश्रम में आ गए लेकिन उनका क्रोध शांत नहीं हुआ| यह आवश्यक था कि इस पापी को उसके कर्म का दंड दिया जाए और इसका दंड केवल मृत्युदंड ही था| भगवान् परशुराम जी ने कई बार सहस्त्रार्जुन का वध करने का प्रयास किया लेकिन वह कायर उनके डर से कहीं न कहीं छुपता रहा| इसी मध्य उसके अत्याचार धार्मिक संतों एवं ऋषियों के प्रति बढ़ते रहे| इस बार भगवान् परशुराम ने संकल्प कर लिया कि उसे मृत्यु दंड दे कर ही वह वापस अपने आश्रम में लौटेंगे|

सहस्त्रार्जुन भी अब यह भली भांति समझ चुका था कि उसका इस प्रकार भगवान् परशुराम जी से छिपना अधिक समय तक संभव नहीं है| अतः उसने बीस सहस्त्र सैनिकों की एक विशाल सेना तैयार की| विजय प्राप्ति एवं भगवान् परशुराम जी को वीरगति प्राप्त कराने के उद्देश्य से तब वह आर्यावर्त की ओर बढ़ने लगा| अभी दस्यु राजधानी में भगवान् परशुराम ने सम्राट सुचरित का अभिषेक कराया ही था और वह महर्षि कुर्तुक के साथ सहस्त्रार्जुन वध के लिए निकलने वाले ही थे कि उन्हें सम्राट सुदास का सन्देश मिला कि सहस्त्रार्जुन एक विशाल सेना के साथ आर्यावर्त की ओर बढ़ रहा है|

तृत्सुग्राम में जब सम्राट सुदास को यह समाचार मिला कि सहस्त्रार्जुन एक विशाल सेना के साथ आर्यावर्त की ओर बढ़ रहा है और उसका प्रथम लक्ष्य सम्राट सुदास को पराजित कर उन्हें बंदी बना लेना है तो वह तुरंत गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ से विचार विमर्श करने उनके आश्रम पहुंचे| महर्षि वशिष्ठ को सहस्त्रार्जुन की शक्ति का अनुमान था| सहस्त्रार्जुन से समानता की क्षमता केवल भगवान् परशुराम में है और किसी में नहीं|

महर्षि वशिष्ठ ने आज्ञा दी, ‘भगवान् परशुराम का कोई समाचार नहीं मिल पा रहा है| मैंने उन्हें शशियासी और उसके पुत्र के शुद्धिकरण के लिए महर्षि भारद्वाज के पास भेजा था ताकि उनका आर्य वंश में अधिष्ठापन किया जा सके और राजकुमार सुचरित को दस्यु सिंहासन पर बैठा दिया जाए| मुझे समाचार मिला है कि शुद्धिकरण के पश्चात

वह दस्युनगरी के लिए प्रस्थान कर चुके हैं| हमें उनके लौटने की प्रतीक्षा करनी होगी| तब तक तुम राजपरिवार एवं प्रजा को भूमिगत होने का आदेश दो और स्वयं सेना सहित कुरुक्षेत्र को प्रस्थान करो| मैंने कई अन्य आर्यावर्त राज्यों को सामूहिक रूप से सहस्त्रार्जुन का सामना करने के लिए सहयोग माँगा है और सभी स्थान से सकारात्मक सन्देश मिला है| सभी अन्य आर्यावर्त राज्यों की सेना भी कुरुक्षेत्र में एकत्रित हो रही है| भगवान् परशुराम का समाचार मिलते ही मैं उन्हें कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान का सन्देश दे दूंगा| मैं यहीं आश्रम में भगवान् परशुराम की प्रतीक्षा करूंगा| मेरे सभी सन्यासियों को भी अपने साथ ले जाओ|'

सम्राट सुदास गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ की ओर से चिंतित हुए| वह दुष्ट सहस्त्रार्जुन गुरुदेव के साथ कुछ भी अनैतिक व्यवहार कर सकता है, इस आशंका से सम्राट सुदास की रूह काँप गई| गुरुदेव समक्ष करबद्ध खड़े हो विनती करने लगे, 'गुरुदेव, मैं समस्त राज परिवार और प्रजा को भूमिगत होने का आदेश देता हूँ और अपनी सेना को सेनापति के निर्देश में कुरुक्षेत्र प्रस्थान का भी आदेश देता हूँ| लेकिन स्वयं आपके साथ आपकी रक्षा हेतु उपस्थिति रहने की आज्ञा चाहता हूँ|'

गुरुदेव वशिष्ठ ने सम्राट सुदास की ओर देखा और प्रेम से उनकी पीठ को थपथपाते हुए मुसकुराकर बोले, 'सम्राट, मैं अपनी सुरक्षा करने के लिए सक्षम हूँ| तुम जाओ और मेरे आदेश का पालन करो|'

सहस्त्रार्जुन ने जब अपनी विशाल सेना सहित तृत्सुग्राम में प्रवेश किया तो नगर को रिक्त पाया| क्रोध में वह महर्षि वशिष्ठ के आश्रम की ओर दौड़ा| वहां भी आश्रम को रिक्त ही पाया लेकिन अग्नि-वेदी के समक्ष बैठे हुए महर्षि वशिष्ठ को देखा| अपने अश्व से उतरकर सीधा वह महर्षि की ओर बढ़ा| व्यंग में महर्षि से बोला, 'तो तुम अभी भी यहीं हो? क्या तुम्हें मुझ से भय नहीं लगता?'

महर्षि वशिष्ठ बिना उसकी ओर देखे यज्ञ में मन्त्र उच्चारण के साथ हवि डालते रहे| अपनी इस अनदेखी पर सहस्त्रार्जुन को अत्यंत क्रोध आया और चीखकर बोला, ' यह सब रोको, क्या तुम मुझे नहीं जानते?'

महर्षि ने अब सहस्त्रार्जुन की ओर मुख किया और विनम्र स्वर में बोले, 'पुत्र अर्जुन, मैं तुम्हें तब से जानता हूँ जब तुमने इस पृथ्वी पर जन्म लिया था|'

महर्षि वशिष्ठ आगे कुछ बोलना चाहते ही थे कि अभिमानी सहस्त्रार्जुन ने अट्टहास कर उन्हें रोक दिया और अपमान भरे शब्दों में महर्षि वशिष्ठ से बोला, 'हे वृद्ध व्यक्ति, मैं तुम से उपदेश लेने नहीं परन्तु तुम्हारा विनाश करने आया हूँ| आज मैं इस आश्रम को अग्नि में जलाकर भस्म कर दूंगा|'

तब विनीत शब्दों में महर्षि वशिष्ठ बोले, 'हे सहत्रार्जुन, यह आश्रम भगवान् की स्वयं देन है| इसको भस्म करने के प्रयास करने पर तुम स्वयं भस्म हो जाओगे|'

क्रोधित सहस्त्रार्जुन ने महर्षि को तब दाढ़ी से पकड़कर खींचने का प्रयास किया|

'बस सहस्त्रार्जुन, अब तूने अपनी मृत्यु को आमंत्रित कर लिया| मैं तुझे स्वयं अभी भस्म करने की क्षमता रखता हूँ लेकिन तेरी मृत्यु भगवान् परशुराम के हाथों निश्चित है इसलिए प्रभु के कार्य में विघ्न न डालते हुए मैं तुझे श्राप देता हूँ कि इस आश्रम की परिधि में तू शक्तिहीन हो जाए और शीघ्र ही ब्राह्मण के हाथों मारा जाए', महर्षि वशिष्ठ बोले|

सहस्त्रार्जुन को ऐसी आशा नहीं थी कि महर्षि उसे इस प्रकार शक्तिहीन होने का श्राप दे देंगे| उसने महर्षि को मारने के लिए तलवार उठाने का प्रयास किया लेकिन तलवार उठती ही नहीं थी| दुःखी मन से वह आश्रम से बाहर निकल आया|

वह आश्रम से बाहर निकला ही था कि उसके एक गुप्तचर ने कुरुक्षेत्र में सम्राट सुदास एवं अन्य आर्यावर्त राज्यों की सेना के एकत्रित होने की सूचना उसको दी| साथ में यह सूचना भी दी कि भगवान् परशुराम भी उसका सामना करने के लिए दस्यु नगरी से निकल चुके हैं और उनके साथ कोई एक और ऋषि भी हैं| सहस्त्रार्जुन ने तुरंत अपनी सेना को कुरुक्षेत्र की ओर रुख करने का आदेश दिया|

भगवान् परशुराम महर्षि कुर्तुक के साथ तीव्र गति से तृत्सुग्राम पहुंचे| वहां उन्होंने नगर को रिक्त पाया| समझ गए कि अवश्य ही सहस्त्रार्जुन अपनी सेना सहित

आक्रमण करने आ चुका है| तुरंत महर्षि वशिष्ठ के आश्रम की ओर दौड़े| आश्रम भी रिक्त था लेकिन एक कोने से आती यज्ञ हवि की सुगंध ने उन्हें आकर्षित किया| उन्होंने देखा कि महर्षि वशिष्ठ अकेले ही मंत्रोचारण के साथ यज्ञ कर रहे हैं| कुछ घायल से लग रहे हैं| वह तुरंत महर्षि वशिष्ठ की ओर पहुंचे और उनका आलिंगन किया| वह समझ गए कि यह दुष्कर्म केवल सहस्त्रार्जुन ही कर सकता है| सहस्त्रार्जुन का इतना दुःसाहस कि उसने समस्त आर्यावर्त से पूजित गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ का अपमान कर उन्हें घायल कर दिया! भगवान् परशुराम का क्रोध से रक्त उबल गया|

महर्षि वशिष्ठ से पूर्ण वृतांत सुनने के बाद भगवान् परशुराम ने उनसे कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी और वचन दिया कि इस बार वह सहस्त्रार्जुन को मृत्यु दंड अवश्य देंगे|

जब भगवान् परशुराम महर्षि कुर्तुक के साथ कुरुक्षेत्र पहुंचे तब तक दोनों ओर की सेनाएं आमने सामने युद्ध के लिए तत्पर खड़ी हुईं थीं| तुरंत वह दोनों सेनाओं के मध्य पहुँच कर सहस्त्रार्जुन को सम्बोद्धित कर बोले, 'हे दुष्ट सहस्त्रार्जुन, तेरा और मेरा वैर है| निर्दोष सैनिकों की हत्या करने के स्थान पर मुझ से द्वन्द युद्ध कर और विजय प्राप्त करने का प्रयास कर| यदि तू मुझे वीरगति देने के प्रयास में सफल हुआ तो विजय तेरी| और यदि मैंने तुझे वीरगति को प्राप्त करा दिया तो यह विजय आर्यावर्त राज्यों की होगी| अपने सेनापति और सैनिकों को युद्ध न करने का आदेश दे मुझ से द्वन्द कर|'

अभिमानी सहस्त्रार्जुन अट्टहास कर हंसा और कहने लगा, 'हे निर्बल पुरुष, मैंने आज तक तुझे ब्राह्मण समझकर तेरे प्राण नहीं हरे| अब यदि तुझे यमराज अधिक ही प्रिय हैं तो मैं अवश्य तेरा द्वन्द युद्ध करने का प्रस्ताव मैं स्वीकार करता हूँ|'

अपने सेनापति पुत्र को युद्ध न करने की आज्ञा दे स्वयं रथ से उतर कर भगवान् परशुराम से द्वन्द युद्ध करने के लिए वह अभिमानी सहस्त्रार्जुन तत्पर हुआ| इधर भगवान् परशुराम ने भी महर्षि कुर्तुक, सम्राट सुदास एवं समस्त आर्यवर्त सम्राटों को केवल द्वन्द युद्ध देखने की एवं युद्ध न करने की आज्ञा दी|

वह अत्यन्त भयंकर युद्ध था| दोनों ही दिव्यास्त्रों के ज्ञाता एवं शूरवीर थे| उस युद्ध में दोनों ही, सहस्त्रार्जुन एवं भगवान् परशुराम, अपने अपने प्राणों का मोह छोड़कर कुपित हो पूर्ण शक्ति के साथ युद्ध करने लगे| सहस्त्रार्जुन ने प्रज्वलित उल्का के समान एक भयंकर शक्ति छोड़ी जिसका अग्र भाग उद्दीप्त हो रहा था| वह शक्ति अपने तेज से सम्पूर्ण लोक को व्याप्त किए हुई थी| तब भगवान् परशुराम ने प्रलय काल के सूर्य की भाँति प्रज्वलित होने वाली उस देदीप्यमान शक्ति को अपनी ओर आती देख कर अनेक बाणों द्वारा उसके तीन टुकड़े कर उसे भूमि पर गिरा दिया| फिर तो पवित्र सुगन्ध से युक्त मन्द मन्द वायु चलने लगी| उस शक्ति के कट जाने पर सहस्त्रार्जुन क्रोध से जल उठा तथा उसने दूसरी भयंकर बारह शक्तियां और छोड़ीं| वह इतनी तेजस्विनी तथा शीघ्र गामिनी थीं कि उनके स्वरूप का वर्णन करना असम्भव है| प्रलय काल के बारह सूर्यों के समान भयंकर तेज से प्रज्वलित अनेक रूप वाली तथा अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के समान धधकती हुई उन शक्तियों को सब ओर से आती देख एक क्षण को भगवान् परशुराम विह्वल हो गए| तत्पश्चात उन्होंने अपने बाण समूहों से उन शक्तियों को छिन्न भिन्न कर डाला| तब सहस्त्रार्जुन ने बारह सायकों का प्रयोग किया| उन भयंकर शक्तियों को भी भगवान् परशुराम ने व्यर्थ कर दिया| तत्पश्चात भगवान् परशुराम ने स्वर्णमय दण्ड से विभूषित और भी बहुत सी भयानक शक्तियां चलाईं जो विचित्र दिखायी देती थीं| उनके ऊपर सोने के पत्र जड़े हुए थे और वह जलती हुई बड़ी बड़ी उल्काओं के समान प्रतीत होती थीं| उन भयंकर शक्तियों को भी सहस्त्रार्जुन ने रोक लिया| तत्पश्चात भगवान् परशुराम पर सहस्त्रार्जुन ने दिव्य बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी| उन सभी अस्त्रों को भगवान् परशुराम ने विफल कर दिया| जब सहस्त्रार्जुन की बाण वर्षा समाप्त हुई तब भगवान् परशुराम ने परशु से सहस्त्रार्जुन पर हमला बोल दिया| परशु की मार सहस्त्रार्जुन को असहनीय लगी और उसके एक के बाद एक हाथ धरती पर कट कर गिरने लगे| अंततः मृत्यु ने उसको गले लगा लिया और इस प्रकार एक दुष्ट का अंत हुआ|

सहस्त्रार्जुन के वीरगति प्राप्त होने की सूचना से उसकी सेना में हाहाकार मच गया| सेना इधर उधर भागने लगी| लेकिन जैसा पिता वैसा पुत्र| सहस्त्रार्जुन के सेनापति पुत्र ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए अपने पिता के वचन का भी सम्मान नहीं किया और अचानक महर्षि कुर्तुक और सम्राट सुदास जो सेना का मुख्य प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उन पर हमला बोल दिया| सर्वप्रथम उसका सामना महर्षि कुर्तुक से हुआ| इस अचानक हमले के लिए महर्षि कुर्तुक तैयार नहीं थे| उस दुष्ट ने

बिना चेतावनी के कायर की भांति उन पर हमला कर उन्हें बुरी प्रकार घायल कर दिया| यह देख तत्काल भगवान् परशुराम महर्षि कुर्तुक की ओर दौड़े और शत्रु को ललकारने लगे| वह कायर भगवान् परशुराम को समक्ष देख तुरंत वहां से अदृश्य हो गया| सहस्त्रार्जुन की सेना अब बिना राजा और सेनापति के युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ी हुई| इस युद्ध में रक्त तो केवल दो का ही बहा, वीरगति प्राप्त सहस्त्रार्जुन एवं कायरता से हमले के शिकार हुए महर्षि कुर्तुक|

सभी आर्यवर्त सम्राटों को धन्यवाद देते हुए तथा अपनी अपनी सेनाओं के साथ अपने अपने राज्य वापस लौट जाने का आदेश देने के बाद घायल महर्षि कुर्तुक को ले भगवान् परशुराम एवं सम्राट सुदास तुरंत महर्षि वशिष्ठ के आश्रम की ओर चल दिए| महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पहुँच कर तुरंत वह महर्षि कुर्तुक के उपचार में लग गए| लेकिन उनके घाव अत्यंत गहरे एवं प्राण घातक थे| महर्षि वशिष्ठ के पूर्ण उपचार के पश्चात भी उनके स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा था| उनका समाधि दिन निकट जान कर महर्षि वशिष्ठ ने तुरंत उनकी पुत्री कुर्तकी एवं महर्षि भारद्वाज को आने का और महर्षि कुर्तुक के अंतिम दर्शन करने का संदेशा प्रयाग भेजा| दुःखद समाचार पा तुरंत पुत्री कुर्तकी एवं महर्षि भारद्वाज अपनी पत्नी सुशीला जी के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पधारे|

पिता की यह अवस्था देख कुर्तकी का हृदय भर आया| तब पिता ने उन्हें ज्ञान दिया और ऋषि-पत्नी सुशीला जी के चरणों में अपनी पुत्री को डाल दिया| ऋषि-पत्नी सुशीला जी को आदर सहित सम्बोधित करते हुए तथा अपनी पुत्री का स्वयं की पुत्री की भांति लालन पालन करने की विनती के साथ उन्होंने अपने इस पार्थिव शरीर को त्याग दिया|

स्वयं महर्षि वशिष्ठ जी ने उनका अन्तिम संस्कार किया| पुत्री कुर्तकी को सांत्वना देते हुए स्वयं भगवान् परशुराम ने उनके साकेत धाम निवास, प्रभु से मिलन एवं आत्मा की मुक्ति का सन्देश दिया| पुत्री कुर्तकी को अब ऋषि-पत्नी सुशीला के रूप में अपनी माँ मिल गईं थीं और पिता के रूप में पिता के घनिष्ठ मित्र एवं गुरु भाई स्वयं महर्षि भारद्वाज|

शोक युक्त नए परिवार के साथ कुर्तकी महर्षि भारद्वाज के आश्रम प्रयाग आ गईं| माँ सुशीला के कंधे पर अपना सर रख बोलीं, 'माँ, पिता ने मुझे आपके चरणों में डाल दिया है| अब मेरा कुर्तुक आश्रम में क्या काम? मैं अपने गुरु भाई परम को सम्राट सुदास द्वारा दिए हुए कोष का कुछ भाग भेज कर उनको कुर्तुक आश्रम का अधिष्ठाता बनाने की घोषणा करना चाहती हूँ तथा मैं जीवन भर आपकी सेवा में यहीं प्रयाग आश्रम में ही रहना चाहती हूँ| मुझे आज्ञा दें|'

माँ सुशीला ने पुत्री को सीने से लगा लिया और बोलीं, 'पुत्री, जैसी तुम्हारी इच्छा |'

कुर्तकी के अस्त्र, शस्त्र ज्ञान से प्रभावित महर्षि भारद्वाज ने तब उन्हें गुरुकुल का उपकुलपति नियुक्त कर विशेष तौर पर यंत्र विभाग का अध्यक्ष घोषित कर दिया| इस प्रकार कुर्तकी महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल का एक अभिन्न अंग बन गईं|

कुर्तकी के शोध

उपकुलपति कुर्तकी को महर्षि भारद्वाज जी के आश्रम में आए कुछ ही समय बीता होगा कि एक दिन कुबेर देव का वहां आगमन हुआ| महर्षि भारद्वाज ने उन्हें पूर्ण सम्मान के साथ एक उच्च आसन दिया और बोले, 'हे देव, आपने अपने व्यस्त जीवन के कुछ क्षण मेरे आश्रम के लिए निकाले, मैं धन्य हो गया| मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

तब कुबेर देव ने महर्षि भारद्वाज जी से उनकी यात्रा की सुविधा के लिए एक ऐसा रथ निर्माण करने की प्रार्थना की जो जल, थल एवं नभ में समान रूप से चल सके| आवश्यक्ता पड़ने पर शत्रुओं से रक्षा हेतु इसे अदृश्य किया जा सके तथा मन्त्र द्वारा चलित हो| कुबेर देव की इस प्रार्थना पर महर्षि भारद्वाज के निर्देश पर उपकुलपति कुर्तकी ने यह कार्य तब अपने हाथ में लिया और इस प्रकार महर्षि भारद्वाज द्वारा रचित ग्रन्थ, 'यंत्र सर्वस्य' का शुभारम्भ हुआ|

महर्षि भारद्वाज एवं उपकुलपति कुर्तकी में चर्चा होने लगी| सर्व प्रथम विचारणीय विषय था कि इस रथ को जो जल, थल एवं नभ में समान रूप से चल सके, उसका नाम क्या होगा? कुछ विचार के बाद महर्षि के मुख से शब्द निकला, 'विमान'| परिभाषा देते हुए महर्षि बोले, वि अर्थ नभ एवं मान जिसमें मापने की क्षमता हो, अर्थात एक ऐसा रथ जो आकाश को माप सके| उपकुलपति कुर्तकी ने 'साधु, साधु' शब्दों के साथ इस नामकरण का स्वागत किया और इस प्रकार इस रथ यंत्र का नाम पड़ा 'विमान'|

अगली समस्या थी कि इस विशेष विमान को चलाने के लिए किस ईंधन का प्रयोग किया जाए जो सदैव उपलब्ध हो एवं कभी समाप्त न हो| कई प्रकार के ईंधनों, जैसे सूर्य ऊर्जा, वायु ऊर्जा, चुम्बक ऊर्जा, तेल ऊर्जा इत्यादि पर चर्चा हुए| तेल ऊर्जा के लिए एक विशाल हौज की आवश्यक्ता होगी और फिर उसे बार बार भरना पड़ेगा| चुम्बक ऊर्जा के लिए बिजली की आवश्यक्ता होगी जो हर समय संभव नहीं| सौर ऊर्जा का उपयोग केवल दिन में ही किया जा सकता है, अतः उपयुक्त नहीं| दोनों महर्षि एवं उपकुलपति कुर्तकी ने निश्चय किया कि यह विमान वायु द्वारा ही संचालित होना चाहिए|

अगला चर्चा का विषय था, निर्माण धातु का चयन| यहां विचाराधीन था ऐसी धातु का चयन जो अदृश्य होने के लिए प्रकाश को पूर्ण रूप से समाहित कर ले| तब तमो-गर्भ लौह धातु पर सम्मति बनी| इसकी क्षमता ९० प्रतिशत तक प्रकाश को समाहित कर वस्तु को अदृश्य करने की है| यह धातु रंग में काली, शीशे से भी कठोर एवं किसी भी प्रकार के क्षरण से प्रभावहीन है|

श्री कुबेर देव की इच्छा के अनुसार इस विमान में विभिन्न प्रकार के आवश्यक यंत्रों का प्रावधान किया गया|

(१) **विश्व क्रिया दर्पण यंत्र**: शत्रुओं की विमान के आस पास गति विधियों जानने के लिए|
(२) **परिवेष क्रिया यंत्र**: मन्त्र द्वारा स्वचालित वैमानिक यंत्र जिससे विमान को नभगत, गति, भूमिगत इत्यादि के निर्देश दिए जा सकें|
(३) **शब्दाकर्षण यंत्र**: केवल ध्वनि जैसे पक्षियों के स्वर आदि सुनने से विमान को दुर्घटना से बचाया जा सके|
(४) **गुह गर्भ यंत्र**: धरा के अन्दर विस्फोटक खोजने का यंत्र|
(५) **शक्त्याकर्षण यंत्र**: विषैली किरणों को आकर्षित कर उन्हें उष्णता में परिवर्तित कर वातावरण में छोड़ने का यंत्र|
(६) **दिशा दर्शी यंत्र**: दिशा दिखाने वाला यंत्र|
(७) **वक्र प्रसारण यंत्र**: शत्रु के अचानक सामने आने पर विमान को विपरीत दिशा में जाने को निर्देश देने वाला यंत्र|
(८) **अपस्मार यंत्र**: युद्ध के समय विषैली गैस छोड़ने का निर्देश देने वाला यंत्र|
(९) **तमो-गर्भ यंत्र**: विमान को अदृश्य करने वाला यंत्र|

इस प्रकार पुष्पक विमान का आविष्कार हुआ जो पूर्णतः मांत्रिक था, अर्थात मंत्रों के आधार पर चलता था| पुष्पक विमान की गति पराध्वनिक थी| इसे न तो खण्डित किया जा सकता था, न जलाया जा सकता था और न ही काटा जा सकता था| इस विमान की यह भी विशेषता थी कि यह चालक की प्रवर्ति को जानने में सक्षम था| उदाहरण के तौर पर यदि चालक की मानसिक स्थिति ठीक नहीं है, अथवा चालक से कोई अक्षम्य पाप हो गया है तो वह उड़ान ही नहीं भरेगा| इस विषय में एक कथा का विवरण

आता है जो इस विमान के निर्माण के बहुत बाद में घटी लेकिन विमान के चालक की मनःस्थिति समझने का एक ज्वलंत उदाहरण है|

पुष्पक विमान के निर्माण एवं सफल प्रयोग के बाद इसे श्री कुबेर देव को सौंप दिया गया| कुबेर देव महर्षि भारद्वाज एवं उपकुलपति कुर्तकी से अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें अक्षय भण्डार के स्वामित्व का वरदान दिया| कालांतर में जैसा इतिहास विदित है कि लंकापति रावण ने अपने भ्राता कुबेर देव से यह विमान युद्ध में जीत लिया और अपने उपयोग में लाने लगा| घटना उस समय की है जब भगवान् श्री राम ने लंकापति रावण का वध कर दिया और पुष्पक विमान में बैठ अपने साथियों के साथ अयोध्यापुरी को प्रस्थान करना चाहा| पुष्पक विमान को निर्देशित करने के लिए यथोचित मंत्रोचारण किया गया लेकिन विमान नभगत नहीं हुआ| सभी के पूर्ण प्रयास के पश्चात भी जब विमान ने उड़ान नहीं भरी तो श्री राम ने श्री हनुमान जी को महर्षि भारद्वाज जी के आश्रम प्रयागराज भेजा ताकि वह इसका कारण जान सकें| प्रयाग आश्रम पहुँच श्री हनुमान जी ने महर्षि भारद्वाज जी को दंडवत प्रणाम कर सब वृतांत सुनाया तब महर्षि जी ने तुरंत श्री हनुमान जी से कहा कि श्री राम ने एक ब्राह्मण रावण का वध किया है, अतः ब्रह्म-हत्या का पाप उनके सर पर है| जब तक वह इसका प्रायश्चित नहीं कर लेंगे तब तक विमान में स्थित यंत्र उन्हें उड़ान नहीं भरने देगा| श्री हनुमान जी ने लंका वापस पहुँच जैसे ही यह वृतांत भगवान् श्री राम को बताया तब उन्हें अपनी भूल का आभास हुआ और वहां श्री महादेव के शिवलिंग की स्थापना कर प्रायश्चित हेतु प्रार्थना की| यह मंदिर आज भी श्री लंका में विद्यमान है| तब महादेव प्रगट हुए| उन्हें ब्रह्म-हत्या के पाप से मुक्त किया और तब पुष्पक विमान ने उड़ान भरी|

उपकुलपति कुर्तकी के प्रयाग निवास के समय एक भयंकर महामारी पेचिस के साथ उत्तरी भारत में भीषण अकाल पड़ा| महर्षि भारद्वाज एवं कुर्तकी को क्षेत्र की व्यथा ने विचलित कर दिया| इसका कोई समाधान अवश्य होना चाहिए, यह जनहित हेतु विचार दोनों ही महाज्ञानियों के हृदय में आया और वह इसका समाधान ढूंढने में लग गए| महर्षि भारद्वाज ने स्वयं इन्द्रदेव से आयुर्वेद विज्ञान की शिक्षा ली थी एवं उपकुलपति के हिमालयवास ने उन्हें सभी प्रकार की जड़ी बूटीओं का ज्ञान दिया था, अतः दोनों आयुर्वेद के माध्यम से इस महामारी की औषधि बनाने में जुट गए| महर्षि भारद्वाज के परम शिष्य महर्षि दिवोदास एवं महर्षि धन्वन्तरि के साथ मिलकर उपकुलपति कुर्तकी ने अष्टांग आयुर्वेद के द्वारा इस महामारी की औषधि का निर्माण

किया| तत्पश्चात महर्षि भारद्वाज ने ‘आयुर्वेद संहिता’ पुस्तक लिखी जिसमें सभी प्रकार की बीमारी की औषिधिओं का उल्लेख है|

महामारी एवं अकाल के कारणों की विवेचना करते हुए उपकुलपति कुर्तकी कहतीं हैं कि इस प्रकार की बीमारी एवं प्राकृतिक आपदाएं प्रकृति के असंतुलन के कारण पैदा होतीं हैं| इस असंतुलन को संतुलन में परिवर्तित करने के लिए उन्होंने पर्यावरण पर ध्यान देना आवश्यक बताया|

उपकुलपति ने सन्देश दिया कि पर्यावरण प्राकृतिक उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है जो मानव जगत को परावृत्ति करती हैं तथा उनके क्रिया कलापों को अनुशासित करती हैं| यह आवश्यक है कि पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें| वह आगे कहती हैं कि अदृश्य आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी एवं उसके सभी घटक, जल, औषधियां, वनस्पतियों, संपूर्ण संसाधन एवं ज्ञान सभी जब संतुलन की अवस्था में रहते हैं तभी व्यक्ति और विश्व, शान्ति एवं संतुलन की स्थिति में रह सकता है|

जब जब मानव प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है तब प्रकृति रौद्र रूप चंडिका बन जाती है| उन्होंने ऋग्वेद के मन्त्र**, ‘माँ नो माता पृथ्वी दुरंतो धात’** (हे माँ पृथ्वी, तू हम पर अपनी कोप दृष्टि मत डाल, तेरे रुष्ट होने पर ही हमें अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाएं झेलनी पड़ती हैं) से पृथ्वी को शांत करने का प्रयास किया तथा कई यज्ञों का संचालन किया| उन्होंने सन्देश दिया, **‘माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः’**, पृथ्वी हमारी माता है उसके ममतामय दुग्ध का दोहन करो एवं उनसे प्रेम, वात्सल्य एवं कृपाओं का आशीष माँगो|

उन्होंने वेदों के मन्त्रों का उल्लेख करते हुए, **‘भूमिर्माता भ्राता अन्तरिक्षं द्या ना पिता'** एवं **'दशपुत्रसमो द्रुमः'**, कहा| पृथ्वी माता है, धुलोक पिता है और अंतरिक्ष भाई है| एक वृक्ष की महिमा दस पुत्रों से भी अधिक होती है|

इस महामारी एवं अकाल के शांत होने के कुछ समय पश्चात कुम्भ मेले का समय आ गया| हर कुम्भ मेले पर महर्षि भारद्वाज के प्रयाग आश्रम में देश विदेश के कोने कोने से ऋषियों, महर्षियों एवं साधु संतों का जमघट लगता था| महर्षि भारद्वाज और उनके

समस्त शिष्य कुम्भ मेले की पूर्ण व्यवस्था संचालित करते थे| यह एक अत्यंत कठिन कार्य था जिसमें सहस्रों की संख्या में आगुन्तकों के रहने एवं खान-पान की व्यवस्था आश्रम द्वारा सफलता पूर्वक संचालित की जाती थी|

आर्यकुल के गुरु महर्षि वशिष्ठ के आश्रम से भी महर्षि भारद्वाज के पास संदेशा आया कि वह ऋषि-पत्नी अरुंधती एवं अपने पचास अन्य शिष्य एवं शिष्याओं के साथ कुम्भ मेले में भाग लेने संगम प्रयाग प्रस्थान कर रहे हैं| महर्षि वशिष्ठ एवं ऋषि-पत्नी अरुंधति के आने के समाचार से समस्त प्रयाग गुरुकुल में एक प्रसन्नता की लहर दौड़ गई| गुरु देव महर्षि वशिष्ठ, गुरु माँ अरुंधती एवं उनके साथ आने वाली टोली के स्वागत एवं उनके निवास की पूर्ण सुखद व्यवस्था का प्रबंध महर्षि भारद्वाज के आश्रम में होने लगा| गुरु माँ के स्वागत और उनके सुखद निवास का उत्तरदायित्व माँ सुशीला और पुत्री कुर्तकी को दिया गया और स्वयं महर्षि भारद्वाज जी ने आर्यकुल के श्रेष्ठ गुरु महर्षि वशिष्ठ जी के स्वागत एवं सुखद निवास का विशेष अतिथि गृह में प्रबंध किया|

कुम्भ मेला सनातन धर्म का एक महत्त्वपूर्ण पर्व है जिसमें सहस्रों की संख्या में समस्त आर्यावर्त एवं विदेश से श्रद्धालु कुम्भ पर्व स्थल, हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में तन को पवित्र एवं दीर्घ आयु के लिए स्नान करते हैं| पूर्ण कुम्भ का आयोजन इन हर स्थली पर प्रति बारहवें वर्ष में जब सूर्य एवं चंद्र एक साथ अमावस्या के दिन मकर राशि में प्रवेश करते हैं, तब होता है| इस पवित्र स्नान के लिए माँ गंगा, माँ यमुना और माँ सरस्वती की संगम स्थली प्रयाग को विशेष महत्व दिया गया है| कुम्भ पर्व एक अमृत स्नान और अमृत पान की बेला है| ऐसी मान्यता है कि इसी समय माँ गंगा की पावन धारा में अमृत का सतत प्रवाह होता है, अतः यह काल प्रत्येक आर्य जनमानस की चेतना की विराटता का द्योतक है|

पौराणिक कथाओं के अनुसार यह पर्व समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत-घट के लिए हुए देवासुर संग्राम से जुड़ा है| मान्यता है कि समुद्र मंथन से १४ रत्नों की प्राप्ति हुई जिनमें प्रथम विष एवं अंत में अमृत-घट प्रगट हुआ था| अमृत-घट से अमृत पाने की होड़ ने सुर और असुरों में एक युद्ध का रूप ले लिया था| ऐसे समय असुरों से अमृत की रक्षा के उद्देश्य से इन्द्र पुत्र जयंत उस कलश को लेकर वहाँ से पलायन कर गये| वह युद्ध बारह वर्षों तक चला| इस समय सूर्य, चंद्रमा, गुरु एवं शनि देवों ने अमृत कलश की रक्षा में सहयोग दिया| ऐसी मान्यता है कि इन बारह वर्षों में बारह स्थानों पर इंद्र पुत्र जयंत द्वारा अमृत कलश रखने से वहाँ अमृत की कुछ बूंदें छलक गईं| उन्हीं स्थानों

पर एवं ग्रहों के उन्हीं संयोगों पर कुम्भ पर्व का आयोजन किया जाता है| श्रुति में विवरण के अनुसार इन बारह स्थानों में से आठ पवित्र स्थान देवलोक में हैं तथा चार पृथ्वी पर हैं| पृथ्वी के उन चारों स्थानों पर प्रत्येक बारह वर्ष में कुम्भ मेले का आयोजन किया जाता है|

इस संदर्भ में घटने वाली खगोलीय स्थिति का उल्लेख स्कंद पुराण में भी मिलता है|

पद्मिनी नायके मेषे कुम्भराशि गते गुरौ |
गंगा द्वारे भवेद्योगः कुम्भनाम्रातदोत्तमः ||

शुभ पर्व कुम्भ का दिन आ गया| महर्षि भारद्वाज को समाचार मिला कि महर्षि वशिष्ठ और उनकी टोली आश्रम की ओर बढ़ रहे हैं और कुछ ही क्षणों में आश्रम पहुँचने वाले हैं| ऋषि-पत्नी सुशीला, पुत्री कुर्तकी एवं आश्रम के अन्य मान्यगण ऋषियों के साथ तुरंत महर्षि भारद्वाज आश्रम के द्वार पर पुष्प मालाएं लेकर पहुंचे| महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में प्रवेश के साथ ही उनका भव्य स्वागत पुष्प मालाओं एवं मंत्रोचारण के साथ किया गया| दोनों महर्षियों ने आलिंगन किया| पुत्री कुर्तकी एवं अन्य ऋषिगणों ने दंडवत प्रणाम कर महर्षि वशिष्ठ एवं माता अरुंधति का स्वागत किया| तब माता अरुंधति को लेकर ऋषि-पत्नी सुशीला एवं पुत्री कुर्तकी अपनी कुटिया में चले गए और महर्षि वशिष्ठ को लेकर महर्षि भारद्वाज विशेष अतिथि कक्ष की ओर चले गए| अन्य टोली के सदस्यों को यथोचित उनके निवास स्थान पर ले जाया गया|

कुम्भ पर्व के समय में प्रयाग आश्रम और गुरुकुल में प्रतिदिन नए उत्सव मनाए जाते थे| इसी प्रकार पता ही नहीं चला और एक पखवाड़ा बीत गया| महर्षि वशिष्ठ के अतिथि कक्ष में प्रतिदिन उनसे मिलने और विचार विमर्श करने वाले आर्यावर्त के विभिन्न सम्राटों एवं ऋषि, मुनियों का तांता लगा रहता था| कुम्भ पर्व के समापन पर सभी अतिथिओं को विदा कर महर्षि भारद्वाज जी महर्षि वशिष्ठ के अतिथि कक्ष में पहुंचे और उनसे कुछ दिन और निवास करने की प्रार्थना की| महर्षि वशिष्ठ गहन मुद्रा में महर्षि भारद्वाज से बोले, 'हे ऋषिवर, इस कुम्भ पर्व पर मैं आपसे और आपके परिवार से मिलकर धन्य हो गया| इस कुम्भ पर्व पर आपके और सौभाग्यवती सुशीला के दर्शन एवं माँ गंगा में स्नान करने के अतिरिक्त मेरा एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य था|

अब मैं उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपके एवं पुत्री कुर्तकी के साथ कुछ समय बिताना चाहूंगा, आप अनुमति दें|'

सर्वदर्शी महर्षि भारद्वाज को तो इस महत्वपूर्ण उद्देश्य का पहले से ही अनुमान था, फिर भी वह इसे महर्षि वशिष्ठ जी के लोचन मुख से सुनना चाहते थे| महर्षि भारद्वाज गदगद हो गए| उन्होंने तुरंत पुत्री कुर्तकी को अतिथि कक्ष में आने के लिए आमंत्रण भेजा| एक ऋषि पुत्र को ऋषि-पत्नी सुशीला जी के कक्ष में पुत्री कुर्तकी को बुलाने भेजा|

उपकुलपति कुर्तकी तुरंत दौड़ कर आईं| अहोभाग्य मेरे जो मेरे पिताश्री के गुरु, मेरे अति पूज्य भगवान् स्वरूप महर्षि वशिष्ठ जी ने मुझे विशेष रूप से मिलने बुलाया| इसकी कल्पना करते ही उनके नेत्रों से प्रेम के अश्रु निकल पड़े| आते ही सजल नेत्रों से महर्षि वशिष्ठ के चरणों से लिपट गईं और मधुर विनम्र शब्दों में बोलीं, 'हे परम पूज्य, मेरे लिए क्या आज्ञा है?'

महर्षि वशिष्ठ ने पुत्री कुर्तकी को तुरंत हृदय से लगा लिया और बोले, 'पुत्री, तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारे पिता महर्षि कुर्तुक मेरे अति प्रिय शिष्यों में से एक थे| उनका जन्म तो मोक्ष प्राप्ति के लिए ही हुआ था| साकेत धाम में वह भगवान् परशुराम के आशीर्वाद से मुक्ति पा प्रभु के चरणों में हैं, यह जान मुझे विशेष प्रसन्नता होती है| हर व्यक्ति का इस पृथ्वी पर आने का एक उद्देश्य होता है| उस उद्देश्य की पूर्ति तक वह जीता हैं एवं पूर्ति होने पर अपने कर्मों के अनुसार प्रभु के धाम अथवा पुनर्जन्म प्राप्त करता है| महर्षि कुर्तुक का यह जन्म उनकी इच्छा से तुम्हारे समान पुत्री प्राप्त करना और मोक्ष प्राप्त करना था| दोनों की प्राप्ति होने पर वह साकेत धाम में विराजमान हैं| उसी प्रकार तुम्हारा जन्म भी एक विशेष कार्य के लिए हुआ है, भगवान् के कार्य के लिए| भगवान् विष्णु कुछ ही समय में नर रूप में असुरों को मोक्ष देने एवं पृथ्वी पर धर्म स्थापित करने हेतु इस पृथ्वी पर अवतरित होने वाले हैं| उनके इस कार्य में सहायता देने वाले सभी देव, देवीयाँ भी किसी न किसी रूप में पृथ्वी पर धीरे धीरे अवतरित हो रहे हैं| उसी कड़ी में तुम्हारा जन्म भी हुआ है|'

'मेरा जन्म प्रभु के कार्य के लिए', इन शब्दों के सुनते ही प्रसन्नता से कुर्तकी के रोंगटे खड़े हो गए| उपकुलपति विस्मित हो गईं और उनके नेत्रों से अविरल प्रेम अश्रुधारा

बहने लगी| ऋषियों को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले प्रभु ने अपना कार्य करने के लिए मुझे चुना, यह सोचकर उनकी प्रेम अश्रुधारा रुक ही नहीं रही थी| महर्षि के चरण अपने अश्रुओं से गीले कर दिए|

सजल नेत्रों से उपकुलपति कुर्तकी बोलीं, 'हे प्रभु, मुझे तुरंत बताईए प्रभु का वह कार्य, मुझ से प्रतीक्षा नहीं हो रही| एक एक क्षण कल्प समान बीत रहा है| मेरे जन्म का हेतु ऐसा क्यों और कैसे? आप तो अन्तर्यामी हैं, इस पर भी प्रकाश डालिए|'

महर्षि वशिष्ठ जी तब मधुर वाणी में बोले, 'अवश्य पुत्री| मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्म की कथा भी सुनाऊँगा| अभी तो तुम उस कार्य के बारे में जानो जो प्रभु ने तुम्हारे लिए चुना है|'

महर्षि वशिष्ठ जी आगे बोले, 'पुत्री, तुम्हें तो विदित ही है कि श्री हरि के जय और विजय दो प्रिय द्वारपाल थे जिन्हें सनकादिक ऋषियों ने क्रोध में इस पृथ्वी पर तामसी शरीर में जन्म लेने का श्राप दिया था| सनकादिक ऋषियों के इस घोर श्राप को सुनकर जय और विजय भयभीत होकर उनसे क्षमा याचना करने लगे| उसी समय भगवान विष्णु भी वहाँ पर आ गये| जय और विजय भगवान विष्णु से प्रार्थना करने लगे कि वे ऋषियों से अपना श्राप वापस ले लेने का अनुरोध करें| भगवान विष्णु ने उन दोनों से तब कहा कि ऋषियों का श्राप कदापि व्यर्थ नहीं जा सकता| तुम दोनों को भूलोक में जाकर जन्म अवश्य लेना पड़ेगा| अपने अहंकार का फल भोग लेने के बाद तुम दोनों पुनः मेरे पास साकेत वापस आओगे| तुम दोनों के पास यहाँ साकेत वापस आने के दो विकल्प हैं, पहला यह कि यदि तुम दोनों भूलोक में मेरे भक्त बन कर रहोगे तो सात जन्मों के बाद यहाँ साकेत वापस आओगे और दूसरा यह कि यदि भूलोक में जाकर मुझसे शत्रुता रखोगे तो तीन जन्मों के बाद तुम दोनों यहाँ साकेत वापस आओगे क्योंकि उन तीनों जन्मों में मैं ही तुम्हारा संहार करूँगा| जय और विजय सात जन्मों तक पृथ्वी लोक में नहीं रहना चाहते थे इसलिए उन्होंने दूसरे विकल्प को मान लिया| यही जय और विजय भूलोक में सतयुग में अपने पहले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के रूप में अवतरित हुए| हिरण्याक्ष को भगवान् ने वराह (सूअर) का शरीर धारण कर वध किया और हिरण्यकश्यपु को नरसिंह रूप धारण कर वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया| अब त्रेता युग में अपने दूसरे जन्म में जय और विजय रावण और कुम्भकर्ण के रूप में अवतरित हुए हैं| अपने वचनों के अनुसार इनका वध

करने के लिए भगवान् विष्णु शीघ्र ही नर शरीर में अयोध्या में दशरथ-नंदन श्री राम के रूप में अवतरित होने वाले हैं|’

महर्षि वशिष्ठ आगे बोले, ‘रावण और कुम्भकरण दोनों ने ही जन्म लेने के पश्चात ब्रह्मदेव एवं भगवान् शिव की आराधना कर उनसे लगभग अमरत्व प्राप्त करने के वर प्राप्त किए हैं| रावण ने अपनी नाभि में अमृत प्राप्त किया है| इस अमृत-कुंड के रहते कोई अस्त्र, शस्त्र उसे मार नहीं सकता| रावण वध के लिए यह आवश्यक है कि इस अमृत-कुंड को सुखा दिया जाय| यह कार्य केवल अग्नि-अस्त्र से ही संभव है| तुम्हें अग्नि देव की आराधना से महर्षि भारद्वाज के निर्देश में इस अग्नि-अस्त्र का अन्वेषण करना है| इसके अन्वेषण के पश्चात अग्नि-अस्त्र लेकर अरण्य वन में भगवान् श्री राम की प्रतीक्षा करनी है| भगवान् श्री राम के वनवास समय जब रावण माता सीता का हरण कर लेगा तो प्रभु तुम्हारे पास आएंगे| तुम्हें प्रभु के दर्शन होंगे और स्वयं प्रभु तुम्हें तब नव-विधा-भक्ति का ज्ञान दे तुम्हें मुक्ति प्रदान करेंगे| तब तुम यह अग्नि-अस्त्र उनको सौंप देना|’

‘ऋषियों को दुर्लभ स्वयं प्रभु मुझ साधारण नारी को दर्शन देंगे और स्वयं वह मुझे नव-विधा-भक्ति का ज्ञान दे मुझे मुक्ति प्रदान करेंगे, भगवन, इन शब्दों के सुनते ही मुझे एक अनन्य आनंद की अनुभूति हो रही है| मैं गुरुदेव एवं पिता स्वरुप महर्षि भारद्वाज जी के निर्देशन में अग्नि देव की आराधना तुरंत प्रारम्भ करूंगी और उनसे वर प्राप्त कर आप दोनों महर्षियों के आशीर्वाद से अवश्य ही अग्नि-अस्त्र का अन्वेषण करूंगी| एक प्रश्न और भगवन, मैं तो यहां गुरुदेव महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल में उपकुलपति हूँ, मेरा अरण्य वन जाना कैसे संभव होगा? मुझे विस्तार से बतलाएं,’ भाव विभोर होकर उपकुलपति कुर्तकी बोलीं|

‘पुत्री, अभी तो तुम बस अग्नि देव की आराधना कर उनसे वर ले महर्षि भारद्वाज के निर्देशन में अग्नि-अस्त्र का अन्वेषण करो| समय आने पर तुम्हें सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा| तुम्हारे अरण्य वन जाने का प्रबंध भी हो जाएगा| हाँ, एक बात और, मैं जानता हूँ कि तुम अस्त्र-शस्त्र विद्या के साथ साथ गुप्तचर विद्या में भी प्रवीण हो| इस कौशल को तुम्हें और भी निखारना है| अरण्य वन के भील समुदाय के समस्त रीति रिवाज को सूक्ष्मता से समझना है| ऐसा लगना चाहिए कि तुम भील समाज का ही एक अंग हो| इसमें महर्षि मतंग के शिष्य ऋषि अनंत की पुत्री मंगला जो गुरुकुल में तुम्हारी शिष्या

हैं, अत्यंत सहायक होंगी| महर्षि भारद्वाज को अब दूसरे उपकुलपति की खोज करनी पड़ेगी,' महर्षि वशिष्ठ जी बोले|

'अच्छा पुत्री, अब तुम और महर्षि भारद्वाज विश्राम करो| कल मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्व जन्म एवं श्री हरि को इस कार्य के लिए तुम्हें चुनने के कारण से अवगत कराऊंगा,' महर्षि वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी|

कुर्तकी का पूर्वजन्म

गुरुदेव आर्य श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ के आदेश से उपकुलपति कुर्तकी वापस सुशीला माँ के पास अपनी कुटिया में तो अवश्य आ गईं लेकिन अपना हृदय महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ही छोड़ आईं| पूर्ण रात्रि बस करवट बदलते ही निकली| एक क्षण के लिए भी निद्रा नहीं आई| अपने सौभाग्य को धन्य मानते हुए, प्रभु की आराधना करते हुए उत्सुकतावश अगले दिन की प्रतीक्षा करती रहीं जब महर्षि उन्हें उनके पूर्व जन्म के बारे में अवगत कराएंगे| ऐसा मेरा पूर्व जन्म में क्या कार्य था जिससे प्रभु ने मुझे उनका कार्य करने के लिए विशेषतः चुना? अंततः ब्रह्म मुहूर्त हो गया| कुर्तकी उठीं| माँ गंगा में स्नान किया और साधना में मन लगाने का प्रयास करने लगीं| आज तो साधना में भी मन नहीं लग रहा था| थोड़ी ही देर में गंगा तट से वापस आश्रम अपनी कुटिया में आ गईं|

अल्पाहार के समय महर्षि भारद्वाज के एक शिष्य ने उपकुलपति कुर्तकी को सूचना दी कि आर्य श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ एवं महर्षि भारद्वाज विशेष अतिथि गृह में उनकी प्रतीक्षा कर रहें हैं| यह मधुर शब्द उपकुलपति को अमृत समान लगे और तुरंत विशेष अतिथि गृह की ओर दौड़ीं| दोनों महर्षियों को साष्टांग प्रणाम किया और उत्सुकतावश कक्ष के एक कोने में जाकर बैठ गईं|

'समीप आओ पुत्री', तब उन्हें महर्षि वशिष्ठ के मधुर शब्द सुनाई दिए|

धीरे धीरे सकुचाती, सरकती हुई उपकुलपति कुर्तकी तब महर्षि वशिष्ठ के थोड़ा समीप पहुँच गईं|

‘तुम्हारे नेत्र बतला रहे हैं कि पूर्ण रात्रि तुम सोई नहीं हो पुत्री और भगवद-आराधना में ही रात्रि बिताई है| बस ऐसा ही प्रेम तुम्हारा हरि के प्रति पूर्व जन्म में था’, महर्षि वशिष्ठ बोले|

महर्षि वशिष्ठ अपनी कहानी को क्रमशः रखते हुए बोले, ‘यह सतयुग काल का वर्णन है जब इस पृथ्वी पर हिरण्यकश्यपु का शासन था| वह बड़ा ही अत्याचारी और क्रूर शासक था| तुम्हारे पूर्व जन्म के पिता महर्षि आनंद स्वयं ब्रह्मऋषि नारद जी के शिष्य

थे| आर्यावर्त में उस समय उनके गुरुकुल को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था| अपने २०० से भी अधिक शिष्यों के साथ वह अपने आश्रम में उन्हें विद्या दान करते हुई शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे| वह भगवान् विष्णु के अनन्य भक्त थे| उनकी अनुकम्पा से उनके गृह में एक अत्यंत रूपवान और विलक्षण बुद्धिमान पुत्री ने जन्म लिया और उसका नाम उन्होंने रखा, आनंदी| वह आनंदी, पुत्री, तुम हीं थीं|’

‘उसी समय हिरण्यकश्यपु के भ्राता हिरण्याक्ष का भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर वध कर दिया| इस घटना से हिरण्यकश्यपु अत्यंत क्रोधित हुआ एवं भगवान विष्णु से द्वेष करने लगा| वह जानता था कि भगवान विष्णु अत्यंत बलशाली है| उन्हें पराजित करने के लिए उसे दिव्य अस्त्रों की आवश्यक्ता होगी, अतः उनकी प्राप्ति के लिए उसने ब्रह्मा जी की तपस्या की योजना बनाई| वह ब्रह्मदेव की तपस्या करने हेतु वन में चला गया| उसके वन में तपस्या हेतु जाने के पश्चात इंद्रदेव ने उससे बदला लेने का एक उचित अवसर समझा| इंद्रदेव ने हिरण्यकश्यपु की पत्नी सम्राज्ञी कयादु का उसके महल से अपहरण कर लिया| वह सम्राज्ञी कयादु को लेकर इंद्रलोक जा ही रहा था कि मार्ग में उसे ब्रह्मऋषि नारद मिल गए| ब्रह्मऋषि नारद ने तब इंद्र को समझाया और कहा कि सम्राट की अनुपस्थिति में उनकी सम्राज्ञी का इस प्रकार अपहरण एक अत्यंत अशोभनीय कार्य ही नहीं, घोर पाप भी है| ब्रह्मऋषि नारद के वचनों को सुनकर उसका ज्ञान जागा तथा उनके चरणों में गिर कर बोला, 'हे ब्रह्मऋषि, अब मुझे क्या करना चाहिए?’

ब्रह्मऋषि ने उसे तुरंत साम्राज्ञी कयादु को स्वतंत्र करने का आदेश दिया| तब ब्रह्मऋषि नारद सम्राज्ञी कयादु को अपने शिष्य तुम्हारे पिताश्री महर्षि आनंद के आश्रम में ले आए| सम्राज्ञी कयादु उस समय गर्भवती थी| महर्षि आनंद को आज्ञा देते हुई ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'हे महर्षि, जब तक हिरण्यकश्यपु तपस्या से वापस नहीं आ जाते तब तक मैं सम्राज्ञी कयादु को तुम्हारे सरंक्षण में छोड़ता हूँ|'

‘तुम्हारे पिता ने सम्राज्ञी को आदर पूर्वक तब अपने आश्रम में रखा|’

‘समय आने पर सम्राज्ञी कयादु ने एक अत्यंत सुन्दर और प्रतिभाशाली पुत्र को जन्म दिया, जिनका नाम स्वयं ब्रह्मऋषि नारद ने ‘प्रह्लाद’ रखा|’

‘तुम्हारे पिता के आश्रम में प्रतिदिन श्री हरि कथा, हरि नाम संकीर्तन एवं यज्ञ इत्यादि होते रहते थे| इसके अतिरिक्त ब्रह्मऋषि नारद जी का भी वहां आना जाना लगा रहता था जिससे भक्ति का वातावरण सजग रहता था| सम्राज्ञी कयादु एवं उसके पुत्र प्रह्लाद अत्यंत रुचि से हरि कथा सुन स्वयं भी भगवद-कीर्तन करने लगे| पाँच वर्ष की आयु होते होते प्रह्लाद ज्ञान के भण्डार हो गए| श्री हरि के भक्त हो दिन रात उन्हीं की भक्ति में खोए रहते|’

‘तभी हिरण्यकश्यपु ब्रह्मदेव से, उसकी समझ में, अमरत्व का वरदान ले कर, 'न दिन में मरूं, न रात में, न सुबह मरूं, न शाम को, न आकाश में मरूं, न धरती पर, न किसी अस्त्र से मरूं, न शस्त्र से, न नर से मरूं, न पशु पंछी से, न देव से मरूं, न दानव से, न बारह महीनों में किसी मास में मरूं', इत्यादि लेकर अपनी राजधानी लौटा| राजधानी आकर पता चला कि सम्राज्ञी कयादु का अपहरण करने का दुःसाहस इंद्र ने किया था लेकिन ब्रह्मऋषि के हस्तक्षेप से वह सुरक्षित महर्षि आनंद के आश्रम में है| तुरंत महर्षि आनंद के आश्रम में गया और अपनी सम्राज्ञी एवं पुत्र को ले आया|’

‘सम्राट हिरण्यकश्यपु ब्रह्मदेव से वर पा अपने को अमर समझने लगा| उसका भगवान् विष्णु से विशेष वैर था क्योंकि उन्होंने उसके भाई का वध किया था| अतः उसने अपने राज्य में श्री हरि की पूजा बंद कर अपनी पूजा करने का आदेश दिया| अब प्रह्लाद तो श्री विष्णु की भक्ति में लीन हो चुके थे| उनके स्वयं के पुत्र ने इस आदेश की अवहेलना कर उसी के महल में भगवान् विष्णु की आराधना प्रारम्भ कर दी| इन सब घटनाओं का, पुत्री कुर्तकी, तुम्हें पूर्ण ज्ञान है अतः इसके विस्तार में न जाकर मैं तुम्हें बस यहां इतना ही कहूंगा कि उसने अपने पुत्र प्रह्लाद के इस प्रकार बिगड़ जाने का दोषारोपण तुम्हारे पिताश्री पर किया और उनके प्रति वैर भावना रखने लगा|’

‘उसी समय महर्षि अत्रि ने एक बृहद यज्ञ का आयोजन किया जिसमें तुम्हारे पिताश्री को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रण कर महर्षि अत्रि ने इस यज्ञ के संचालन का उत्तरदायित्व उन्हें दिया| तब तुम्हारे पिताश्री तुम्हें लेकर महर्षि अत्रि के आश्रम इस यज्ञ के संचालन हेतु गए| यज्ञ की समाप्ति पर जब महर्षि आनंद अपने आश्रम आए तो आश्रम को पूर्ण प्रकार से जल कर नष्ट हुआ पाया| तुम्हारी माताश्री एवं उनके अधिकतर शिष्यों की हत्या कर दी गई थी| कुछ शिष्य अपनी जान बचाकर भागने में सफल हो गए थे| जब इन बचे हुई शिष्यों को पता चला कि महर्षि आनंद अपने आश्रम

में वापस आ गए हैं तो उन्होंने भी आश्रम वापस आने का साहस किया और सब वृतांत अपने गुरुदेव को सुनाया|'

'तुम्हारे पिता की अनुपस्थिति में हिरण्यकश्यपु ने अपने सैनिकों के साथ तुम्हारे आश्रम पर हमला बोल दिया था| बचे हुई शिष्यों ने बताया कि हिरण्यकश्यपु के हमले का समाचार सुन तुम्हारी माताश्री गुरु-माँ, स्वयं आश्रम एवं अपने शिष्यों की सुरक्षा के लिए आगे आईं और हिरण्यकश्यपु के रथ के अश्वों को पकड़ कर खड़ी हो गईं| तुम्हारी माताश्री ने उस दुष्ट को ललकारा और असहाय ब्राह्मणों, ऋषि-पत्नीओं और ऋषि पुत्र-पुत्रियों पर यह अत्याचार करने के लिए उसकी कायरता पर क्रोध दर्शाया| लेकिन अहंकार में अंधे हुए हिरण्यकश्यपु को यह पाप दृष्टिगोचर नहीं हुआ और उसने अपने अश्व तुम्हारी माताश्री के ऊपर चढ़ा दिए| तुम्हारी माताश्री का अभाग्यवश तभी देहांत हो गया| उसके पश्चात उसने अपने सैनिकों को आश्रम जला कर नष्ट करने का आदेश दिया|'

'यह सुन तुम्हारे पिताश्री को अत्यंत क्रोध तो अवश्य आया लेकिन महर्षि कश्यप के ब्राह्मण पुत्र हिरण्यकश्यपु को श्राप देना उन्होंने उचित नहीं समझा|'

'तुम्हारी माताश्री से वह अत्यंत प्रेम करते थे| उनका वियोग उनसे सहन नहीं हुआ और शनै शनैः उनका शरीर क्षीण होता चला गया| अपना समाधि का समय निकट जान अपने प्रिय शिष्यों को तुम्हारा उत्तरदायित्व दे उन्होंने साकेत धाम के लिए विदा ली| अवश्य ही तुम्हारे लिए तो जैसे संसार ही समाप्त हो गया| माँ और पिता दोनों का ही साया तुम्हारे सर से उठ चुका था| तुम अनाथ असहाय शोक मुद्रा में अपने आश्रम के द्वार पर एक दिन आत्म-हत्या करने के विचार में डूबी हुईं थी कि तभी ब्रह्मऋषि नारद का वहां आगमन हुआ| तुम्हें ब्रह्मऋषि ने सीने से लगा लिया और आत्म-ज्ञान दिया| तुमने आत्म-हत्या का विचार तो अवश्य त्याग दिया लेकिन हिरण्यकश्यपु के प्रति तुम्हारा रोष शांत नहीं हुआ| तुम श्री हरि की भक्ति में लग गईं और कठोर तपस्या की| जब तुम तपस्या में लीन थीं तभी श्री हरि ने नरसिंह अवतार ले कर हिरण्यकश्यपु का वध कर दिया था| तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो जब श्री हरि ने तुम्हें दर्शन दिए और वर मांगने को कहा तो हिरण्यकश्यपु के वध से अनभिज्ञ तुमने उसकी मृत्यु में सहायक होने का वर माँगा|'

‘तब प्रभु मुसकुरा कर बोले, ‘पुत्री, हिरण्यकश्यपु का वध तो मैं कर चुका हूँ| लेकिन तुम्हारी अभिलाषा व्यर्थ नहीं जाएगी| त्रेता युग में जब हिरण्यकश्यपु का रावण के रूप में पुनर्जन्म होगा एवं उसका वध करने के लिए जब मैं फिर से श्री राम के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हूंगा, तब तुम उसके वध में मेरी सहायक बनोगी| पुत्री, अब प्रह्लाद आर्यावर्त के सिंहासन पर आसीन हैं और उन्होंने तुम्हारे आश्रम को फिर से पूर्णतः नव-निर्मित कर दिया है| तुम्हारे सभी शिष्य एवं शिष्याएं तुम्हारे तप समाप्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं| अब तुम अपने आश्रम जाओ और अपने पिताश्री के आश्रम का संचालन करते हुए जो शिक्षा तुम्हें तुम्हारे पिताश्री एवं ब्रह्मऋषि नारद से मिली है, उसे समाज को प्रदान करो|’

‘श्री हरि के अति हृदय मोहक शब्द सुन एवं उनकी आज्ञानुसार तब तुम अपने आश्रम आ गईं और जीवन पर्यन्त शिक्षा प्रदान करती रहीं| मृत्यु समय आने पर तुमने अपनी इच्छा से योग द्वारा समाधि ली और अब जब हिरण्यकश्यपु का रावण के रूप में पुनर्जन्म हो चुका है तो श्री हरि के वचनानुसार तुमने यह शरीर धारण किया है और अब प्रभु का काज करना है|’

यह मधुर कथा सुनाने के पश्चात महर्षि वशिष्ठ शांत हो गए|

महर्षि वशिष्ठ के शब्दों ने उपकुलपति कुर्तकी को किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया| प्रेम के अश्रुओं से उनके चरणों को गीला कर उन्हें बार बार नमन किया और बोलीं, ‘भगवन, ऐसा ही होगा| मैं शीघ्र ही गुरुदेव महर्षि भारद्वाज जी के आशीर्वाद से अग्नि देव को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप करूंगी और उनसे अग्नि-अस्त्र विद्या सीखूंगी| तद्पश्चात गुरुदेव के निर्देश में अग्नि-अस्त्र का निर्माण करूंगी|’

महर्षि भारद्वाज के आग्रह पर प्रयाग में कुछ दिन और रहने के पश्चात आर्यगुरु महर्षि वशिष्ठ अपनी टोली के साथ अपने आश्रम चले गए| उपकुलपति कुर्तकी का तो इसके बाद जीवन ही बदल गया| उन्हें अब किसी कार्य में रुचि नहीं रही| हर समय श्री हरि का नाम ही उनकी रसना पर रहने लगा| फिर एक दिन गुरुदेव महर्षि भारद्वाज से आशीर्वाद ले वह हिमालय की कंदराओं में सूर्यदेव की उपासना हेतु प्रस्थान कर गईं|

माँ गंगोत्री पर उन्होंने अपनी तपस्थली चुनी| ऋग्वेद में वर्णित सूर्यदेव के आराधना मंत्रोचारण के साथ कई वर्षों तक उन्होंने सूर्यदेव को प्रसन्न करने के लिए तप किया|

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः |

अंततः उनके तप से प्रसन्न हो एक दिन सूर्यदेव प्रगट हुए| अन्तर्यामी सूर्यदेव ने तब उन्हें अग्नि-अस्त्र के बारे में ज्ञान दिया| अग्नि-पुराण का ज्ञान देते हुए अग्नि-वाण बनाने की पूरी विधि उन्हें समझाई|

अग्नि-पुराण का ज्ञान ले कर तब कुर्तकी गुरुदेव महर्षि भारद्वाज के प्रयागराज आश्रम वापस आ गईं| यहां हृदय से अभिनंदन कर गुरुदेव महर्षि भारद्वाज ने उन्हें गुरुकुल के उपकुलपति के साथ आश्रम का अधिष्ठाता भी नियुक्त किया|

अग्नि देव के ज्ञान एवं महर्षि भारद्वाज के निर्देश से शीघ्र ही उन्होंने अग्नि-अस्त्र (अग्नि-वाण) का निर्माण किया| अपनी शिष्या ऋषि अनंत की पुत्री मंगला से भील समुदाय के सब रीति रिवाज जाने और गुप्तचर विद्या में दक्षता प्राप्त की| अब प्रतीक्षा थी उनके अरण्य वन में स्थानांतरण करने की प्रक्रिया की|

मंगला

महर्षि वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार सम्राट दशरथ के अयोध्या राज्य के अरण्य वन भाग में राक्षसों द्वारा उत्पात रोकने के लिए कुर्तकी की सेवाएं उपलब्ध करने हेतु महर्षि श्रंगी जी महर्षि भारद्वाज जी के आश्रम प्रयाग पहुंचे| महर्षि भारद्वाज जी एवं उनके शिष्यों ने पूर्ण सम्मान के साथ उनका स्वागत किया तथा विशेष अतिथि कक्ष में उनके निवास की व्यवस्था की गई|

अगले दिन प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में उठ कर, माँ गंगा में स्नान एवं ध्यान के पश्चात महर्षि श्रंगी जी एवं महर्षि भारद्वाज में स्नेह पूर्वक वार्तालाप हो रहा था| महर्षि भारद्वाज महर्षि श्रंगी जी को प्रयाग आश्रम में दर्शन देने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे| दो महर्षियों का मिलन उसी प्रकार हो रहा था जैसे माँ गंगा और माँ यमुना का संगम| महर्षि भारद्वाज यह जान अति प्रसन्न हुए कि इस समय महर्षि श्रंगी राजकुमार श्री राम का प्रथम जन्म-दिन मना अयोध्या से उनके आश्रम में अतिथि बन कर आए हैं| अवश्य ही आर्यकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ जी का कोई सन्देश लेकर आए होंगे| उत्सुकतावश उन्होंने सभी के हाल चाल पूछने के बाद महर्षि श्रंगी से विनम्र शब्दों में कहा, 'प्रभु, मेरे लिए क्या आज्ञा है?'

तब महर्षि श्रंगी जी ने विस्तारपूर्वक राक्षसों द्वारा अरण्य वन में उपद्रव एवं अशांति पैदा करने का विस्तृत विवरण किया| अभाग्य से इन राक्षसों की शक्ति के समक्ष सम्राट दशरथ का कोई भी प्रतिनिधि न तो टिक पाता है और न ही गुप्तचर कोई विशेष सूचना दे पाते हैं| सम्राट दशरथ को अरण्य वन में प्रतिनिधित्व के लिए एक अस्त्र, शस्त्र ज्ञाता एवं गुप्तचर विद्या में प्रवीण विशेषज्ञ की आवश्यक्ता है| महर्षि वशिष्ठ जी के सुझाव पर मैं आपसे इस कार्य के लिए कुर्तकी की सेवाएं माँगने आया हूँ|

महर्षि भारद्वाज के कानों में आर्यकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ के कुम्भ मेले के अवसर पर कहे गए शब्द गूंजने लगे, 'कुर्तकी, तुम्हारा जन्म तो श्री राम काज के लिए ही हुआ है|' महर्षि भारद्वाज जी ने तुरंत कुर्तकी के पास सन्देश भेज कर उन्हें बैठक में आमंत्रित किया| कुर्तकी ने आते ही दोनों महर्षियों को दंडवत प्रणाम किया और नीचे आसन पर विराजमान हो उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगीं| तीनों आचार्यों में गुप्त मंत्रणा होने लगी|

'पुत्री कुर्तकी, महर्षि वशिष्ठ द्वारा कुम्भ मेले पर तुम्हें निर्देश दिए शब्दों के पालन का अब समय आ गया है| तुम्हें सम्राट दशरथ का मुख्य प्रतिनिधि एवं गुप्तचर बनकर अरण्य वन ले जाने की योजना के साथ स्वयं महर्षि श्रंगी जी पधारे हैं| उनके साथ प्रस्थान करने की तैयारी करो| योजना के बारे में पूर्ण विवरण स्वयं महर्षि श्रंगी देंगे,' महर्षि भारद्वाज कर्णप्रिय वचन बोले|

महर्षि श्रंगी ने तब मधुर शब्दों में बोलना प्रारम्भ किया, 'पुत्री कुर्तकी, मैं जानता हूँ कि इस विषय में आर्यकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ तुमसे पहले ही चर्चा कर चुके हैं| यह भी जानता हूँ कि तुमने उनके वचनों का पालन करते हुए अग्निदेव की आराधना में कठोर तप कर उनसे अग्नि-पुराण का ज्ञान ले कर महर्षि भारद्वाज के निर्देश में अग्नि-वाण का अन्वेषण किया है| अब समय आ गया है कि तुम श्री राम काज के लिए अरण्य वन में प्रस्थान करो| मैं स्वयं तुम्हें लेने आया हूँ| हम यहां से अरण्य वन में स्थित महर्षि मतंग आश्रम के लिए प्रस्थान करेंगे| महर्षि मतंग के आश्रम में भील कुमारी श्रमणा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहीं हैं| आश्रम पहुँच कर तुम उनका स्थान लोगी एवं भील कुमारी श्रमणा महर्षि भारद्वाज के आश्रम में तुम्हारा स्थान लेंगी| अरण्य वन में तुम्हें सभी श्रमणा के नाम से ही जानेंगे| प्रभु की लीला कहो या संयोग, तुम्हारा कद, काठी, स्वरुप, बिलकुल श्रमणा समान है, बस तुम्हारी त्वचा का रंग अवश्य श्रमणा से अधिक गौर है| जड़ी बूटियों के उपयोग से एवं अपनी त्वचा को सूर्य तपन से तुम कुछ सांवला कर लोगी तो तुम में और श्रमणा में कोई भेद नहीं कर पाएगा| तुम्हें महर्षि मतंग के आश्रम ले जाने से पहले कुछ दिन मैं यहीं महर्षि भारद्वाज के आश्रम में रुकूंगा ताकि तुम सम्पूर्णतः श्रमणा की प्रतिमूर्ति बन सको| इस कार्य में तुम्हें महर्षि मतंग के शिष्य ऋषि अनंत की ऋषि-पुत्री मंगला प्रशिक्षण देंगी| ऋषि-पुत्री मंगला भील कुमारी श्रमणा की अभिन्न मित्र हैं| दोनों ने अपना बचपन साथ साथ बिताया है, अतः वह श्रमणा की हर आदत, चाल ढाल एवं व्यवहार का ज्ञान रखती हैं| अब तुम उनसे मिलकर श्रमणा के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी एकत्रित करो| जब तुम श्रमणा की प्रतिमूर्ति बन कर उनका स्थान लेने के लिए सक्षम हो जाओगी, तब हम अरण्य वन की ओर प्रस्थान करेंगे|'

महर्षि श्रंगी के इन मधुर शब्दों से कुर्तकी को तो जैसे सारा संसार ही मिल गया| कितने समय से वह इस क्षण की प्रतीक्षा में थी| अब अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकतीं| यथा संभव शीघ्र अति शीघ्र उन्हें श्रमणा की प्रतिमूर्ति बनना है| उत्साह में दोनों महर्षियों के

चरणों में अपना सर नवा कुर्तकी बैठक से बाहर निकलीं और तुरंत एक शिष्य के द्वारा मंगला को उनसे तुरंत मिलने का सन्देश दिया|

कुर्तकी के जाने के पश्चात महर्षि भारद्वाज एवं महर्षि श्रृंगी में विचार विमर्श होने लगा| समय आ गया है कि महर्षि मतंग को इस योजना से अवगत कराया जाए| महर्षि भारद्वाज ने तुरंत एक सेवक को अपने प्रिय शिष्य आचार्य पांडुरंग को बुलाने भेजा| आचार्य पांडुरंग ने आते ही दोनों महर्षियों के चरणों में शीश नवाया| तब महर्षि भारद्वाज ने आचार्य पांडुरंग को गोपनीयता की सौगंध दिलाई और पूर्ण योजना समझाते हुए तुरंत महर्षि मतंग के आश्रम जाने की आज्ञा दी| सर नवा कर आचार्य पांडुरंग तुरंत महर्षि भारद्वाज की आज्ञा का पालन करने हेतु महर्षि मतंग के आश्रम के लिए विदा हुए|

महर्षि मतंग के प्रिय शिष्य ऋषि अनंत की पुत्री मंगला अभी कुछ वर्षों पहले ही उनके अरण्य वन स्थित आश्रम से आयुर्वेद एवं औषिधि ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रयाग गुरुकुल में आईं थीं| मंगला के पिता ऋषि अनंत महर्षि मतंग के आश्रम में आयुर्वेद आचार्य हैं| उनका जीवन आश्रम निवासियों के प्रति ही नहीं परन्तु पूरे वन समाज के स्वास्थ्य लाभ को अर्पित है| उनकी एक छोटी सी आयुर्वेद प्रयोगशाला में नित्य नई नई औषधिओं के अन्वेषण होते रहते हैं| ऋषि अनंत जानते थे कि महर्षि भारद्वाज ने आयुर्वेद एवं औषधिओं का ज्ञान स्वयं इंद्रदेव से प्राप्त किया है, अतः इस युग में उनसे बड़ा आयुर्वेद विशेषज्ञ कोई नहीं है| स्वयं आयुर्वेद चिकित्सकों के शिरोमणि महर्षि दिवोदास एवं महर्षि धन्वन्तरि ने आयुर्वेद एवं औषिधि ज्ञान महर्षि भारद्वाज एवं उपकुलपति कुर्तकी से ही प्राप्त किया है| अपने क्षेत्र की चिकित्सा व्यवस्था को श्रेष्ठतम बनाने हेतु उन्हें विशेषज्ञ महर्षि भारद्वाज एवं उपकुलपति कुर्तकी के ज्ञान की आवश्यक्ता थी अतः उन्होंने अपनी पुत्री मंगला को महर्षि मतंग के निर्देश पर आयुर्वेद एवं औषधि ज्ञान शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रयाग गुरुकुल भेजा था|

कुलपति आचार्य कुर्तकी स्मरणों में खो गईं| कुछ वर्षों पूर्व मंगला अरण्य वन में स्थित महर्षि मतंग के आश्रम से प्रयाग आईं थी| सांवला रंग, बलवान कद, काठी, वनवासियों जैसी वेशभूषा लेकिन संस्कृत का प्रकांड ज्ञान देख उपकुलपति कुर्तकी को अत्यंत अचम्भा हुआ था| फिर जब उनसे वार्तालाप बढ़ा तो मंगला के आयुर्वेद ज्ञान से भी उपकुलपति कुर्तकी बड़ी ही प्रभावित हुईं थीं| थोड़े ही समय में मंगला

उपकुलपति की प्रियतम शिष्यों में से एक हो गईं| लेकिन उपकुलपति ने यह तो कभी नहीं सोचा था कि उनके जीवन के उद्देश्य पूर्ति में मंगला का इतना बड़ा योगदान रहेगा| उपकुलपति कुर्तकी मंगला के इन विचारों में डूबी हुईं थी तभी उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उनके चरण स्पर्श कर उन्हें दंडवत प्रणाम किया है| नेत्र खोले तो मंगला को सामने पाया| आज उनका हृदय मंगला के प्रति प्रेम से भर गया| अपने आसन से उठीं और मंगला का आलिंगन किया|

'मंगला, मैंने तुम्हें तुम्हारी अत्यंत प्रिय मित्र श्रमणा के बारे में जानकारी हेतु तुम्हें बुलाया है| तुम मुझे सब कुछ बताओ जो तुम श्रमणा के बारे में जानती हो', उपकुलपति कुर्तकी बोलीं|

उपकुलपति को श्रमणा के बारे में जानने की उत्सुकता देख मंगला को अत्यंत आश्चर्य हुआ लेकिन शिष्टाचारवश उसका साहस अपनी गुरु एवं उपकुलपति से कुछ पूछने का नहीं हो पा रहा था| मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ कुलपति आचार्य कुर्तकी को मंगला की यह उत्सुकता समझने में देर नहीं लगी| उन्होंने बिना कुछ छिपाये पूरा वृतांत तब मंगला को बताया| मंगला की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा| भगवान् विष्णु के त्रेता युग श्री राम रूप अवतार में उनके कार्य में एक छोटी ही सही, उनकी भूमिका भी रहेगी, इस विचार से मंगला के नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली और उनके रोमांचित होने से रोंगटे खड़े हो गए| अत्यंत कृतज्ञता की दृष्टि से उपकुलपति को देखते हुए उनके चरणों को अपने अश्रुओं से धो दिया|

महर्षि मतंग के आश्रम में उनके शिष्य ऋषि आयुर्वेदाचार्य अनंत की पुत्री मंगला को यदि इस पृथ्वी की एक अनमोल नारी रत्न कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी| जिस आयु में स्त्रियां अपना घर बसा कर मातृत्व की अनुभूति करना चाहती हैं, उस आयु में इस नारी ने समाज की व्यथा को दूर करने के लिए अपना जीवन आयुर्वेद विज्ञान एवं नई नई औषधियां खोजने में लगा दिया| वह त्याग, तपस्या, सहनशीलता की प्रतिमूर्ति थीं| वह एक निश्छल, निःस्वार्थ, साध्वी, सहनशील, निर्मल चरित्र ब्रह्मवादिनी, विदुषी एवं इस संसार से उपराम और ब्रह्मतत्व की जिज्ञासु थीं| वह आयुर्वेद विज्ञान के अपने अन्वेषण से पृथ्वी की जन जाति को अमरत्व प्राप्त कराना चाहती थीं|

मंगला को सांसारिक वस्तुओं अर्थात भौतिक सुखों के प्रति लेश मात्र भी मोह नहीं था| उन्हें तो केवल आयुर्वेद एवं आध्यात्मिक ज्ञान की क्षुधा थी| वह अपने पिता के आयुर्वेद ज्ञान का भाग बनकर इस विज्ञान को अमरत्व प्रदान करने की चरम सीमा तक ले जानी चाहतीं थी| सुना है कि एक बार स्वयं महर्षि मतंग ने उन्हें स्त्रीत्व धर्म समझाते हुए एक ऋषि आचार्य से विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की सलाह दी थी, लेकिन उन्होंने तो महर्षि मतंग से ही शास्त्रार्थ कर डाला|

'पूज्य आर्यकुल के शिरोमणि महर्षि पितामह, मेरी धृष्टता को क्षमा करें| आपके समक्ष मुख खोलने के अपराध का आप मुझे जो भी दंड देंगे, मुझे स्वीकार्य है| आप मेरे कुछ प्रश्नों का बस उत्तर दे दीजिए| क्या गृहस्थ जीवन ही एक आर्य-पुत्री का लक्ष्य हो सकता है? क्या इससे मेरी आध्यात्मिक ज्ञान क्षुधा शांत हो सकती है? मैं प्रतिदिन सहस्त्रों जीवों को व्याधि से तड़पते मरता हुआ देखती हूँ| क्या मेरा संकल्प इन दीनों को रोग मुक्त करने के प्रयास में नई औषधिओं का अन्वेषण करना अनुचित है?' करबद्ध महर्षि मतंग के चरण स्पर्श करती हुईं मंगला बोलीं|

महर्षि मतंग इस भोली भाली नवयौवना ऋषि-पुत्री मंगला के इन प्रश्नों से विस्मित हो गए| अति प्रसन्न हृदय से उन्होंने अपनी इस गौरवमयी आर्य-पुत्री को गले से लगा लिया और बोले, 'पुत्री, तुझ से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ| तेरे समाज सेवा के व्रत ने मेरा हृदय जीत लिया| मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तू आयुर्वेद ज्ञान में अत्यंत ख्याति पाए और इसमें विशेषज्ञता प्राप्त करे| मैं आज ही तेरे पिता ऋषि अनंत से वार्तालाप कर और उनकी सहमति से तुझे आयुर्वेद ज्ञान विशेषज्ञ की शिक्षा हेतु महर्षि भारद्वाज एवं उपकुलपति कुर्तकी के निर्देश में प्रयाग गुरुकुल भेजने की व्यवस्था करूंगा| महर्षि भारद्वाज मेरे अभिन्न मित्र हैं| तुझे अवश्य ही अपने गुरुकुल में प्रवेश दे कर उचित शिक्षा का प्रावधान करेंगे|’

इस प्रकार मंगला के महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल प्रयागराज आने की भूमिका बनी| ऐसी ब्रह्मवादिनी विदुषी, ज्ञान पिपासु, परार्थ जीवन धारिणी, समाज सेवी, त्यागमयी मंगला को करबद्ध नमन|

'गुरु आचार्य (इसी सम्बोधन से उपकुलपति कुर्तकी को उनके शिष्य और शिष्या पुकारती थीं), जब मैंने पहली बार आपको गुरुकुल प्रवेश के समय देखा तो मुझे ऐसा

लगा कि मेरे आने से पहले मेरी सखी श्रमणा यहां कैसे पहुँच गई? आप और श्रमणा यथार्थ में अनुरूप हैं| यदि कोई भिन्नता है तो आपकी त्वचा का श्वेत रंग| मेरी सखी श्रमणा सांवले रंग की है,' मंगला बोली|

'अच्छा, अब तो दिन भी ढल गया है और मेरी साधना का समय भी हो गया है, अतः कल सुबह होते ही इस पर फिर चर्चा करेंगे| तब तक तुम भी विश्राम करो', उपकुलपति कुर्तकी ने मंगला को आज्ञा दी|

श्रमणा

अगले दिन सूर्योदय से पहले ही शीघ्र अल्पाहार के बाद मंगला उपकुलपति कुर्तकी की कुटिया में पहुंचीं| चरण स्पर्श एवं अन्य शिष्टाचार के बाद वह उनके समीप बैठ गईं| उपकुलपति की आज्ञा मिलने पर मधुर शब्दों में उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया|

'गुरु आचार्य, मैं जन्म के पश्चात जहां तक मुझे स्मरण आता है मैं अपने पिता के बहुत समीप रही| पिता के साथ भोजन, पिता के साथ सोना, यहां तक कि वह जब अपनी वैद्यशाला में रोगियों को देख रहे होते थे तो मैं भी उनके साथ गद्दी पर ही बैठी रहती थी| पिता ने मुझे औषधिओं की पुड़िया बनाना सिखा दिया था, अतः और कुछ नहीं तो मैं बस उनकी बताई हुए औषधिओं की रोगियों के लिए पुड़िया ही बनाती रहती थी| जब वह प्रयोगशाला में जड़ी बूटीओं का मिश्रण बना उन्हें खरल में पीसते होते तो मैं उनसे खरल छीन औषधिओं को पीस उनका मिश्रण बनाने में उनका हाथ बटाती थी| मुझे यह सब पिता के कार्य करने में अति प्रसन्नता और गौरवता का अनुभव होता था| ऐसा लगता था कि हे भगवान् यदि मैं नहीं होती तो पिता को कितनी कठिनाई होती? अब समझ आने पर मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि मेरी इस हठ के कारण एवं हस्तक्षेप से पिता के कार्य में कितनी बाधा आती होगी? मेरे पिता का स्नेह तो मेरे प्रति अतुलनीय था| यह जानते हुए कि मेरी हठ से उन्हें उनके कार्य में कितना विघ्न पड़ता है, मैंने उन्हें कभी मुझ पर क्रोध करते अथवा डांटते हुए नहीं देखा|‘

'मैं कोई पांच वर्ष की रही हूँगी| एक दिन प्रातः उठकर देखा कि पिता कुटिया में नहीं हैं| मैं समझ गई कि वह अवश्य अपनी वैद्यशाला चले गए होंगे| माँ दही से मक्खन निकालने में व्यस्त थीं| उनका ध्यान मेरी ओर गया ही नहीं और मैं चुपके से कुटिया से निकल पिता के वैद्यशाला की ओर चल दी| वैद्यशाला पहुँच कर देखा कि पिता तो वहां भी नहीं हैं| मैंने कई बार पिता को सूर्योदय से पूर्व वन में जड़ी बूटी चुनने जाते देखा था| कई बार तो मैं स्वयं भी उनके साथ जड़ी बूटी चुनने वन गई थी| मैंने सोचा कि पिता अवश्य ही जड़ी बूटी चुनने वन में गए होंगे, बस, मैं भी वन की ओर पिता को ढूंढने चल दी| पांच वर्ष की बच्ची को वन की भयानकता का क्या ज्ञान हो सकता है? बड़ा ही घना और भयानक वन था| थोड़ी ही दूर पहुँची थी कि मार्ग भटक गई| घबराहट में शीघ्रता से कदम बढ़ा किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचने का प्रयास करने लगी| लेकिन मार्ग की अनभिज्ञता ने मुझे वन के अत्यंत असुरक्षित स्थान जहां दरिंदे मांस

भक्षी पाशविक जानवरों का निवास था, वहां पहुंचा दिया| एक शेर को मैंने अपनी ओर दहाड़ते हुए आते देखा| मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा था कि इस दरिंदे से मैं अपने प्राण कैसे बचाऊँ, तभी मैंने अपनी ही आयु की एक लड़की को उस शेर के ऊपर कूदते देखा| देखने में कोई वनवासी लड़की लग रही थी| शेर ने क्रोध में अपने शरीर को झटका और उस लड़की को पृथ्वी पर गिरा दिया| अब शेर का ध्यान उस लड़की की ओर ही था| वह उसे मारने के लिए झपटा| लड़की किसी अन्य भाषा में, संभवतः वनवासीओं की भाषा रही होगी, चीख चीख कर कुछ कह रही थी| इस बीच शेर की और इस लड़की की भयानक भिड़ंत हो रही थी| लड़की में अत्यंत फुर्ती थी| शेर की हर चाल को वह मात दे रही थी| लेकिन थी तो बच्ची ही| वह लुहू लुहान और बुरी तरह से घायल हो गई| इतने में ही संभवतः उसके चिल्लाने की ध्वनि सुन कर वनवासीओं का एक झुण्ड शीघ्र ही आ गया और शेर को पहले तो ढोल बजा कर अत्यंत तीखी ध्वनि से और अग्नि दिखाते हुए लड़की से दूर किया और फिर अपने तीरों से मार गिराया| मेरे प्राणों की रक्षा तो अवश्य हो गई लेकिन वह लड़की बेहोश हो अपने प्राणों के लिए संभवतः संघर्ष कर रही थी| लगता है मेरे पिता भी कहीं पास ही जड़ी बूटी का चयन कर रहे थे| इन ध्वनि शब्दों ने उनका ध्यान भी आकर्षित किया और वह भी तुरंत घटना स्थल पर पहुँच गए| सभी वनवासी मेरे पिता को भली भांति जानते एवं उनका अति आदर करते थे| सभी ने उनको नत मस्तक हो प्रणाम किया| तभी पिता की दृष्टि उस घायल हुई बेहोश लड़की पर पड़ी| तुरंत गोदी में उठा वह वैद्यशाला की ओर भागे| उनके पीछे वनवासी भी साथ साथ चलने लगे| पिता ने वैद्यशाला पहुँच कर तुरंत इस बच्ची का उपचार करना प्रारम्भ कर दिया| घाव गहरे थे| उसे होश में आने में ही कई घंटे लग गए| होश में आने के बाद उसे पूर्णतः ठीक होने में तो कई हफ्ते लग गए थे| मैं उस लड़की के इस हाल में होने का अपने को दोषी मान अत्यंत ग्लानि का अनुभव करती रही| जब तक लड़की ठीक नहीं हुई तब तक पिता ने उसे अपनी वैद्यशाला में ही रखा | मैं प्रातः होते ही उस लड़की के पास आहार लेकर पहुँच जाती और उससे बातें करने का प्रयास करती| लेकिन न तो उसकी भाषा मेरी समझ में आती और न मेरी भाषा उसकी समझ में| फिर भी न जाने क्यों हम एक दूसरे के स्नेह में बंध गए| पिताजी को वनवासियों की भाषा का पूर्ण ज्ञान था| उन्हीं के द्वारा मुझे पता लगा कि वह भील सरदार शबर सेन की पुत्री भील राजकुमारी श्रमणा है| इस प्रकार मेरा प्रथम मिलन श्रमणा से हुआ|'

‘श्रमणा के पूर्ण स्वास्थ्य लाभ के पश्चात उसके पिता भील सरदार शबर सेन अपनी पुत्री को लेने आए| जैसे ही मुझे पता लगा कि श्रमणा आज आश्रम से जा रही है, मैं उस दिन बहुत रोई थी| मेरे रोने से द्रवित हो मेरे पिता ने मुझे वचन दिया कि यथा संभव वह मुझे श्रमणा से मिलाने भील सरदार शबर सेन के निवास पर ले जाते रहेंगे| उन्होंने अपना वचन निभाया भी| मुझे अवश्य ही प्रति दूसरे अथवा तीसरे दिन वह श्रमणा के निवास ले जाते रहे| हम दोनों गहरे मित्र बन चुके थे| शनैः शनैः मुझे उसकी भाषा और कुछ सीमा तक उसे भी मेरी भाषा अब समझ आने लगी थी| इसी प्रकार कुछ समय और बीता| श्रमणा बेहद ही चुस्त, बुद्धिमान एवं साहसी थी| उसने अकेले ही अब आश्रम में आना प्रारम्भ कर दिया था| अभाग्यवश कुछ आर्य आचार्यों के विरोध पर कि अनार्य का आश्रम में आना वर्जित है, वह आश्रम में प्रवेश तो नहीं करती थी परन्तु द्वार के पास आकर खड़ी हो जाती थी| चिड़िया के स्वर में वह मुझे पुकारती और मैं तुरंत सब कार्य छोड़ आश्रम के द्वार की ओर उस से मिलने भाग जाती|’

‘श्रमणा को आश्रम की गति विधियां जानने के प्रति बड़ी रूचि थी| जो भी पिताजी मुझे सिखाते, वह सब मैं श्रमणा को सिखाने लगी| देखते देखते श्रमणा संस्कृत की विद्वान् बन गई| उधर मैंने भी अब वनवासियों की भाषा को पूर्णतः सीख लिया था| अब हमारे मध्य भाषा की कोई रुकावट नहीं थी|’

'श्रमणा का हृदय तो दया का भण्डार था| वह वन में रहने वाले सभी पशु, पक्षिओं से उतना ही प्रेम करती, जितना मानव से| मैं एक बार की घटना बताऊँ| ज्येष्ठ मास की तपती हुई एक दोपहरी थी| ऐसा लगता था कि सूर्यदेव आज धरा को जला कर ही शांत होंगे| मैं कुटिया में शीतलता लाने के लिए बार बार जल का छिड़काव कर रही थी कि इतनी देर में आश्रम के द्वार पर मेरे पिता जी को पुकारता हुआ एक मानवीय स्वर सुनाए दिया| पिताजी तुरंत उस स्वर को पहचान गए| यह तो भील सरदार शबर सेन का स्वर है| तुरंत कुटिया से निकल आश्रम के द्वार पर पहुंचे| करबद्ध शबर सेन ने पिताजी से पूछा कि क्या उनकी पुत्री श्रमणा मंगला के साथ है? कहीं उसका पता नहीं चल रहा है?

पिताजी के नकारात्मक उत्तर ने शबर सेन को हतोत्साहित कर दिया और वह रोने लगे| न जाने मेरी बिटिया इस तपती दोपहरी में कहाँ है, क्या कर रही है, जीवित भी है कि नहीं? शबर सेन ने पिताजी से प्रश्नों की झड़ी लगा दी| पिताजी ने उन्हें शांत किया

और फिर शबर सेन और उसकी टोली के साथ श्रमणा को ढूंढने निकल पड़े| जंगल में कोई एक कोस के लगभग ही गए होंगे कि देखा श्रमणा एक वृक्ष के नीचे मृगी के साथ उसके शावक के साथ सोई हुई है| मानव की तो प्रवर्ति ही है कि वह शुभता में भी अशुभता ही देखता है| यह दृश्य देख शबर सेन डर गए| उन्हें लगा कि मृगी किसी क्षण उनकी फूल सी कोमल बच्ची को मार देगी| तुरंत तरकस से तीर निकाला| लेकिन तभी मेरे पिताजी ने संकेत से उन्हें तीर चलाने को मना किया| वह मृगी तो अपने सावक एवं श्रमणा दोनों की ही सरंक्षक बनी हुई थी| श्रमणा को उठाने शबर सेन मृगी के पास पहुंचे| शबर सेन को देख संभवतः मृगी को लगा कि यह प्राणी मेरे सावक अथवा बच्ची को क्षति पहुंचाने आया है, अतः वह हमला करने की मुद्रा में आ गई| तभी श्रमणा की भी आँखें खुल गईं| पुचकारते हुई वह मृगी से बोली, 'यह तो मेरे पिता हैं, शांत हो जाओ मृगी|' ऐसा उसका व्यवहार था कि पशु भी उसे जी जान से प्रेम करते थे|'

'इस घटना का शबर सेन के हृदय पर बहुत ही गहरा असर पड़ा| पशुओं के प्रति उनकी भावना ही बदल गई| सुना गया कि इस घटना के बाद उन्होंने वन में शिकार खेलने जाना छोड़ दिया|'

'समय बीतता चला गया| श्रमणा बारह वर्ष की हो गईं| भील जाति की प्रथा के अनुसार शबर सेन ने उनका विवाह एक भील कुमार से तय कर दिया| एक दिन जब वह प्रातः सो कर उठीं तो उन्होंने अनेक बकरे, भैंसे आदि द्वार पर बंधे देखे| तुरंत माँ के पास गईं और पूछा कि इतने पशु यहां क्यों, माँ? माँ ने दुलार से बतलाया कि पुत्री कल तेरा विवाह है और यह पशु भोज के लिए लाए गए हैं| इनकी बलि से वन देवता को प्रसन्न कर फिर भोज बनाया जाएगा| श्रमणा किंकर्तव्यविमूढ़| मंगला तो कहती है कि जीव हत्या एक पाप होता है और इस पाप के परिणाम स्वरुप मरने के बाद अनंत काल तक जीव को नरक की भयावयी आग में तपना होता है| यह पाप तो मुझे और मेरे परिवार को नर्कगामी बनाएगा| इस विचार से ही श्रमणा सिहर उठी और रात्रि होते ही घर छोड़ आश्रम की ओर भाग आई| आश्रम के द्वार पर विचित्र चिड़िया के स्वर में मुझे पुकारने लगीं| रात्रि के द्वितीय पहर में श्रमणा का स्वर! मुझे बहुत अचम्भा हुआ| तुरंत पिताजी को जगाया| अवश्य ही श्रमणा के साथ कुछ अशुभ हुआ है, नहीं तो वह इतनी रात बीते आश्रम नहीं आती| पिताजी और मैं तुरंत आश्रम के द्वार की ओर दौड़े| हमने देखा कि श्रमणा सुबक सुबक कर रो रही है| पिताजी ने उसे गले से लगाकर शांत

करने का प्रयास किया और सब कुशल मंगल पूछी| तब श्रमणा ने सब वृतांत कह सुनाया| दृढ़ निश्चय किए हुई थी कि वह वापस पिता के घर नहीं जाएगी|'

पिता उसे अन्य आश्रमवासीओं के विरोध के कारण आश्रम में तो नहीं रख सकते थे लेकिन तत्काल उन्हें एक विचार आया| गौशाला के एक 'सजग' नामक वृद्ध कर्मचारी वनवासी थे जिनकी कुटिया आश्रम से कुछ ही दूरी पर थी| पिता जी श्रमणा को लेकर उनकी कुटिया की ओर चल दिए| उन्हें जगाया और पूरा वृतांत सुनाया| उन से गोपनीयता की सौगंध के साथ श्रमणा को वहां रहने की अनुमति देने की विनती की| पिता जी ने श्रमणा के रहन सहन का पूरा व्यय उठाने का उन वृद्ध वनवासी को वचन दिया| वृद्ध वनवासी तो पिता जी की उदारता पर कृतज्ञ हो गए और श्रमणा को अपनी पुत्री की भांति रखने का वचन दे दिया| पिताजी अब निश्चिन्त हो अपनी कुटिया आ गए|

प्रातः काल जब श्रमणा की माँ जागीं तो उन्होंने श्रमणा को घर में नहीं पाया| इधर उधर बहुत ढूंढा पर श्रमणा का कोई पता नहीं चला| घबराए हुए अपने पति शबर सेन को पुकारते हुए उनके समीप पहुँची| उन्होंने श्रमणा के न मिलने की बात बताई| शबर सेन मुसकुराकर अपनी पत्नी से बोले, 'इतना घबराने की आवश्यक्ता नहीं| वह यहीं कहीं वन में अपने मित्र जीव, जंतुओं से मिलने चली गई होगी| शीघ्र ही लौट आएगी| उसका शीघ्र ही विवाह होने वाला है| अब तो वह यह घर छोड़कर अपनी ससुराल जाने वाली है, अतः उसका इन मित्रों से मिलन नहीं हो पाएगा| उन्हें विदाई देने गई होगी|'

अतिथिओं के आने का तांता लगा हुआ था, अतः स प्रकार श्रवणा की माँ को सांत्वना दे कर शबर सेन उनके स्वागत हेतु चले गए|

दोपहर भी बीत गई| अब तो दिन का तीसरा पहर भी प्रारम्भ हो गया और श्रमणा का कोई पता नहीं चला| श्रमणा की माँ बहुत घबरा गईं| अतिथिओं के समूह में अपने पति शबर सेन को ढूंढ निकाला और अपनी घबराहट और बेचैनी से उन्हें अवगत कराया|

आश्चर्यचकित घबराहट में सबरसेन बोले, 'क्या? श्रमणा अभी तक वन से वापस नहीं लौटी?'

अब तो श्रमणा की कुशलता की चिंता ने शबर सेन को विचलित कर दिया| तुरंत सभी अतिथिओं एवं अपने समुदाय के लोगों को लेकर श्रमणा को खोजने निकल पड़े| खोजते खोजते और श्रमणा को पुकारते पुकारते सांय काल होने को आया पर श्रमणा का कोई पता नहीं चल सका|

मन ही मन प्रभु से श्रमणा के सकुशल होने की प्रार्थना करते हुए बुदबुदाने लगे, 'हे भगवान्, मेरी पुत्री का कोई अहित न हुआ हो| कहीं किसी जंगली जानवर का वह भोज तो नहीं बन गईं? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता| यदि ऐसा हुआ हो तो कुछ तो चिन्ह, जैसे उसके रक्त के अवशेष अथवा संघर्ष के कुछ चिन्ह अवश्य देखने को मिलते| लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं मिला|'

तभी अत्यंत घबराए शबर सेन को एक विचार कौंधा| कहीं श्रमणा महर्षि मतंग के आश्रम में तो नहीं चली गई? वह जानते थे कि श्रमणा की घनिष्ठ मित्र मंगला आयुर्वेदाचार्य ऋषिवर अनंत देव की पुत्री हैं और अक्सर वह वहां आती जाती रहती है| हो सकता है कि श्रमणा मंगला से मिलने और उनसे विदा लेने गईं हो| फिर भी इतना समय तो नहीं लगना चाहिए? अवश्य ही मुझे तुरंत महर्षि मतंग के आश्रम जा कर पता करने का प्रयास करना चाहिए|

शबर सेन ने तब महर्षि मतंग के आश्रम की ओर जाने का निश्चय किया| उनके समुदाय के अन्य व्यक्ति एवं अतिथिगण भी साथ जाना चाहते थे लेकिन उन्होंने उन सब को साथ जाने से मना कर दिया| महर्षि मतंग का आश्रम एक पवित्र स्थली है| वहां भीड़ का क्या काम? यदि श्रमणा आश्रम में हैं तो महर्षि मतंग स्वयं ही मुझे अवश्य उसे सौंप देंगे| महर्षि और उनके समस्त शिष्य एवं शिष्याएं आर्य सभ्यता के सत्यवादी ब्राह्मण कुल से हैं| वहां अपारदर्शिता और छल का कोई स्थान नहीं|

श्रमणा की कुशलता की अपने वनदेव से हृदय में प्रार्थना करते हुए शबर सेन महर्षि मतंग के आश्रम की ओर चल दिए|

महर्षि मतंग

शबर सेन के हृदय में महर्षि मतंग के प्रति पूर्ण पूज्य-भाव था| मार्ग में उन्हें पुरानी स्मृतियों ने घेरना प्रारम्भ कर दिया और उन्हीं विचार श्रृंखलाओं में खोए शबर सेन महर्षि मतंग के आश्रम की ओर चले जा रहे थे|

तेरह वर्ष पूर्व की घटना है| शबर सेन प्रौढ़ आयु में कदम रख रहे थे लेकिन संतान मुख देखने से विहीन थे| उनकी यह चिंता स्वयं के पुत्र अथवा पुत्री मोह के कारण नहीं, बल्कि भील समुदाय को उसका समर्थ उत्तराधिकारी देने में असमर्थता के कारण अधिक बढ़ती जा रही थी| भील समुदाय में ऐसी प्रथा थी कि भील सरदार की मृत्यु के पश्चात उनका पुत्र अथवा पुत्री ही उनका उत्तराधिकारी हो सकता था| यदि अभाग्यवश भील सरदार निःसंतान ही मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो उत्तराधिकार के लिए भील-वासियों में भंयकर प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती थी जिस से अनावश्यक रक्तपात एवं कई बार समुदाय का विभाजन हो जाता था| शबर सेन की निष्ठा अपने समुदाय के प्रति बहुत गहरी थी और वह ऐसी किसी भी परिस्थिति से बचना चाहते थे| वह इस गहन विचार में डूबे हुए ही थे कि तभी उनके द्वार पर वनदेव के पुजारी एवं उनके बचपन के मित्र सिंघम आ गए| शिष्टाचार के आदान प्रदान के बाद पुजारी सिंघम जी ने उनसे व्यथा का कारण पूछा| शबर सेन ने अपने मित्र के समक्ष अपना हृदय खोल दिया|

बड़ी गंभीरता से पुजारी सिंघम बोले, 'सरदार, यह अवश्य ही एक गहन चिंता का विषय है| मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ कि भील समुदाय का एक पक्ष तो बस इसी की प्रतीक्षा में है कि कब शबर सेन मृत्यु को प्राप्त हों और उनका सिंहासन छीना जा सके| रक्तपात और समुदाय के विभाजन की मुझे भी आशंका है| मेरे विचार में एक विकल्प की संभावना है| महर्षि मतंग एक सिद्ध पुरुष हैं| उनका आश्रम समीप ही है| यदि उनकी कृपा और वरदान आपको मिल जाए तो अवश्य ही आप संतान का मुख देख पाएंगे|’

'लेकिन महर्षि मतंग तो एक आर्य ऋषि हैं? वह एक अनार्य की प्रार्थना क्यों कर सुनने लगे?', शबर सेन ने अपने मित्र सिंघम पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी|

तब वनदेव के पुजारी ने सरदार शबर सेन से महर्षि मतंग की उत्पत्ति के बारे में बताया| पुजारी सिंघम बोले, 'मित्र, महर्षि मतंग आज अवश्य ही आर्यकुल में ब्रह्मत्व प्राप्त हुए महर्षि हैं लेकिन वह जन्म से आर्य नहीं बल्कि भील हैं| उनकी माता अवश्य ब्राह्मणी थीं परन्तु उनके पिता एक भील थे| उनकी ब्राह्मणी माता को भील नवयुवक से प्रेम हो गया था| इस प्रेम के कारण ब्राह्मणी ने अपने आर्य समुदाय को त्यागकर इस भील नवयुवक से विवाह कर किया और भील समुदाय में ही अपने को स्थापित कर लिया| इस विवाह से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई , जिसका नाम उन्होंने 'मतंग' रखा |'

'अभाग्यवश एक दिन शिकार करते हुए इस नवयुवक को एक जंगली पशु ने बुरी तरह से घायल कर दिया और वह मृत्यु को प्राप्त हुए| ब्राह्मणी का तो जैसे संसार ही उजड़ गया| भील समाज ने अभी तक, विवाह के सात वर्ष पूर्ण होने पर भी, उन्हें पूर्णतः स्वीकारा नहीं था| उन्हें पूर्ण विश्वास था कि आर्य भी उन्हें अब नहीं स्वीकारेंगे| अपने पुत्र के भविष्य के प्रति वह अत्यंत चिंतित हो गईं| उनका पुत्र न भील समुदाय का और न ही आर्य समुदाय का| उनके पुत्र का क्या होगा?'

'पुत्र मोह में साहस कर वह आर्य गुरु महर्षि वाल्मीकि के समीप गईं और उन्होंने अपनी व्यथा सुनाई| आर्य गुरु का हृदय पिघल गया और उन्होंने शुद्धिकरण के पश्चात उन्हें आर्य कुल में अधिष्ठित कर दिया| इस समय मतंग की आयु कोई पांच वर्ष की रही होगी| यद्यपि आर्य गुरु ने आर्य सिद्धांत और धर्म के अनुसार शुद्धिकरण कर मतंग को अपना शिष्य बना उन्हें ब्राह्मण पद देने का प्रयास किया परन्तु फिर भी कुछ कट्टर वादी आर्यों ने उन्हें ब्राह्मण स्वीकार नहीं किया और उनका विरोध करते रहे|'

चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथंचन|

'चाण्डाल की योनि में जन्म लेने वाले को किसी प्रकार भी ब्राह्मणत्व नहीं मिल सकता|'

'पांच वर्षीय मतंग को यह शब्द तीर के समान चुभ गए| आर्य गुरु से बोले, 'हे गुरुदेव कोई तो अवश्य ही उपाय होगा कि मुझे ब्रह्मत्व पद की सभी से स्वीकारता मिल सके|'

'आर्य गुरु बोले, 'अवश्य पुत्र| इसके लिए तुम्हें इन्द्रदेव की कठोर आराधना करनी होगी और उन्हें प्रसन्न कर वर मांगना होगा| एक बार यदि इंद्रदेव ने तुम्हें ब्रह्म पद पर

स्वीकार कर लिया तो फिर किसी का साहस तुम्हारे विरोध में खड़े होने का नहीं होगा|'

‘तब आर्य गुरु के आशीर्वाद से और उनके निर्देशन में मतंग ने इंद्रदेव की घोर आराधना की और उनको प्रसन्न किया| उनके तप से अंततः प्रसन्न हो इंद्रदेव प्रगट हुए और उन्हें मनोवांछित वर दिया|‘

यथा ममाक्षया किर्तिर्भवेच्चापि पुरंदर|
कर्तुमर्हसि तद् देव शीरसा त्वां प्रसादये ||

‘इन्द्रदेव के प्रसन्न हो प्रगट होने पर मतंग नत मस्तक हो कर बोले, ‘हे इन्द्रदेव, आप ऐसी कृपा करें जिससे मैं इच्छानुसार विचरने वाला तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला आकाशचारी देवता बनूँ| ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध से रहित हो मैं सर्वत्र पूजा जाऊं एवं सत्कार प्राप्त करूँ| मेरी अक्षय कीर्ति का विस्तार हो| मैं आपके चरणों में मस्तक रख कर आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ| आप मेरी इस प्रार्थना को सफल बनाइये|‘

‘इंद्रदेव ने तब उन्हें उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण होने का वर दिया|‘\’

छंदोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पुज्यो भविष्यसि |
किर्तिश्र्च ते तुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति ||

‘इंद्रदेव ने वर देते हुए कहा, 'हे वत्स, तुम सभी नर नारी आदि के पूजनीय होगे| छंदोदेव के नाम से तुम्हारी ख्याति होगी और तीनों लोकों में तुम्हारी अनुपम कीर्ति का विस्तार होगा|’

‘तत्पश्चात मतंग ने ब्राह्मण पद की प्राप्ति की जो सभी को स्वीकार्य हुई और वह छंदोदेव महर्षि मतंग के नाम से विख्यात हुए| अरण्य वन में तब उन्होंने अपने आश्रम की स्थापना की|’

‘उनका व्यक्तित्व इतना महान है कि सभी आर्य एवं अनार्य उनकी कृपा पात्र बनने के लिए लालायित रहते हैं तथा उन्हें अप्रसन्न करने की कोई सोच भी नहीं सकता|

संभवतः तुम्हें पता ही है, मित्र शबर सेन, कि महर्षि मतंग के श्राप के कारण ही वानरराज बालि ऋष्यमूक पर्वत पर आने से डरता है| दुंदुभी नामक एक दैत्य को अपने बल पर बड़ा गर्व हो गया था| एक बार समुद्र देव के पास पहुँचा तथा उन्हें युद्ध के लिए ललकारा| समुद्र देव ने उससे लड़ने में असमर्थता व्यक्त की तथा कहा कि उसे हिमवान से युद्ध करना चाहिए| दुंदुभी ने हिमवान के पास पहुँचकर उनकी चट्टानों और शिखरों को तोड़ना प्रारम्भ कर दिया| हिमवान ऋषियों के सहायक हैं तथा युद्ध आदि से दूर रहते हैं अतः उन्होंने दुंदुभी को इंद्र के पुत्र बालि से युद्ध करने की सलाह दी| उसने तब वानरराज बालि को युद्ध के लिए ललकारा| वानरराज बालि ने उसकी युद्ध की चुनौती स्वीकार कर उससे द्वन्द युद्ध किया एवं उसे मार डाला| रक्त से लथपथ उसके शव को उन्होंने एक योजन दूर फेंक दिया| मार्ग में उसके मुँह से निकली रक्त की बूंदें महर्षि मतंग के आश्रम पर जाकर गिरीं| महर्षि मतंग उस समय पवित्र हो साधना में लीन थे| रक्त की बूंदों ने उनको अपवित्र तो किया ही उनकी साधना में भी विघ्न डाल दिया| तब महर्षि मतंग ने कुपित हो बालि को श्राप दे दिया कि वह यदि उनके आश्रम के पास एक योजन की दूरी तक भी आएगा तो मृत्यु को प्राप्त होगा| महर्षि मतंग इतने प्रभावशाली हैं लेकिन उनका हृदय अत्यंत कोमल है| मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारी प्रार्थना को वह अवश्य सुनेंगे और तुम्हें समाधान देंगे| घबराओ नहीं सरदार, महर्षि मतंग के पास जाओ |’

तब साहस कर पुजारी सिंघम के अनुरोध पर शबर सेन ने महर्षि मतंग के आश्रम जाने का मन बनाया| आश्रम के द्वार तक तो पहुँच गए लेकिन अंदर जाने का साहस नहीं हो रहा था| बस आश्रम के द्वार पर ही बैठ गए| पूरी रात वहीं बैठे रहे| ब्रह्म-मुहूर्त में सूर्योदय से पहले जब महर्षि मतंग जागे और नित्य कर्म एवं स्नान हेतु पम्पा सरोवर जाने लगे तो उन्हें द्वार पर एक छाया दिखलाई दी| अभी पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ था| अतः वह पहचान न सके कि यह छाया कौन है?

इस छाया के समीप आकर महर्षि मतंग बोले, 'वत्स, तुम कौन हो और क्या चाहते हो?'

तब शबर सेन ने अपना नाम लेते हुए महर्षि मतंग को दंडवत प्रणाम किया|

'ओह भील सम्राट शबर सेन, तुम हो| किस हेतु तुम्हारा आना हुआ वत्स, स्पष्ट कहो' महर्षि मतंग बोले|

शबर सेन के नेत्रों से जल बहने लगा| उनका हृदय किया कि वह महर्षि के चरणों से लिपट जाएं| फिर उन्होंने सोचा कि मैं अनार्य भील पुत्र, और महर्षि महान आर्य गुरु| मेरे चरण स्पर्श करने से कहीं वह अपवित्र न हो जाएं| हृदय में साहस लाकर बोले, 'प्रभु, एक इच्छा थी| उसी के पूर्ण होने का मार्ग निर्देश लेने मैं आपके चरणों में चला आया हूँ|'

'जानता हूँ शबर सेन, संतान की अभिलाषा है| तुम्हारे गृह में तो ऐसी पुत्री जन्म लेने वाली है जो जब तक यह जल, थल एवं नभ रहेंगे उसका नाम अमर रहेगा और उस के साथ तुम भी अमर हो जाओगे| शीघ्र ही यह दिव्य कन्या तुम्हारे गृह अवतरित होगी| अभी तुम आचार्य ऋषि अनंत से मिलकर उनसे कुछ औषधियाँ ले लो और उनके निर्देशानुसार तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों औषधियाँ लेते रहो और समय की प्रतीक्षा करो,' महर्षि मतंग बोले|

शबर सेन को इन शब्दों से जैसे पूर्ण संसार ही मिल गया था| महर्षि मतंग का हृदय से आभार प्रगट करने के लिए फिर से दंडवत हो कर उन्हें प्रणाम किया| महर्षि मतंग तो पम्पा सरोवर की ओर चले गए और शबर सेन वहीं प्रातः होने की प्रतीक्षा करने लगे ताकि आचार्य ऋषि अनंत देव जी से औषिधियाँ ले सकें|

प्रातः होने पर एक आश्रम वासी के द्वारा शबर सेन ने आचार्य ऋषि अनंत जी को संदेशा भेज मिलने का आग्रह किया| यह जान कर कि शबर सेन रात भर आश्रम द्वार पर बैठे रहें हैं, ऋषिवर अनंत देव जी तुरंत वहां आए| तब शबर सेन ने उन्हें ब्रह्म-मुहूर्त में महर्षि मतंग से मिलने, उनके आशीर्वाद और आज्ञा कि मैं आपसे मिलकर औषिधियाँ ले जाऊं, सब बताया| आचार्य ऋषि अनंत देव अपने गुरुदेव महर्षि मतंग के आशीर्वाद की महिमा भली भांति जानते थे|

आचार्य ऋषि अनंत देव बोले, 'तुम्हें पुत्री का आशीर्वाद तो महर्षि से मिल गया और महर्षि के वचन कभी मिथ्या नहीं होते| अवश्य ही कुछ औषिधियाँ ले जाओ लेकिन वह तो निमित्त मात्र हैं| तुम्हें पुत्री तो महर्षि के आशीर्वाद से ही प्राप्त होगी|'

तब शबर सेन औषिधियाँ ले कर अपने गृह आ गए और ऋषिवर अनंत देव जी के निर्देशानुसार दोनों पति-पत्नी उनका सेवन करने लगे|

इस घटना के एक वर्ष उपरांत उनके गृह एक पुत्री का जन्म हुआ| प्रौढ़ावस्था में शबर सेन ने संतान का मुख देखा था अतः उनकी एवं पूरे भील समाज की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था| एक माह तक उत्सव चलता रहा| जब पुत्री एक माह की हो गई तो शबर सेन को महर्षि मतंग द्वारा उसके नामकरण संस्कार कराने का विचार आया| एक महीने की पुत्री को लेकर अपनी पत्नी सहित वह आश्रम की ओर चल दिए | संयोग कहिये या प्रभु की लीला, जिस समय शबर सेन अपनी पत्नी एवं पुत्री समेत महर्षि मतंग से मिलने आश्रम जा रहे थे, मार्ग में ही पम्पा सरोवर के निकट महर्षि के उन्हें दर्शन हो गए| दोनों पति-पत्नी ने महर्षि को दंडवत प्रणाम किया और पुत्री को उनके चरणों के समीप रख दिया| उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ जब महर्षि झुके और तुरंत उन्होंने इस नन्ही सी बालिका को अपने गोद में ले लिया और उसे चूमने लगे| कहाँ एक अछूत भील कन्या और कहाँ महान आर्य गुरु महर्षि मतंग, उनका यह स्नेह उन दोनों पति-पत्नी को कुछ समझ में नहीं आया | महर्षि बिना कुछ बोले पम्पा सरोवर उस बच्ची को अपनी गोद में लिए गए| बच्ची को स्नान कराया और बोले, 'हे श्रमणा, तेरा स्वागत है|'

इस प्रकार शबर सेन की पुत्री का नामकरण संस्कार ‘श्रमणा’ हुआ|

श्रमणा इस प्रकार से महर्षि की ही तो पुत्री है| उन्ही के आशीर्वाद से तो वह इस पृथ्वी पर आई है| अतः श्रमणा के इस प्रकार लोप हो जाने पर महर्षि अवश्य ही मेरी सहायता करेंगे| यदि वह आश्रम में है तो मुझे अवश्य ही उसे सौंप देंगे अथवा जो भी उचित मार्ग होगा, उस का निर्देशन करेंगे| इन्ही विचारों के संसार में शबर सेन घूम ही रहे थे कि आश्रम के द्वार पर पहुँच गए|

आश्रम द्वार पहुंचते ही नेत्रों में जल भरकर 'महर्षि, त्राहि माम, त्राहि माम, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' के आर्द्र शब्दों से महर्षि को सम्बोधित करने लगे| महर्षि अभी अभी अपनी साधना से जागे थे| यह द्रवित शब्द सुन तुरंत अपनी कुटिया से निकल कर आश्रम द्वार आए| उन्होंने वहां देखा कि शबर सेन दयनीय अवस्था में अश्रु बहाते हुए कुछ कहने का प्रयास कर रहे हैं|

'क्या हुआ वत्स? स्पष्ट कहो,' महर्षि बोले|

'गुरुदेव, श्रमणा का आज विवाह होने वाला था| पता नहीं कहाँ चली गई बच्ची| बहुत ढूंढा| पूरे वन में ढूंढा| कहीं नहीं मिली| क्या वह आश्रम में तो नहीं है?', बड़े ही धीमे स्वर में शबर सेन बोले|

'नहीं वत्स, मेरे संज्ञान में तो कोई बच्ची आश्रम नहीं आई| तुम चिंता नहीं करो| तुम्हारी पुत्री तो इस पृथ्वी पर भगवान् श्री विष्णु के अवतार का कार्य करने के लिए अवतरित हुई है| उसकी मृत्यु का तो प्रश्न ही नहीं उठता| फिर उसके विवाह से पहले तुम मुझे एक बार मिल तो लेते| उसका जन्म विवाह बंधन में बंधने के लिए नहीं बल्कि एक अति उच्च उद्देश्य के लिए हुआ है| अब तुम घर जाओ और अपने सभी अतिथियों को विदा करो| उसका पता चलते ही मैं तुम्हें सूचित करूंगा,' साधिकार स्वर में महर्षि मतंग बोले|'

'महर्षि के शब्द असत्य नहीं हो सकते| यदि उन्होंने कहा है कि वह आश्रम में नहीं है तो नहीं होगी| और यदि वह बिना प्रभु का कार्य किए मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकती, तो ऐसा ही होगा| मुझे भी तो उस का वन पशुओं द्वारा भक्षण कर लेने का वन में कोई चिन्ह नहीं मिला,' ऐसा विचारते हुए शबर सेन अपने गृह की ओर वापस चल दिए|

महर्षि के शब्दों से सांत्वना प्राप्त कर शबर सेन घर लौट आए| सभी अतिथियों को क्षमा प्रार्थना करते हुए उन्हें विदा किया और प्रतीक्षा करने लगे कि अपनी पुत्री का कोई कुशल समाचार मिले|

श्रमणा का पूर्व जन्म

आश्रम के वनवासी वृद्ध कर्मचारी सजग के साथ उनकी पुत्री के रूप में श्रमणा रहने लगीं| वह पिता समान वृद्ध की सेवा में कोई कमी नहीं रखती थीं| उनको ताऊ कह कर सम्बोधित करतीं| प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त से भी पहले उठकर नित्य कृत से निवृत हो पम्पा सरोवर में स्नान कर वह कुटिया की स्वच्छता में लग जातीं और फिर अपने एवं दत्तक पिता के लिए भोजन बनातीं| वृद्ध सजग अपने कर्तव्य के प्रति बड़े निष्ठावान थे| सूर्योदय होने से पहले ही वह गौशाला पहुंच गौओं को स्वच्छ कर दुग्ध दोहने की प्रक्रिया में लग जाते| प्रातः भोजन बनाने के उपरान्त अल्पाहार लेकर श्रमणा सजग की मदद के लिए गौशाला पहुँच जातीं| वहीं दोनों दत्तक पिता-पुत्री भोजन करते और फिर अपने कार्य में जुट जाते| शनि शनैः श्रमणा को गौओं से अत्यंत प्रेम होने लगा| एक गौ ‘गौरी’ को तो उन्होंने अपनी माता ही मान लिया| जब भी समय मिलता, गौरी के पास पहुँच जातीं और घंटों बातें करती रहतीं| गौरी भी पता नहीं उनकी बातें कितनी समझती थीं, लेकिन सर हिलाती रहतीं|

पिता का घर छोड़े छै महीने हो गए| मंगला नियमित रूप से प्रतिदिन अपनी सखी श्रमणा से मिलने यथावत सजग की कुटिया में जाती रहीं तथा जो भी ज्ञान उसे पिताश्री से मिलता, उसे बांटती रहीं| आज जब श्रमणा प्रातः उठीं तो वन की ओर से आते ढोल मजीरों के स्वर ने उनका ध्यान आकर्षित किया|

सजग से श्रमणा बोलीं, 'ताऊ, क्या वन में कोई उत्सव मनाया जा रहा है?'

सजग ने कहा, 'हाँ बेटा, आज वनदेव की आराधना का दिवस है| तुम्हारे पिता शबर सेन अपने समस्त भीलवासियों के साथ पुरोहित सिंघम के निर्देशन में वनदेव की स्तुति कर रहे हैं एवं यह स्वर उसी उत्सव के मनाने के हैं|’

यह सुन श्रमणा को अपने माता पिता और घर की बहुत याद आने लगी| पुरानी स्मृतियाँ नूतन हो गईं| नेत्रों से अश्रु बहने लगे परन्तु सजग से अपने भाव छिपाती हुए दौड़ कर गौ माँ गौरी के समीप पहुँच गईं| गौरी के समक्ष फूट फूट कर रोने लगीं और गौ माँ को देखिए, उनकी आखों से भी अश्रु धारा बहने लगी| अपनी जिव्हा से श्रमणा के मुख

को चाट उसके आंसू पोंछती रहीं| जब श्रमणा का हृदय थोड़ा हल्का हुआ तो गौरी माँ से अतीत की स्मृतियाँ साझा करने लगीं|

'जानती हो माँ, आज के दिन हम सब वनवासी नए नए कपड़े पहन कर, हाथों में लिए विभिन्न वाद्यों को बजाते एवं गायन करते हुए वनदेव की स्तुति करते हैं| एक ऊंचे स्थान पर मंडप बना वनदेव की मूर्ति स्थापित करते हैं| स्तुति की समाप्ति पर सभी बालिकाएं मंडप के चारों ओर घेरा बना कर नृत्य करती हैं| मैं राजकुमारी हूँ न माँ, इसलिए मैं ही इस नृत्य का प्रतिनिधित्व करती थी| एक बार तो माँ अत्यंत सुखद घटना घटी| एक लम्बी दाढ़ी वाले गेरुआ कपड़े पहने, लगता था कोई साधू हैं, हमारे इस उत्सव के मध्य आ गए जब मैं नृत्य प्रारम्भ करने ही वाली थी| उत्सव रोक तुरंत पुरोहित जी और मेरे पिता ने उनको साष्टांग प्रणाम किया और उनका परिचय कराते हुए बोले, ‘हे वनवासियों, हम धन्य हो गए जो स्वयं ऋषिवर सुतीक्षण जी आज हमें आशीर्वाद देने चले आए|’

‘सुतीक्षण जी का नाम सुन सभी वनवासियों ने उन्हें अपने अपने स्थानों से ही दंडवत किया| तब पिता उन्हें मेरे पास ले आए| यह सुतीक्षण जी तब ना जाने क्या क्या मुख में ही बुदबुदा रहे थे| आज हमारे भाग्य धन्य हुए जो हमने उस कन्या के दर्शन किए जो एक दिन श्री राम का कार्य करेगी और उनकी अति प्रिय होगी| उनका अयोध्या में राज्याभिषेक कराएगी, आदि आदि| मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आया, माँ| उन्होंने मेरे सर पर अपना हाथ रख मुझे आशीर्वाद दिया और चले गए| उसके बाद हमने माँ, अत्यंत प्रसन्नता और उल्लास के साथ वन महोत्सव मनाया|'

'माँ, सांय काल को मैंने पिता से पूछा, यह साधु सुतीक्षण कौन थे जिनको आपने और पुरोहित जी ने इतने सम्मान के साथ दंडवत किया और मुझे भी आशीर्वाद दिलवाया? तब जानती हो माँ, मेरे पिता जी ने ऋषिवर सुतीक्षण जी के बारे में मुझे बतलाया|'

'पिता ने बताया गौ माँ कि कोई बहुत बड़े महर्षि हैं अगस्त्य, हमारे महर्षि मतंग की प्रकार| एक दिन वह प्रातः स्नान करने जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें एक बच्चे के रोने का स्वर सुनाई दिया| तुरंत उस स्वर की ओर गए और देखा कि एक छोटा बच्चा अकेले पड़ा रो रहा है| वह सोचने लगे कि पता नहीं कौन इसको यहां छोड़ गया है? तुरंत उस बच्चे को लेकर आश्रम में आये और ऋषि माँ लोपामुद्रा की गोद में डाल दिया| तभी

ऋषि-पुत्री रोहिणी भी कुटिया से निकल आईं| बच्चे की सुंदरता और मुस्कान भरे चेहरे को देखकर बोलीं, 'देखो माँ, कितना सुन्दर खिलौना है| हम इसे अपने पास ही रखेंगे|'

महर्षि अगस्त्य और ऋषि माँ लोपामुद्रा का हृदय भी पिघल गया| उन्होंने उस बच्चे का लालन पालन करने का निश्चय कर लिया| बच्चा बड़ा चंचल था| शांत रहना ही नहीं जानता था| उनके नामकरण संस्कार पर महर्षि अगस्त्य ने उसका नाम 'सुतीक्षण' रखा| व्यस्क होने पर महर्षि अगस्त्य ने उसे अपना शिष्य बना लिया|'

'सुतीक्षण को पढ़ने लिखने में कोई रूचि नहीं थी| महर्षि अगस्त्य ने उन्हें वेद, वेदान्तों की शिक्षा देने के बहुत प्रयास किये पर वह बुद्धू के बुद्धू ही रहे| उन्हें गुरुदेव से अत्यंत प्रेम था| बस, उन्हीं की सेवा में लगे रहते| यदि गुरुदेव को थोड़ा सा भी कष्ट हो जाता तो पूरी रात्रि जागकर उनकी सेवा में ही बिता देते थे| महर्षि अगस्त्य के पास शालिग्राम की एक काले पत्थर की छोटी सी प्रतिमा थी जिसकी वह प्रतिदिन विधिवत पूजा करते थे| एक बार महर्षि अगस्त्य की इच्छा तीर्थ यात्रा करने की हुई| शिष्य सुतीक्ष्ण से बोले, 'पुत्र, मैं तेरी माँ लोपामुद्रा और बहन रोहिणी के साथ तीर्थ भ्रमण के लिए जा रहा हूँ| शालिग्राम जी की सेवा तुम्हें ही करनी होगी|'

अब सुतीक्ष्ण तो बड़े भोले थे| उन्होंने विधिवत शालिग्राम जी की पूजा और सेवा तो कभी की ही नहीं थी| महर्षि अगस्त्य से पूछा, 'मुझे क्या करना है, गुरुदेव?'

तब गुरु जी ने समझाया, 'देखो पुत्र, ये शालिग्राम जी हैं| इन्हें प्रतिदिन नहलाना, चन्दन लगाना, भोग लगाना इत्यादि, इत्यादि|'

गुरूदेव अगस्त्य के तीर्थ यात्रा के प्रस्थान के बाद सुतीक्ष्ण जी ही आश्रम की देख रेख करने लगे| वह प्रतिदिन शालिग्राम जी की पूजा करते हुए भगवद्भक्ति में तल्लीन रहते थे| आश्रम में कई जामुन के वृक्ष थे| जामुन के पकने का मौसम आ गया| सुतीक्ष्ण जी की जामुन खाने की इच्छा हुई| उन्होंने सोचा कि एक पत्थर के द्वारा तोड़ कर मैं जामुन गिरा लूँ| अब पत्थर कहाँ ढूंढने जाऊं? यह शालिग्राम जी भी तो पत्थर के ही हैं, इन्हीं से तोड़ लेता हूँ? जामुन के एक गुच्छे पर शालिग्राम जी को दे मारा| जामुन तो नीचे गिर गई परन्तु शालिग्राम जी पास में बहती नदी में गिर गए| सुतीक्ष्ण जी शालिग्राम के नदी से बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे| बहुत देर तक भी जब शालिग्राम जी नदी

से नहीं निकले तो सुतीक्ष्ण जी कहने लगे, 'कितना नहाओगे शालिग्राम जी| ठण्ड लग जायेगी| अब बाहर भी निकल आओ|'

फिर भी शालिग्राम जी नहीं निकले| तब शालिग्राम जी को निकालने नदी में कूद पड़े| बहुत खोज की पर फिर भी शालिग्राम जी उन्हें नहीं मिले| नदी के तट पर उदास बैठे थे कि अब क्या करूँ? तभी विचार आया, यह जामुन भी तो शालिग्राम जी के ही समान हैं| चलो इस जामुन को ही शालिग्राम जी के सिंहासन पर बिठा कर इसी की पूजा कर लेते हैं| बस प्रतिदिन यही करते रहे| प्रतिदिन सुबह एक नया जामुन लाते| उसे शालिग्राम जी के सिंहासन पर बिठाते| पुष्प चढ़ाते| आरती करते और अगले दिन उसे नदी में प्रवाहित कर एक नए जामुन से अपनी पूजा की प्रक्रिया प्रारम्भ करते| कुछ दिनों बाद तीर्थाटन के पश्चात महर्षि अगस्त्य परिवार सहित अपने आश्रम लौटे| सिंहासन आरूढ़ शालिग्राम जी की पूजा करने लगे| जैसे ही महर्षि अगस्त्य जी ने शालिग्राम रूपी जामुन को शालिग्राम समझ नहलाया और पोंछा वैसे ही जामुन का गूदा अलग और गुठली अलग| यह देख वह सुतीक्ष्ण जी पर बहुत क्रोधित हुए| सुतीक्ष्ण जी ने बड़े विनम्र भाव से महर्षि अगस्त्य जी से कहा:

पुनि पुनि चन्दन पुनि पुनि पानी |
गल गए ठाकुर हम का जानी ||

अब तो महर्षि जी और भी क्रोधित हुए| उन्होंने उन्हें क्रोध में आश्रम से निकल जाने की आज्ञा दे दी| अब गुरु आज्ञा| बड़े बेमन से गुरुदेव के चरण स्पर्श कर आश्रम से निकल एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गए| जब महर्षि का क्रोध शांत हुआ तो वह सुतीक्ष्ण के पास गए| उन्हें मनाने का प्रयत्न किया| आश्रम को वापस चलो| लेकिन सुतीक्ष्ण जी के हृदय में यह बात घर कर गई थी| उन्होंने हृदय में ठान लिया कि गुरुदेव तो पत्थर के शालिग्राम की पूजा करते हैं, मैं एक दिवस श्री हरि को स्वयं अपने साथ ले जाकर दर्शन कराऊंगा| उनकी हठ के आगे महर्षि अगस्त्य को झुकना पड़ा| तब से वह वन वन भटक तपस्या कर रहें हैं, 'हे प्रभु दर्शन दो| मुझे गुरु के पास जाना है|'

'मैंने सुना है गौ माँ कि महर्षि अगस्त्य ने उन्हें आशीर्वाद दे रखा है कि शीघ्र ही उन्हें भगवान् के मनुष्य रूप में दर्शन होंगे| है ना अद्भुत बात माँ? ऐसे भगवद्भक्त हैं सुतीक्ष्ण

जी| इसीलिए सब उनका अत्यंत सम्मान करते हैं| पता नहीं माँ, मुझे भी ऐसा क्यों लगता है कि जब सुतीक्षण जी को भगवान् मिलेंगे तो मुझे भी मिलेंगे|’

गौ माँ ने सर हिलाकर जैसे अपनी स्वीकृति दी|

लेकिन माँ, मुझे तो यह कथा हास्यास्पद लगती है| अब माँ, ऋषि सुतीक्षण जी कोई इतने बुद्धू थोड़े ही होंगे कि वह पूजनीय शालिग्राम जी को पत्थर के समान जामुन तोड़ने के लिए जामुन के गुच्छे पर दे मारें? और फिर महर्षि अगस्त्य तो हमारे महर्षि मतंग की प्रकार दिव्य दृष्टि वाले हैं, बस देखते ही समझ गए होंगे कि अवश्य कुछ दाल में काला है|’

इतना कहकर श्रमणा आज दिल खोलकर हंसी| पिछले छै महींनों से उसके मुख से हंसी तो क्या, मुस्कुराहट भी लुप्त हो गई थी| गौ माँ भी बार बार सर हिलाकर अपनी प्रसन्नता दिखा रहीं थीं| श्रमणा उनकी भी तो पुत्री है और अपनी पुत्री को इतने दोनों बाद प्रसन्न देख किस माँ को प्रसन्नता नहीं होगी|

श्रमणा को सजग की कुटिया में रहते रहते धीरे धीरे एक वर्ष बीत गया| एक दिन वह अपने नियमित समय से कुछ पहले जाग गईं| बाहर अभी भी अन्धेरा था| रात्रि को पवन भी अत्यंत वेग से बह रही थी| बादल भी छाए हैं, संभवतः वर्षा आने के आसार हैं| लेकिन जीवन तो यथावत चलते रहना चाहिए| श्रमणा नित्य कर्म के पश्चात पम्पा सरोवर में स्नान हेतु जाने के लिए तत्पर हुईं| रात्रि के प्रखर पवन के झोंके ने समीप की कांटेदार झाड़ी को उखाड़ कर मार्ग में पटक दिया था| अँधेरे में श्रमणा को दिखाई नहीं दिया और कांटेदार झाड़ी के ऊपर उनका पैर पड़ गया| कांटेदार झाड़ी के कांटे उनके पैर में चुभ गए| उनका पैर लोहू लुहान हो गया| श्रमणा दर्द से कराह उठीं| तुरंत अपनी कुटिया की ओर दौड़ीं| उन्हें स्मरण आया कि कुछ महीनों पहले वह ठोकर खाकर गौशाला में गिर गईं थीं तो मंगला ने एक मरहम दिया था| उसके लगाने से उन्हें बहुत आराम मिला था| कुटिया पहुँच कर तुरंत श्रमणा ने वह मरहम लगाया| तभी एक विचार ने उनके शरीर में सिहरन पैदा कर दी| अभी थोड़े ही समय में आश्रम के ऋषिवर एवं स्वयं महर्षि मतंग स्नान हेतु पम्पा सरोवर जाने वाले हैं| यह कंटीली झाड़ी यदि उनके पैरों में भी चुभ गईं तो? तुरंत एक झाड़ू लेकर वह मार्ग में पहुँची और पूरे

मार्ग को स्वच्छ किया| उसके पश्चात सरोवर में स्नान कर वापस कुटिया लौटीं और नित्य के कार्यक्रमों में लग गईं|

अब तो यह श्रमणा का नित्य नियम ही बन गया| सरोवर में स्नान करने से पहले वह प्रतिदिन झाड़ू से मार्ग स्वच्छ करतीं, फिर स्नान करतीं और अपने नित्य कार्यक्रम में लग जातीं|

महर्षि मतंग के प्रखर नेत्रों से प्रतिदिन स्वच्छ मार्ग मिलने की व्यवस्था नहीं छुप सकी| यह कौन है जो प्रतिदिन भोर होने से पहले सरोवर के मार्ग को स्वच्छ करता है? उन्हें प्रत्येक आश्रमवासी के स्वभाव एवं नित्य क्रम के बारे में पूर्णतः ज्ञान था| वह निश्चित थे कि यह कार्य किसी आश्रमवासी द्वारा नहीं किया जाता| उत्सुकतावश, एक दिन वह अपने समय से पूर्व जाग यह जानने का प्रयास करने लगे कि वह कौन है जो मार्ग को स्वच्छ करता है? पम्पा सरोवर के मार्ग पर एक वृक्ष के नीचे छुप कर महर्षि मतंग बैठ गए| थोड़ी देर में देखा कि एक छाया मार्ग पर झाड़ू लगा रही है|

महर्षि मतंग तुरंत उस छाया के पास गए और बोले, 'कौन हो तुम जो प्रतिदिन इस मार्ग को स्वच्छ रखने का प्रयास करती हो?'

श्रमणा घबरा गई| कहीं महर्षि क्रोधित तो नहीं हो जाएंगे? चरणों में दंडवत कर वह बोली, 'प्रभु, मेरा नाम श्रमणा है| मैंने एक दिन इस मार्ग पर जाते हुए काँटों से भरी झाड़ी मार्ग पर पड़ी देखी| कहीं यह कांटे प्रभु एवं आश्रमवासियों को न चुभ जाएं, बस इसीलिए मैं इस मार्ग को प्रतिदिन झाड़ू लगाती हूँ| यदि मुझ से कोई अपराध हुआ है तो मुझे क्षमा कर दें भगवन,' नेत्रों में अश्रु लाकर श्रमणा बोलीं|

'श्रमणा? क्या तुम भील सरदार शबर की पुत्री हो?' महर्षि ने आश्चर्य से पूछा|

'हां प्रभु| मेरे पिता मेरा विवाह करना चाहते थे| वह तो उचित ही रहा होगा भगवन, लेकिन मेरे विवाह के कारण कई पशुओं की हत्या होने वाली थी| वह निरपराधी पशुओं की वनदेव को बलि चढ़ा कर, उन्हें प्रसन्न कर पशुओं का भक्षण करने वाले थे, भगवन| मुझे मंगला ने बताया था कि पशु हत्या पाप है| अतः मैं वहां से भाग आई, भगवन,' डरते डरते श्रमणा ने यह शब्द महर्षि को बोले|

'धन्य धन्य पुत्री श्रमणा, श्री हरि की प्रिय पुत्री के ऐसे वैष्णव विचार क्यों न हों? तुम आश्रम में मेरे पास क्यों नहीं आईं पुत्री? कहाँ इतने दिनों तक भटकती रहीं?' महर्षि की आँखे भी नम हो गईं|

'भगवन, मैं भील पुत्री आश्रम आने का साहस कैसे कर सकती थी? लेकिन महर्षि, सजग ताऊ ने मुझे अपनी पुत्री जैसा प्रेम दिया और मैं उन्हीं की कुटिया में तब से रह रही हूँ|'

'सजग, गौशाला रक्षक! तुम मेरे इतने समीप रहीं फिर भी मैं तुम्हें न ढूंढ सका? चलो जैसी प्रभु की इच्छा| अब तुम मेरे साथ आश्रम चलो और मुझे बिना संकोच बताओ तुम जीवन में क्या करना चाहती हो?' मधुर प्रेम भरे शब्दों में महर्षि बोले|

'प्रभु, मेरी धृष्टता को क्षमा करें| मैं मंगला के समान वेद, वेदान्तों का अध्ययन करना चाहती हूँ,' श्रमणा बोली|

'बस, इतनी सी बात| मैं तुझे स्वयं अपनी शिष्या स्वीकार करता हूँ| मैं स्वयं तुझे ब्रह्म-ज्ञान दूंगा| लेकिन एक शर्त है,' महर्षि मतंग बोले|

महर्षि मतंग आगे बोले, 'मैंने तेरे पिता को वचन दिया है कि जब तू मुझे मिल जाएगी तो मैं उन्हें सूचित करूंगा और उन्हें सौंपूँगा| वचनबद्ध हूँ, पुत्री| तुम्हारे पिता को बुलाकर मुझे तुम्हें उनको सौंपना पड़ेगा| परन्तु मैं प्रयास करूंगा कि तुम्हारे पिता तुम्हें शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दें| मुझ पर विश्वास रखो, पुत्री| प्रभु सब ठीक ही करेंगे|'

श्रमणा को महर्षि स्वयं आश्रम ले कर आए| आश्रमवासियों को श्रमणा के निःस्वार्थ कृत्य के बारे में बताया| सभी के मुख से 'साधुवाद, साधुवाद' शब्द निकले| महर्षि ने तुरंत एक आश्रमवासी को भील सरदार शबर सेन के पास यह शुभ समाचार दे कर भेजा कि'श्रमणा मिल गई है, जीवित है एवं स्वस्थ है| तुरंत आश्रम आकर मिलो|

जैसे ही शबर सेन को अपनी पुत्री के पाए जाने का समाचार मिला उन्हें ऐसा लगा कि रात्रि के मेघों की घटा में पूर्ण चंद्र प्रकाशित हो गए हैं| अपनी पत्नी के साथ महर्षि मतंग

के आश्रम की ओर तुरंत दौड़े| महर्षि के आश्रम पहुँच कर एकाएक अपनी पुत्री को समक्ष देख दुःख को भूल प्रत्यक्ष पुत्री मिलन के प्रेम में दोनों पति-पत्नी सुख में तल्लीन हो गए| उनके अंतःकरण में अन्धकारमय रात्रि के पश्चात प्रात: काल पर सूर्य के प्रकाश सम कान्ति छा गई| नेत्र अश्रुओं से भर गए| पुलकित कोमल होंठ स्पष्ट रूप से उनके आनंद की साक्षी देने लगे| ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मध्याह्न काल के पश्चात् मंद मंद वायु चल रही है| पक्षियों अपने अपने घोंसलों से निकल आपस में चूं चूं रूपी गायन कर रहे हैं और झाड़ियों की कोमल पत्तियां पवन में झूम झूम कर उनके भाग्य को सराह रही हैं|

श्रमणा की माता अपनी पुत्री के तुरंत निकट पहुँची और उन्होंने उसको अपनी गोद में लेकर हृदय से चिपटा लिया| बार बार वह उसके मस्तक को सूँघने और चूमने लगीं| जिस प्रकार नव प्रसूता गौ अपने बछड़े को चाटकर अथवा कंगाल खोए हुए द्रव्य के मिलने पर एक दूसरे को हृदय से लगाते हैं, उसी भांति श्रमणा की माँ अपनी पुत्री को बार बार हृदय से लगा उसके मुख का चुम्बन लेने लगीं| तत्पश्चात पुत्री को प्रेमयुक्त वचनों से इस प्रकार उन्हें अकेले छोड़ जाने के लिए कोसने लगीं|

जब पिता-माता-पुत्री मिलन से सभी के हृदय शान्ति और प्रसन्नता से भर गए तब महर्षि मतंग मधुर वचन में बोले, 'प्रिय शबर सेन, मैंने अपना वचन निभाते हुए पुत्री के मिल जाने का सन्देश तुरंत तुम तक पहुंचाया है| शास्त्रों के अनुसार अविवाहित पुत्री पर पिता का ही अधिकार होता है| अतः अब इस पुत्री के भविष्य निर्माण निश्चय में अवश्य ही तुम्हारी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी| तुम्हारी पुत्री ने अपने विचार मुझ से स्पष्ट रूप में बताए हैं| वह आर्य कन्याओं की भांति वेद, वेदांतो की शिक्षा प्राप्त कर ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहती है| मैंने उसे अपनी शिष्या बनाकर उसे पूर्ण ज्ञान देने की अनुमति भी दे दी है लेकिन यह तुम्हारी अनुमति के बिना संभव नहीं| अतः अब तुम्हें यह निश्चय करना है कि तुम अपनी पुत्री का भविष्य किस प्रकार से देखते हो? उसका विवाह कर उसको गृहस्थ जीवन के बंधन में डाल देने का अथवा उसे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देने का| तुम्हारे कोई निर्णय लेने से पूर्व मैं एक संकेत अवश्य दूंगा| तुम्हारी पुत्री का जन्म श्री हरि के कार्य के लिए हुआ है| संभवतः विवाह कर गृहस्थ जीवन में बंधने के लिए नहीं| इसके पूर्व जन्म की मैं तुम्हें कथा सुनाता हूँ|’

‘पूर्व जन्म में तुम्हारी पुत्री गांधर्व सम्राट चित्रकवच की पुत्री मालिनी थीं| इनका विवाह एक ऋषि वितिहोत्र से हुआ था| ऋषि वितिहोत्र सदैव साधना में लीन रहते थे| अपनी पत्नी और गृहस्थ आश्रम में समय व्यतीत करने के लिए उनके पास समय ही नहीं रहता था| एक राजकुमारी इस प्रकार के वैराग्य जीवन से शीघ्र ही उकता गई| उनका प्रेम एक निषाद कल्माष से हो गया| जब ऋषि वितिहोत्र को यह पता चला तब वह बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने मालिनी को इस अनार्य कृत्य की भर्त्सना करते हुए श्राप दे दिया, 'हे गांधर्व पुत्री मालिनी, तुमने एक नीच नारी की भांति व्यवहार किया है, अतः तुम अगले जन्म में एक श्रमक के गृह में जन्म लो|'

‘इसके पश्चात अपने कुकृत्य के कारण ग्लानि से भरे कल्माष ने नदी में डूब आत्म-हत्या कर ली| इस श्राप ने मालिनी के हृदय को झकझोर दिया| उन्हें भी अपने कुकृत्य पर अत्यंत ग्लानि होने लगी| नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बहने लगी| ऋषिवर वितिहोत्र के कदमों में पड़ कर क्षमा याचना करने लगीं| अब ऋषि का हृदय तो जन साधारण के लिए भी अत्यंत कोमल होता है, फिर मालिनी तो उनकी पत्नी थीं| ऋषिवर वीतिहोत्र द्रवित हो गए और बोले, 'प्रिये, श्राप को तो मैं नहीं मिटा सकता लेकिन तुम्हें भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए एक मन्त्र अवश्य दे सकता हूँ| उस मन्त्र का शुद्ध हृदय से जाप करते हुए तप करो| अवश्य ही तुम्हें भगवान् विष्णु क्षमा करेंगे|'

मङ्गलम् भगवान विष्णुः, मङ्गलम् गरुणध्वजः |
मङ्गलम् पुण्डरी काक्षः, मङ्गलाय तनो हरिः ||

‘तब मालिनी अपने पति ऋषिवर वितिहोत्र का आशीर्वाद ले इस सरल मन्त्र का जाप करते हुए भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने का प्रयास करने लगीं| कई वर्षों की उनकी तपस्या के पश्चात आकाशवाणी हुई, 'हे पुत्री मालिनी, तेरे पति ऋषिवर वितिहोत्र ने तो तुझे पहले ही क्षमा कर दिया था, मैं भी तुझे क्षमा करता हूँ| अब तू तप छोड़ अपने पति के आश्रम वापस जा| वह तुझे अवश्य ही स्वीकार करेंगे| उनकी यथोचित सेवा करते हुए अपना शेष जीवन समाज सेवा और भगवद्भक्ति को अर्पित कर| तेरा अगला जन्म अवश्य एक श्रमक के ही गृह में होगा परन्तु मेरे आशीर्वाद से तू ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करेगी और मेरी सेवा में अपना जीवन व्यतीत करेगी| जब मैं पृथ्वी पर असुरों का विनाश करने के लिए त्रेता युग में अवतरित हुंगा, तो तुझे मेरे दर्शन प्राप्त होंगे|'

‘आकाशवाणी सुन प्रभु को हृदय में नमन करते हुई मालिनी तब अपने पति ऋषि वितिहोत्र के आश्रम मैं लौट आईं| ऋषिवर ने भी इस आकाशवाणी को सुना था| अपनी पत्नी का आश्रम में लौटने पर भव्य स्वागत किया और सुख पूर्वक समाज सेवा एवं भगवद भजन करते हुई दोनों ने अपना शेष जीवन बिताया| समय आने पर उन्होंने अपने पार्थिव शरीर को छोड़ दिया| ऋषिवर वितिहोत्र तो मोक्ष प्राप्त कर प्रभु के साकेत धाम चले गए और बेचारी मालिनी को इस श्राप हेतु पृथ्वी पर एक श्रमक के गृह में जन्म लेना पड़ा| वह श्रमक कोई और नहीं तुम ही हो शबर सेन, और वह मालिनी कोई और नहीं श्रमणा ही है| इस पूर्व जन्म का इतिहास एवं श्रमणा के जीवन का ध्येय जानने के पश्चात जो भी तुम निर्णय करो, हम उसका सम्मान करेंगे, शबर सेन|’

'त्राहि माम, त्राहि माम, रक्षा करो, रक्षा करो महर्षि| हम अज्ञानीयों को क्षमा करो,' यह कहते हुई दोनों, भील सरदार शबर सेन और उनकी पत्नी, महर्षि के चरणों के समीप दंडवत प्रणाम करते हुई पृथ्वी पर लोट गए| तब स्वयं महर्षि ने शबर सेन को उठाकर गले से लगाया|

'मेरी पुत्री आपकी पुत्री है महर्षि| मैं इसे आपको समर्पित करता हूँ| इस भील समुदाय के अहोभाग्य कि इस समुदाय की एक पुत्री ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करेगी| जैसा आप आज्ञा दें प्रभु वही होगा,' करबद्ध शबर सेन बोले|

तब महर्षि ने उन्हें आशीर्वाद दे कर तथा आश्रम में जब मन चाहे अपनी पुत्री से मिलने की अनुमति दे, उन दोनों को विदा किया|

शबर सेन की अनुमति से अब श्रमणा को महर्षि मतंग ने विधिवत अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार किया| पम्पा सरोवर में पवित्र स्नान के बाद मंत्रोचारण के साथ उनका आश्रम में प्रवेश कराया गया और वह आश्रम की सदस्या बन गईं|

मंगला एवं श्रमणा की मित्रता पूरे आश्रम में एक उदाहरण बनी हुए थी| मंगला ने अपना पूरा ध्यान आयर्वेदिक विद्या सीखने में लगाया और श्रमणा ने वेद-वेदान्तों का अध्ययन|

समय के साथ महर्षि मतंग के निर्देश पर मंगला को आयुर्वेद विशेषज्ञ शिक्षा प्राप्त करने हेतु महर्षि भारद्वाज के आश्रम प्रयागराज भेज दिया गया और श्रमणा वहीं मतंग ऋषि जी के निर्देश में वेद, वेदान्तों की शिक्षा प्राप्त कर आचार्य पद से अलंकृत हुईं|

शबरी नामकरण

महर्षि भारद्वाज के आश्रम में महर्षि श्रंगी के निर्देशानुसार उपकुलपति कुर्तकी अपना अधिक से अधिक समय मंगला के साथ बिताने लगीं| श्रमणा का स्वभाव, उसका चलना, बोलना एवं अन्य व्यवाहरिक गति विधियों का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए श्रमणा के प्रतिरूप बनने का प्रयास करने लगीं| वनवासियों की भाषा की शब्दावली, शब्दकोष एवं स्वरोच्चारण पर अपना नियंत्रण करने का अथक प्रयास करने लगीं| आयुर्वेद जड़ी बूटीओं के लेप के साथ साथ सारे सारे दिन दोपहर की तपती धूप में साधना करते हुए अपनी त्वचा के रंग को सावंला करने लगीं| आश्रम में सभी ने यही जाना कि उपकुलपति किसी विशेष तपस्या में लीन हैं अतः उनकी शांति को किसी ने भंग करने का साहस नहीं किया| इसी प्रकार तीन महीने बीत गए और अब उपकुलपति कुर्तकी श्रमणा की पूर्णतः प्रतिमूर्ति बन चुकी थीं|

मंगला की आयुर्वेद विशेषज्ञ शिक्षा भी पूर्ण हो चुकी थी| अतः उपकुलपति कुर्तकी ने महर्षि भारद्वाज की अनुमति से दीक्षांत समारोह का आयोजन किया और मंगला को आचार्य पद से अलंकृत किया| यह निश्चय हुआ कि महर्षि श्रंगी के साथ उपकुलपति कुर्तकी एवं आचार्य मंगला शीघ्र ही महर्षि मतंग के आश्रम के लिए प्रस्थान करेंगे|

इधर आचार्य पांडुरंग महर्षि भारद्वाज के निर्देश के अनुसार महर्षि मतंग के आश्रम अरण्यवन पहुंचे और गोपनीयता से उन्होंने महर्षि श्रंगी की योजना से उन्हें अवगत कराया| महर्षि मतंग तो इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे| उन्होंने आचार्य श्रमणा को सभी स्थिति का भान करा उन्हें स्थानांतरण के लिए उद्यत रहने की आज्ञा दी| आचार्य श्रमणा तो जब से महर्षि मतंग ने उन्हें उनके पूर्व जन्म के बारे में संज्ञान दिया था तभी से वह इस क्षण की प्रतीक्षा में थी| उन्होंने महर्षि भारद्वाज, उपकुलपति कुर्तकी एवं उनके गुरुकुल के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था| शीघ्र ही मुझे देवी स्वरुप कुर्तकी और देव स्वरुप महर्षि भारद्वाज के दर्शन होंगे, यह सोचकर उनके रोंगटे खड़े हो गए| गुरुदेव महर्षि मतंग का उपकार ध्यान में रख उन्होंने बार बार महर्षि मतंग के चरणों में अपनी शीश झुकाया और उनसे आशीर्वाद पाया|

महर्षि मतंग ने विचार किया कि यदि यहां आश्रम में उपकुलपति कुर्तकी महर्षि श्रंगी के साथ आईं तो इस योजना की गोपनीयता रखना असंभव होगा| उन्हें उपकुलपति

कुर्तकी और महर्षि श्रंगी के साथ आचार्य श्रमणा को लेकर पहले एक निर्जन स्थान पर मिलना आवश्यक था| इस निर्जन स्थान पर कुछ दिन रहते हुए जब उपकुलपति कुर्तकी पूर्ण रूप से आचार्य श्रमणा की भूमिका ग्रहण करने में समर्थ हों, तब महर्षि मतंग आचार्य श्रमणा को महर्षि श्रंगी को सौंप स्वयं उपकुलपति कुर्तकी को आचार्य श्रमणा के रूप में अपने आश्रम में ले आएँगे| पर्याप्त विचार के बाद उन्हें यह निर्जन स्थान ऋषिवर सुतीक्षण की कुटिया लगी जो पम्पा सरोवर के दूसरे तट पर स्थित थी| जब से ऋषिवर सुतीक्षण जी ने अपने गुरुदेव महर्षि अगस्त्य का आश्रम छोड़ दिया था, तब से वह भगवान् श्री राम की प्रतीक्षा में उन्हें अपने साथ गुरुदेव के पास ले जाने के उद्देश्य से एकांत में इस निर्जन स्थान पर एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहते थे| ऋषिवर सुतीक्षण के आक्रोश के कारण वहां कोई भी वनवासी अथवा अन्य उनकी कुटिया के आस पास भी भटकने से घबराते थे|

विचार आते ही अगले दिन महर्षि मतंग ने सर्व प्रथम सभी आश्रमवासियों को आचार्य पांडुरंग का परिचय कराया | तदुपरांत महर्षि बोले, 'आचार्य पांडुरंग मेरे अति प्रिय मित्र महर्षि भारद्वाज के शिष्य हैं| उनका इस आश्रम में हृदय से स्वागत है| उनकी इच्छानुसार मैं उन्हें अरण्य वन भ्रमण हेतु ले जाने वाला हूँ| उन्हें वन के मुख्य स्थल दिखाने के पश्चात कुछ दिनों में वापस आ जाऊँगा और तब आचार्य पांडुरंग प्रयाग प्रस्थान करेंगे|'

कुछ आश्रमवासियों ने महर्षि एवं आचार्य पांडुरंग की सुरक्षा एवं उनका खान-पान इत्यादि का उचित प्रबंध करने हेतु महर्षि के साथ चलने की आज्ञा लेने का प्रयास किया, लेकिन महर्षि मतंग ने इसे स्वीकार नहीं किया|

योजना के अनुसार महर्षि मतंग एवं आचार्य पांडुरंग ऋषि सुतीक्षण की कुटिया की ओर चल दिए| कुछ घंटों की यात्रा के पश्चात महर्षि मतंग एवं आचार्य पांडुरंग ऋषि सुतीक्षण जी की कुटिया के समीप पहुँच गए| ऋषिवर सुतीक्षण जी ने दूर से ही महर्षि मतंग को अपनी कुटिया की ओर आते देखा और दौड़ कर समीप पहुँच उनको दंडवत प्रणाम किया| आदर सहित अपनी कुटिया में ला कर उनकी पूजा की और फल आहार के लिए अर्पित किए| थोड़ा विश्राम करने के पश्चात महर्षि मतंग ने ऋषि सुतीक्षण को पूरी योजना से अवगत कराया| महर्षि श्रंगी के भी कदम मेरी इस कुटिया पर पड़ने

वाले हैं, यह सोचकर ऋषि सुतीक्षण गदगद हो गए और बार बार इस उपकार के लिए महर्षि मतंग के चरणों में अपना सर नवा कर उन्हें प्रणाम करने लगे|

कुछ दिवस ऋषि सुतीक्षण की कुटिया में बिताने के बाद महर्षि मतंग आचार्य पांडुरंग के साथ अपने आश्रम लौट आए| तब आचार्य पांडुरंग ने उनसे विदा लेने की अनुमति माँगी| महर्षि मतंग से विदा लेकर तब उन्होंने प्रयाग के लिए प्रस्थान किया| प्रयाग पहुँच कर अपने गुरुदेव महर्षि भारद्वाज, महर्षि श्रंगी एवं उपकुलपति कुर्तकी के चरणों में अपना शीश नवा कर उनके चरण स्पर्श पश्चात उन्होंने महर्षि मतंग आश्रम में हुए वृतांत का विस्तृत विवरण दिया|

महर्षि भारद्वाज से अनुमति ले कर अब महर्षि श्रंगी उपकुलपति कुर्तकी एवं आचार्य मंगला ने ऋषि सुतीक्षण जी की कुटिया की ओर प्रस्थान किया| कुछ दिनों की यात्रा के पश्चात इन तीनों का समूह ऋषि सुतीक्षण की कुटिया पर पहुँच गया| कुछ विश्राम के पश्चात आचार्य मंगला अकेली ही महर्षि मतंग के आश्रम उन्हें महर्षि श्रंगी एवं उपकुलपति कुर्तकी के ऋषि सुतीक्षण की कुटिया पर आ जाने का समाचार देने को चल दीं|

आचार्य मंगला जैसे ही महर्षि मतंग के आश्रम द्वार पर पहुँची, एक आश्रमवासी ने उन्हें तुरंत पहचानकर दंडवत प्रणाम किया और चिल्लाता हुआ आश्रम की ओर भागा, 'देवी मंगला आ गईं, देवी मंगला आ गईं|’

स्वर सुन सर्व प्रथम आचार्य श्रमणा अपनी सखी से मिलने आश्रम द्वार की ओर नंगे पाओं ही दौड़ीं| अपने मित्र का उन्होंने आलिंगन कर लिया| दोनों मित्रों के नेत्रों से अश्रुधार निरंतर बहती रही | तभी उन्हें पीछे से आचार्य अनंत देव के मधुर शब्द सुनाई दिए, 'स्वागत है पुत्री| तुम्हें देख हमारे नेत्र धन्य हो गए|'

तब मंगला अपने पिता से चिपट बहुत रोईं| पिता से मिलन पश्चात महर्षि मतंग की कुटिया जा उन्हें दंडवत प्रणाम कर संकेत से सब कुछ बता दिया और फिर माँ से मिलने अपनी कुटिया पर दौड़ीं| माँ को तो जैसे पूर्ण निधि ही मिल गई| दोनों माँ-पुत्री बहुत देर तक एक दूसरे से आलिंगित प्रेम अश्रु धारा बहाते रहे|

आचार्य श्रमणा ने जान लिया कि अब समय अत्यंत निकट है जब उन्हें महर्षि मतंग के आश्रम से विदा ले महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल प्रयाग के लिए प्रस्थान करना है| माता पिता से अंतिम बार मिलने की प्रबल इच्छा लिए अनुमति के लिए महर्षि मतंग के समीप गईं| उन्हें दंडवत प्रणाम कर उनके समीप बैठ गईं| महर्षि ने तो आँखों से ही समझ लिया कि श्रमणा का हृदय अपने माता पिता से मिलने का है| उन्हें आशीर्वाद दे कर तुरंत उनसे मिलने जाने की अनुमति दी|

आचार्य श्रमणा अपने पिता शबर सेन के गृह पहुँची| पुत्री तो अब आर्य गुरु है, आचार्य है, अतः आर्य आचार्यों के नवाचार वह पुत्री को प्रणाम करने झुके ही थे कि श्रमणा ने अपने पिता को शीघ्र पकड़ कर उनका आलिंगन किया| फिर माता से बड़े प्रेम के साथ मिलीं| दोनों को नेत्र भरकर प्रेम से देखने के पश्चात यह अंतिम मिलन समझ उनके नेत्रों से अश्रु थम ही नहीं रहे थे| भील सरदार शबर सेन और उनकी पत्नी की समझ में ही नहीं आ रहा था कि पुत्री इतना क्यों रो रही है? उनके लिए तो यह एक अति प्रसन्नता का दिवस था कि पुत्री आर्य आचार्य बन उनके गृह उनसे मिलने आई है| जब से पुत्री को महर्षि मतंग ने आचार्य पद से अलंकृत किया है, उनका सम्मान उनके कुल में आकाश को छू रहा है| पुत्री को भली भांति समझाया और बोले, 'पुत्री हम तो सदैव आपके पास हैं| जब मन चाहे तुम मिलने आ जाना अथवा हम आश्रम आ जाएंगे| मत रो पुत्री|'

माता पिता से विदा ले कर आचार्य श्रमणा महर्षि मतंग के आश्रम लौट आईं और ऋषि सुतीक्षण की कुटिया जाने हेतु गुरु आदेश का प्रतीक्षा करने लगीं| हृदय में जहां माता पिता एवं समस्त आश्रमवासीओं से बिछुड़ने का दुःख था, वहीं प्रभु के काज में सहायक होने, उपकुलपति कुर्तकी के दर्शन एवं भविष्य महर्षि भारद्वाज द्वारा निर्देशित होने के विचार से मन प्रसन्नता से भरा हुआ था|

उस दिन सांय महर्षि मतंग ने आचार्य श्रमणा और आचार्य मंगला, दोनों को ही अपनी कुटिया में बुलाया| महर्षि मतंग बोले, 'महर्षि श्रृंगी एवं उपकुलपति कुर्तकी कुछ दिनों से ऋषि सुतीक्षण की कुटिया में आए हुए हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं| उन्हें अधिक प्रतीक्षा कराना उचित नहीं| अतः मेरा प्रस्ताव है कि अगले दिन प्रातः हम ऋषि सुतीक्षण की कुटिया की ओर प्रस्थान करें|'

दोनों ही आचार्यों ने सहमति दी और ऋषि सुतीक्षण की कुटिया जाने की तैयारी में लग गए| प्रातः महर्षि मतंग ने आश्रमवासीओं से कुछ महत्वपूर्ण कार्य के लिए आचार्य श्रमणा एवं आचार्य मंगला के साथ वन जाने के अपने निर्णय को सुनाया और तीनों का समूह ऋषि सुतीक्षण की कुटिया की ओर चल दिया|

कुछ ही घंटों में तीनों का समूह, महर्षि मतंग, आचार्य मंगला एवं आचार्य श्रमणा, ऋषि सुतीक्षण की कुटिया में पहुँच गया| आर्य कुल के शिष्टाचार की रीतिओं के अनुसार महर्षि मतंग एवं महर्षि श्रंगी आलिंगन कर एक दूसरे से मिले| आचार्य श्रमणा एवं आचार्य मंगला ने महर्षि श्रंगी एवं ऋषि सुतीक्षण जी के चरण स्पर्श किये|

आचार्य श्रमणा कुलपति कुर्तकी को देख चकित रह गईं| उन्होंने स्वप्न में नहीं सोचा था कि कुलपति कुर्तकी उनके अनुरूप में इस प्रकार ढल जाएँगी| आचार्य श्रमणा बार बार कुलपति का अभिवादन करती हैं और कुलपति कुर्तकी उनका अभिवादन प्रेम से स्वीकार करती हैं| उन्हें सबसे अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब कुलपति ने वनवासी भाषा में उन्हीं के स्वराघात में बातें करना प्रारम्भ कर दिया|

इस प्रकार वार्ताएं चलती रहीं| अब विदा लेने का वह क्षण आ गया जिसकी सबको अत्यंत प्रतीक्षा थी| उपकुलपति कुर्तकी ने अपना आशीर्वाद हस्त आचार्य श्रमणा के सर पर रखा और वचन दिया कि उनके माता पिता का वह उन्हीं की ही भांति पूर्ण ध्यान रखेंगी तथा उनकी हर गति विधि का विवरण समय समय पर उन तक प्रयाग गुरुकुल पहुंचाती रहेंगी|

महर्षि मतंग उपकुलपति कुर्तकी को श्रमणा बना और महर्षि श्रंगी आचार्य श्रमणा को उपकुलपति कुर्तकी बना अपने अपने आश्रमों को विदा हुए| इस स्थानांतरण के बारे में केवल सीमित लोगों को ही पता था|

महर्षि मतंग आचार्य श्रमणा (उपकुलपति कुर्तकी) एवं आचार्य मंगला के साथ अपने आश्रम आ गए| उस दिन थके होने के कारण सब को विश्राम करने की आज्ञा दी| अगले दिन प्रातः उन्होंने एक शिष्य भेज कर शबर सेन को आमंत्रित किया और सभी आश्रमवासियों के साथ एक सभा का आयोजन किया|

'प्रिय साथियो, आचार्य श्रमणा की शिक्षा अब पूर्ण हुई और उसकी इच्छा है कि वह अपना स्वंतत्र आश्रम अपने भील समुदाय के बीच स्थापित करे| मेरा आशीर्वाद उसके साथ है| हाँ, मैंने उससे इतना अवश्य कहा है कि भील समुदाय के बीच आश्रम स्थापित करने एवं उनके बीच रहने से कुछ आर्य असंतुष्ट हो सकते हैं और संभवतः वह सम्मान न दें जो उसको अभी मिल रहा है| लेकिन वह मेरी शिष्या है और शिष्या पुत्री के बराबर होती है| अतः मेरे आश्रम और मेरी कुटिया में वह निःसंकोच कभी भी आ जा सकती है| मेरा प्रेम उसके प्रति कभी कम नहीं होगा| यदि इसमें किसी को आपत्ति हो तो वह अभी अपने विचार रखे', महर्षि मतंग बोले|

'साधुवाद, साधुवाद' के नारों से जनसभा गूँज उठी| शबर सेन को तो अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उनकी पुत्री अब उनके मध्य आकर रहना चाहती है| नेत्रों में अश्रु भरकर उन्होंने उसे सीने से लगा लिया और बोले, 'पुत्री, इस बुढ़ापे में तूने अपने माता पिता की सुन ली| भगवान् तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हो अवश्य आकाश से तुझे आशीर्वाद दे रहे होंगे| पुत्री, तेरा स्वागत है|'

'पिताजी, मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ है अतः मैं गृह में नहीं रह सकती| आप शीघ्र, अति शीघ्र, एक स्वच्छ और सुरक्षित स्थान देख कर अपने कुल के बीच मेरी कुटिया बनवा दीजिए| मैं वहां स्थापित हो आपकी और पूरे भील समाज की सेवा में लग जाऊँगी', श्रमणा बोलीं |

'अवश्य पुत्री, मुझे तुम केवल एक सप्ताह का समय दो| तुम अपना आश्रम स्थापित हुआ पाओगी', शबर सेन बोले|

महर्षि की ओर मुंड कर उनके चरणों को दूर से ही प्रणाम कर उनका आभार प्रकट कर शबर सेन जाने ही वाले थे कि महर्षि मतंग फिर से बोले, 'शबर सेन एवं आश्रमवासीओ, अब चूँकि श्रमणा अपना नया स्वतंत्र आश्रम स्थापित करने जा रहीं है, मैं उसका नया नामकरण करता हूँ, 'शबरी', शबर समुदाय की सरंक्षक| शबरी का अर्थ संस्कृत में 'योगासिनी' होता है| हम आर्यों के लिए शबरी योगासिनी हैं और वनवासियों के लिए शबरी हैं| इस प्रकार श्रमणा को नया नाम 'शबरी' मिला और इसके बाद वह इसी नाम से ही सम्बोधित हुईं|

शबरी का नया आश्रम

शबर सेन के चले जाने के बाद महर्षि मतंग ने आचार्य शबरी एवं आचार्य मंगला को अपने कक्ष में बुलाया और उनके मध्य गुप्त मंत्रणा होने लगी| आचार्य शबरी गुप्तचर प्रणाली की विशेषज्ञ थीं अतः उन्हें अपनी योजना बनाने में देरी नहीं लगी| वनवासियों को अपने विश्वास में सर्व प्रथम लेना आवश्यक था| इसके लिए दो समुदाओं की सभ्यता के मिलन के लिए आचार्य शबरी ने अपनी योजना बनाई| इस कार्य के लिए वन देवता पुजारी सिंघम के साथ मित्रता आवश्यक थी और उन्हें हर प्रकार से यह विश्वास दिलाना था कि आचार्य शबरी के वनवासियों के मध्य स्थानांतरण से उनकी पुरोहिती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह वन समुदाय के साथ साथ आचार्य शबरी के भी मान्य होंगे| इस योजना के अंतर्गत दूसरे दिन प्रातः पुजारी सिंघम से मिलने के लिए स्वयं आचार्य शबरी ने उनके निवास पर जाना निश्चित किया| आचार्य शबरी के नए आश्रम में स्थापित होने के पश्चात् आचार्य मंगला आश्रम एवं आचार्य शबरी के मध्य संपर्क रखेंगी, यह भी निश्चय किया गया| आचार्य मंगला आयुर्वेद विज्ञान विशेषज्ञ हैं अतः आचार्य शबरी के नए आश्रम में एक कुटिया को औषधालय में परवर्तित किया जाएगा जहां नियमित रूप से आचार्य मंगला वनवासियों की सेवा हेतु चिकित्सालय चलाएंगी| सभी आश्रमवासी एवं वनवासी यह भली भांति जानते थे कि आचार्य मंगला आचार्य शबरी की अभिन्न मित्र हैं अतः आचार्य मंगला के आचार्य शबरी से नियमित मिलने पर और वहां चिकित्सालय चलाने पर किसी को किसी प्रकार के संदेह की संभावना नहीं थी| गुप्त समाचार आश्रम से अयोध्या प्रशासन तक पहुंचाने के लिए महर्षि भारद्वाज के शिष्य आचार्य जगदमूर्ति जो महर्षि मतंग के आश्रम में कई वर्षों से अस्त्र, शस्त्र विशेषज्ञ के रूप में महर्षि के शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं और घुड़सवारी एवं अस्त्र, शस्त्र विद्या के विशेषज्ञ हैं, उन्हें कार्य सौंपने की योजना बनी|

इस निर्णय के साथ ही महर्षि मतंग ने एक शिष्य के द्वारा तुरंत आचार्य जगदमूर्ति को गुप्त मंत्रणा में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया| आचार्य जगदमूर्ति तुरंत महर्षि के कक्ष में पहुंचे| महर्षि के चरण स्पर्श करने के पश्चात महर्षि की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे| अब महर्षि ने आचार्य शबरी का यथार्थ परिचय कराया| यह जान कर कि आचार्य शबरी कोई और नहीं परन्तु उनकी आचार्य गुरु कुर्तकी हैं, तुरंत उन्होंने आचार्य शबरी के चरण स्पर्श करने चाहे परन्तु आचार्य शबरी ने संकेत से मना कर दिया| किसी भी प्रकार किसी को आचार्य शबरी के यथार्थ परिचय का पता नहीं लगना

चाहिए| तद्पश्चात महर्षि ने इस शुभ कार्य में भाग लेने के लिए आचार्य जगदमूर्ति की इच्छा जानी| आचार्य जगदमूर्ति भाव विभोर हो गए| महर्षि एवं आचार्य शबरी को आभार दर्शाते हुए प्रेम पूर्वक वचन बोले, 'मैं धन्य हो गया महर्षि एवं आचार्य शबरी जी, इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए आपने मुझे चुना| मैं आपको वचन देता हूँ कि अपनी प्रतिभा के अनुसार मैं यह कार्य पूर्ण रूप से कार्यान्वित करूंगा और इस के गोपनीय महत्व को समझते हुए इस योजना को अपने तक ही सीमित रखूंगा|’

महर्षि मतंग ने आचार्य जगदमूर्ति को निर्देश दिया कि वह प्रशासनिक अधिकारी अनंतदेव को हम्पी स्थित दुर्ग में सूचित करें कि आचार्य शबरी ने अपना पद एवं कार्यभार संभाल लिया है| आचार्य शबरी को आवश्यक्ता पड़ने पर सभी प्रकार की आर्थिक, सैन्य एवं अन्य अपेक्षित सहायता के लिए वह तत्पर रहें|

तद्पश्चात महर्षि की आज्ञा से विश्राम हेतु सभी अपने अपने स्थान पर चले गए|

अगले दिन प्रातः आचार्य शबरी और आचार्य मंगला पुजारी सिंघम से मिलने उनके निवास स्थान पहुंचे| आचार्य शबरी जानती थीं कि सरदार शबर सेन और पुजारी सिंघम सम आयु हैं और बचपने से ही दोनों घनिष्ठ मित्र हैं| श्रमणा उन्हें काका कह कर सम्बोधित करती थीं अतः जाते ही आचार्य शबरी ने पुजारी सिंघम के चरण स्पर्श कर काका कह उन्हें गले से लगा लिया| पुजारी सिंघम की तो यह कल्पना से भी परे था कि आचार्य शबरी जो अब आर्यों की भी गुरु हैं, वह एक अनार्य वनवासी के चरण स्पर्श तो दूर उसकी छाया के भी समीप आएंगी| उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे| भावुक हो कर बोले, 'पुत्री तेरे आने से मेरी कुटिया पवित्र हो गई| तू अपने काका को नहीं भूली, यह जान कर मुझे अत्यंत प्रसनता हो रही है| मेरा आशीर्वाद है कि वनदेव तुझ पर सदैव प्रसन्न रहें तथा तेरी ख्याति दिन प्रतिदिन बढे|'

तुरंत अपनी पत्नी को पुकारा, 'देखो तो भाग्यवान, कौन आया है?'

पुजारिन ने विस्मय नेत्रों से आचार्य शबरी को देखा| तभी आचार्य शबरी ने तुरंत आगे बढ़ काकी के चरण स्पर्श किए| जैसे बिछुड़े हुए दो परिवार एक समय के बाद मिल भावुक हो मिलते हैं, बस वही दृश्य यहां प्रतीत हो रहा था|

तुरंत काकी ने जल पान का प्रबंध किया और सब लोग बैठ कर पुरानी स्मृतिओं को नूतन करने लगे| अकस्मात् आचार्य शबरी बोलीं, 'काका, मैंने अब आश्रम छोड़ने का निश्चय कर लिया है| मैं अपने पिता एवं पूर्वजों की सभ्यता में विलीन हो अपने समुदाय की सेवा करना चाहती हूँ| मैंने पिताश्री से अनुरोध किया है कि समाज के ही मध्य मेरी कुटिया बना दें| अब ब्रह्मचारिणी व्रत लेने के कारण गृहस्थ में तो नहीं रह सकती| पिताजी इस कार्य में जुट गए हैं| इस को कार्यान्वित करने के लिए चूँकि आप वनवासियों के पुरोहित एवं मान्य हैं, अतः आपकी आज्ञा आवश्यक है| मैं आपकी आज्ञा ही लेने आई हूँ| इसके अतिरिक्त मेरा एक और अनुरोध है| मैं वनदेव की पूजा इत्यादि नियमों से अनभिज्ञ हूँ| आप मुझे अपनी शिष्या स्वीकार कर क्या इसकी शिक्षा देंगे ताकि मैं समाज की पूरी रीति रिवाजों के साथ सेवा कर सकूं?'

पुरोहित सिंघम कृत्यज्ञ हो गए और बोले, 'पुत्री, भील सरदार शबर सेन की पुत्री होने से यह तुम्हारा अधिकार है कि तुम वनदेव की स्तुति के रीति रिवाजों को जानो| मुझे यह शिक्षा देने में तुम्हें अत्यंत प्रसन्नता होगी| तुमने तो मेरा बोझ ही हल्का कर दिया| अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ| पता नहीं किस दिन मृत्यु का बुलावा आ जाए| बहुत दिनों से इस पर विचार कर रहा था कि इस प्रथा का उत्तराधिकार मैं किसको दूँ? लेकिन वन समाज में मुझे इसके प्रति योग्य कोई पुरुष अथवा नारी दृष्टिगोचर ही नहीं हो रही थी| अब मैं आश्वस्त हो गया कि एक समर्थ और योग्य समाजी को मैं यह ज्ञान दे सकूंगा|'

पुरोहित सिंघम को इस प्रकार अपने विश्वास में लेकर एवं उनसे आश्रम की स्थापना में आशीर्वाद लेकर तथा उनसे वनदेव की स्तुति विधि सीखने का वचन लेकर, आचार्य शबरी और आचार्य मंगला आश्रम लौट आए|

एक सप्ताह बाद अपने कुछ साथिओं सहित शबर सेन मतंग ऋषि के आश्रम लौटे और उन्होंने महर्षि एवं आचार्य शबरी से मिल कर उनके नए आवास की व्यवस्था के बारे में बताया| पम्पा सरोवर के ही तट पर एक सुरक्षित स्थान की स्वच्छता कर वहां एक अति सुन्दर आश्रम का निर्माण कर दिया गया था| नए आश्रम में दस कुटियों का निर्माण किया गया था जिसमें एक अति सुन्दर कुटी सरोवर तट के समीप आचार्य शबरी के लिए विशेष रूप से सभी सुविधाओं से युक्त बनाई गए थी|

पिता शबर सेन को हृदय से लगाकर आभार व्यक्त करते हुए आचार्य शबरी ने महर्षि मतंग से आज्ञा ली और अपने नए आश्रम की ओर प्रस्थान किया| कुटी स्थल की सुंदरता ने उन्हें अति आकर्षित किया| स्वच्छ जल, सरोवर के किनारे सुगन्धित रंग बिरंगे पुष्पों से लदी झाड़ियाँ एवं ऊंचे ऊंचे वृक्षों ने उनका मन मोह लिया| कुछ समय के लिए तो आचार्य शबरी साधना में कहीं खो गईं| जब जाग्रत अवस्था में आईं तो उन्होंने अपने आश्रम का निरीक्षण किया| पम्पा सरोवर की ओर मुख किए कुटी में अपना निवास बनाया| शेष कुटियों में चिकित्साला एवं सेवक/ सेविकाओं के निवास की उपयुक्त व्यवस्था की गई|

पुरोहित सिंघम के निर्देशन में शीघ्र ही वनदेव की स्तुति एवं उनको प्रसन्न करने हेतु एक बड़े उत्सव की तैयारी आचार्य शबरी के आश्रम में प्रारम्भ हुई| उत्सव का दिन आया तो वनदेव की मूर्ति की स्थापना एक ऊंचे स्थल पर कर उनकी स्तुति ढोल मंजीरों की ध्वनि के साथ वनवासियों की भाषा में ही अग्नि को प्रज्वलित कर की गई| गौ माता के घी से आहुति दे कुछ कुछ आर्य संस्कृति की छवि भी इस उत्सव में दिखाई दी| बलि की प्रथा पर तो शबर सेन ने पहले ही से प्रतिबन्ध लगा रखा था, अतः इस उत्सव को बिना बलि के मनाया गया| स्तुति समाप्त होने के बाद भील कन्याओं ने नृत्य किया जिसमें आचार्य शबरी ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया| महर्षि भारद्वाज आश्रम की उपकुलपति कुर्तकी जो संभवतः हंसना तो छोड़ो एक लम्बे समय से मुस्कुराईं भी नहीं थीं, आज वह बालिका स्वरुप मस्ती में खो गईं| उन्हें लद्दाख का अपना वह बचपन याद आ गया जब वह हिमालय की झीलों में इसी प्रकार मस्ती से तितिलीयों के पीछे भागा करती थीं|

उत्सव के समापन पर सभी ने आचार्य शबरी का हृदय से स्वागत किया| वृहद भोज के बाद अपनी शुभ कामनाएं अर्पित करते हए सभी अपने अपने गृह चले गए| आचार्य शबरी को इस उत्सव में भील समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तिओं से मिलने एवं उनसे मित्रता करने का अवसर मिला|

पूरे दिन की थकी आचार्य शबरी रात्रि का पहला पहर होते ही अपने कक्ष में सोने चलीं गईं| बिस्तर पर लेटे हुई अब दूसरे दिन की योजना बनाने लगीं| असुरों के मुख्य गुप्तचर मारीचि से मित्रता करने की योजना बनाते बनाते निन्द्रादेवी के आगोश में चली गईं|

महर्षि श्रंगी आचार्य श्रमणा को लेकर महर्षि भारद्वाज के आश्रम प्रयागराज पहुंचे| आश्रम की अद्भुत सुंदरता और गंगा माँ की कलकल बहती पवित्र धाराओं ने आचार्य श्रमणा का हृदय मोह लिया| महर्षि भारद्वाज एवं ऋषि-पत्नी सुशीला स्वयं आश्रम के द्वार पर उनका स्वागत करने आए| रथ से उतर कर तुरंत सर्व प्रथम आचार्य श्रमणा ने महर्षि भारद्वाज एवं गुरु माँ सुशीला के चरण स्पर्श कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया, तद्पश्चात दोनों महर्षि, महर्षि भारद्वाज एवं महर्षि श्रंगी, आलिंगन कर एक दूसरे से मिले| महर्षि श्रंगी ने महर्षि भारद्वाज को संकेत से अभियान के सफल होने की सूचना दी|

महर्षि भारद्वाज महर्षि श्रंगी को तब विशेष अतिथि कक्ष में ले गए और लम्बी यात्रा के कारण थकावट होने से उन्हें गंगा मैया में स्नान एवं भोजन कर विश्राम करने की प्रार्थना की| आचार्य श्रमणा को गुरु माँ सुशीला अपने साथ अपनी कुटिया में ले गईं|

अगले दिन प्रातः ही महर्षि भारद्वाज ने गुरुकुल के सभी विभागों के अध्यक्षों की सभा बुलाई| सबको सम्बोधित कर महर्षि भारद्वाज बोले, 'प्रिय आचार्यो, उपकुलपति आचार्य कुर्तकी ने मुझ से निवेदन किया है कि वह अपना अधिक से अधिक समय साधना एवं वेद, वेदान्तों के अध्ययन में व्यतीत करना चाहती हैं तथा उपकुलपति पद से मुक्त होना चाहती हैं| महर्षि श्रंगी एवं महर्षि वशिष्ठ से विचार विमर्श के पश्चात मैंने उनके निर्णय का सम्मान करने का निश्चय लिया है| अतः आचार्य गुरु कुर्तकी को मैं उनके उपकुलपति पद से मुक्त करता हूँ| उनके लिए मैंने एक विशेष विभाग 'भक्ति वेद वेदांत अध्ययन शास्त्र' का गठन कर उनसे इस विभाग की अध्यक्षता को स्वीकारने का अवश्य अनुरोध किया है, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया है| उनकी प्रतिभा, क्षमता, भक्ति और ज्ञान को ध्यान में रखते हुए हम तीनों महर्षियों, मैं स्वयं, महर्षि श्रंगी एवं महर्षि वशिष्ठ, ने उन्हें 'महर्षि' पद से अलंकृत करने का निर्णय लिया है| आज से आचार्य गुरु कुर्तकी 'महर्षि कुर्तकी' के नाम से सम्बोधित की जाएँगी| उनकी साधना में कोई विघ्न न हो, ऐसा हम सबका कर्तव्य है| महर्षि गौतम के सुपुत्र आचार्य सतानंद जी ब्रह्मऋषि विश्वामित्र के आश्रम से अपनी शिक्षा पूर्ण कर ब्रह्मपुत्र महर्षि याज्ञवल्कय जी की सेवा में जनकपुर जाने वाले थे| ब्रह्मपुत्र महर्षि याज्ञवल्कय जी से मैंने अनुरोध किया था कि कुछ वर्षों के लिए आचार्य सतानंद जी को प्रयागराज भेजकर हमारे गुरुकुल के उपकुलपति के भार को सम्हालने के लिए वह अनुमति दें| उन्होंने स्वीकृति दे दी है| मेरा आप सब से अनुरोध है कि आचार्य सतानंद जी के आने

पर उनका भव्य स्वागत किया जाए और उनके निर्देशों का पालन करते हुए इस गुरुकुल को संचालित किया जाए|

'साधुवाद, साधुवाद| हमारे अहोभाग्य कि महर्षि गौतम के सुपुत्र आचार्य सतानंद हमारा मार्ग निर्देश करेंगे| महर्षि कुर्तकी को हमारा विनम्र अभिनंदन', सभी ने एक स्वर से महर्षि भारद्वाज के इन शब्दों का करतल ध्वनि के साथ स्वागत किया|

मारीचि से मित्रता

सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का एवं सुन्द का पुत्र मारीचि लंकाधीश रावण का प्रतिनिधित्व करते हुए रावण द्वारा विजय प्राप्त किए अरण्य वन के एक भाग का प्रशासक था| उसकी राजधानी अरण्य वन में स्थित एक नगर अभ्यारण्य थी जो आचार्य शबरी के आश्रम से कुछ कोसों की दूरी पर ही स्थित थी| एक दूर के रिश्ते से वह लंकापति रावण का मामा भी लगता था| उसके पराक्रम और छल निपुणता से प्रभावित हो लंकाधीश ने अरण्य वन के इस भाग को वहां के एक वनवासी समुदाय से युद्ध में जीतकर मारीचि को वहां का नियंत्रक बना दिया था| अरण्य वन के अन्य शासक और वनवासी भील समुदाय नियंत्रण में रहें तथा लंकापति रावण के विरुद्ध कोई षड़यंत्र न करें, इसका उत्तरदायित्व उसी पर था| जहां भी कोई लंकापति रावण के विरुद्ध स्वर उठाने का प्रयास करता, उसको तुरंत दबा दिया जाता| वह एक अत्यंत निपुण गुप्तचर था| अयोध्या के शासन को उस से कोई सीधी आपत्ति तो नहीं थी लेकिन उसके अनुयायी अयोध्या राज्य से सरंक्षित ऋषि, मुनिओं के आश्रम में घुस कर उत्पात मचाते रहते थे| अतः उस पर और उसके अनुयाईओं पर दृष्टि रखना अयोध्या शासन के लिए अति आवश्यक था|

मारीचि बचपन से उपद्रवी स्वभाव का तो अवश्य था लेकिन राक्षस प्रवर्ति का नहीं था| अपने उपद्रवों से वह ऋषि, मुनियों को अकारण कष्ट दिया करता था| इससे दुःखी होकर एक दिन महर्षि अगस्त्य ने उसे 'असाधु प्रकृति के व्यक्ति' नाम से सम्बोधित कर दिया| इस सम्बोधन से अत्यंत दुःखित हो कर वह लंकाधीश रावण के पिता महर्षि पुलस्त्य के पास श्राप मुक्त होने की आशा लेकर गया| उसकी भक्तिपूर्ण विनती से महर्षि पुलस्त्य द्रवित हो गए तथा उन्होंने उसको 'श्राप मुक्ति तो असंभव है, लेकिन मैं तुझे स्वयं हरि के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वरदान देता हूँ', यह कहकर उसको वापस भेज दिया|

लंकापति रावण के इस अभ्यारण्य प्रशासक मारीचि को आर्य धर्म और संस्था में अत्यंत श्रद्धा थी| वह अपना आध्यात्मिक गुरु किसी आर्य आचार्य को ही बनाना चाहता था, लेकिन कोई आर्य गुरु इस महर्षि अगस्त्य से श्रापित मारीचि का आध्यात्मिक गुरु बनाना स्वीकार नहीं करता था| क्रोध में उसके इस विनय को

ठुकराने पर उसने कई आर्य आचार्यों की हत्या तक कर दी थी| आचार्य शबरी उसकी इस अभिलाषा का लाभ उठाकर उससे मित्रता करने की योजना बनाने लगीं|

अगले दिन प्रातः आचार्य शबरी ने अपने एक सेवक को मारीचि की राजधानी अभ्यारण्य भेज उससे मिलने का समय माँगा| तब तक मारीचि को उसके गुप्तचरों द्वारा आचार्य श्रमणा का महर्षि मतंग के आश्रम को त्याग कर अपना स्वयं का स्वतंत्र आश्रम आचार्य शबरी नाम से स्थापित करने का समाचार मिल चुका था| वह स्वयं भी महर्षि मतंग का आश्रम त्याग कर आचार्य शबरी के स्वतंत्र आश्रम की स्थापना का कारण जानने के लिए आचार्य शबरी से मिलने को अत्यंत उत्सुक था| अतः जैसे ही यह समाचार उसे मिला कि आचार्य शबरी उससे मिलना चाहतीं हैं, वह स्वयं आचार्य शबरी से मिलने उनके आश्रम चल दिया|

आचार्य शबरी ने अपने पिता आयु समान मारीचि को अपने आश्रम आते देख उनका अभिनन्दन कर भव्य स्वागत किया| पवित्र पम्पा सरोवर में स्नान से यात्रा की थकावट दूर कर एवं भोजन के पश्चात प्रशासक मारीचि और आचार्य शबरी में वार्ता होने लगी| आचार्य शबरी ने अपना स्वतंत्र आश्रम स्थापित करने का कारण उनकी वनवासी समाज के प्रति सेवा भाव बताया जो आर्य आश्रम में रहते हुए संभव नहीं था| उन्होंने अपनी सेवाओं को मारीचि एवं उसके अनुयाईओं के लिए भी अर्पित कर इस आश्रम को उसके आशीर्वाद एवं उसके सरंक्षण में लेने की इच्छा प्रस्तुत की| आचार्य शबरी ने यह भी बताया कि आचार्य मंगला जो उनकी घनिष्ठ मित्र हैं एवं आयुर्वेद विज्ञान विशेषज्ञ हैं, उन्होंने उनके आश्रम में एक चिकित्सालय खोलने के उनके अभिप्राय का समर्थन किया है और वह शीघ्र ही यहां चिकित्सालय खोलेंगी| उनके चिकित्सालय का भी मारीचि के समुदाय को लाभ मिल सकता है|

मारीचि को तो जैसे मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई| एक अनार्य भील पुत्री का शुद्धिकरण द्वारा आर्य वंश में स्वीकृत होना एवं आचार्य पद प्राप्त कर अब उसके सरंक्षण में आने की प्रार्थना से जैसे उसका तो स्वप्न ही सत्य हो गया|

मारीचि बोला, 'पुत्री, मेरा तुम्हारे पिता शबर सेन से कभी कोई विरोध नहीं रहा| मैं सदैव उनको अपने बड़े भाई के समान ही सम्मान देता रहा हूँ| उनकी पुत्री आचार्य शबरी अब मेरा सरंक्षण मांग रही है, यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है| मैं इसे हृदय

से स्वीकार करता हूँ| बस, मेरी एक शर्त है पुत्री| इसके बदले तुम्हें मेरे और मेरे समुदाय का आध्यात्मिक गुरु पद स्वीकार कर यथोचित आर्य संस्कारों द्वारा उनका मार्ग निर्देशन करना होगा|

'अवश्य चाचा श्री मारीचि, क्यों नहीं? मैंने तो अपनी शिक्षा ही भील समुदाय एवं समस्त हितीय समुदायों के उत्थान के लिए ही ली है,' सहर्ष आचार्य शबरी बोलीं|

इस प्रकार मित्रता कर एवं आचार्य शबरी को अपने कुल का आध्यात्मिक गुरु बना कर मारीचि अपनी राजधानी लौट गया| उसने यथोचित इस सन्देश की अपने समुदाय में घोषणा कर दी|

समय बीतता चला गया| अब आचार्य मंगला स्थायी रूप से आचार्य शबरी के आश्रम में ही रहने लगीं| आचार्य शबरी एवं आचार्य मंगला के निर्देशन में धीरे धीरे समस्त अरण्य वन में दस से भी अधिक चिकित्सालय खोल दिए गए| इन चिकित्सालयों के निर्माण और प्रबंधन में आर्थिक सहायता की कभी कमी अनुभव नहीं हुई| अयोध्या एवं मारीचि के अभ्यारण्य राज्य से मन चाही धन राशि आने लगी| इन चिकित्सालयों के माध्यम के साथ साथ आचार्य शबरी एवं मारीचि के आध्यात्मिक संबंधों ने आचार्य शबरी की गुप्तचर व्यवस्था को अत्यंत सुदृढ़ बना दिया| मारीचि और उसके सहयोगियों का एक एक समाचार आचार्य शबरी और आचार्य मंगला को मिलने लगा| आचार्य मंगला प्रत्येक समाचार को महर्षि मतंग के आश्रम में आचार्य जगदमूर्ति को पहुंचाती रहीं| अयोध्या की सेना अब किसी भी प्रतिरोध का सामना करने को तत्पर थी| शनैः शनैः राक्षस प्रवृति के लोगों का विनाश होने लगा| यह कार्य चूँकि धीरे धीरे एक सुनियोजित योजना के अंतर्गत हुआ, अतः इसका भान मारीचि अथवा उसके सहयोगियों को बिलकुल नहीं लग पाया| इस प्रकार तेरह वर्ष बीत गए| अब अरण्य वन में पूर्ण शांति थी|

एक दिन अचानक मारीचि का आचार्य शबरी के आश्रम में आना हुआ| आना अचानक था और गुप्त रखा गया था इसलिए आचार्य शबरी को इसका कोई अनुमान नहीं था| मारीचि कुछ चिंतित लग रहे थे| आचार्य शबरी ने उनका अभिननंदन कर जल पान भेंट किया और विनम्रता से बोलीं, 'चाचाश्री मारीचि, आपने आने का कष्ट क्यों किया? मुझे संदेशा भिजवा दिया होता, मैं स्वयं आपके दरबार में उपस्थित होती|'

बड़े अनमने मन से मारीचि बोले,' पुत्री, माँ ताड़का का सुन्दर वन से संदेशा आया है| मुझे शीघ्र अति शीघ्र बुलाया है| संभवतः तुम नहीं जानतीं कि मेरी माँ ताड़का मेरे छोटे भाई सुबाहु के साथ सुन्दर वन में रहतीं हैं| जैसा मुझे पत्र से पता लगा है कि सुबाहु ने अपने कुछ मित्रों के साथ मदिरा पान कर महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में अत्यंत तोड़ फोड़ कर दी| महर्षि विश्वामित्र ने उसके साथिओं को तो वहीं मार डाला लेकिन वह स्वयं किसी प्रकार बच कर माँ के पास पहुँच गया| माँ ने क्रोध में सुबाहु के साथ एक विशाल सेना लेकर महर्षि विश्वामित्र के आश्रम पर हमला बोल दिया| मूर्खों को क्रोध में यह भी भान नहीं हुआ कि महर्षि विश्वामित्र को स्वयं ब्रह्मा ने दिव्य अस्त्र दे रखे हैं| उनसे कौन जीत सकता है? महर्षि विश्वामित्र ने उनकी सभी सेना को मार दिया लेकिन मेरी माँ और सुबाहु ब्रह्मा के वर के कारण कि केवल श्री हरि ही उन्हें मृत्यु दे सकते हैं, बच गए| महर्षि विश्वामित्र अब मेरी माँ एवं सुबाहु को मारने के लिए अयोध्या सम्राट दशरथ के पुत्र राम को लेने गए हुए हैं| महर्षि पुलस्त्य के पास मैंने यह संदेशा उनके निर्देश हेतु भिजवाया था| उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में सन्देश दिया है कि सम्राट दशरथ के पुत्र राजकुमार राम कोई और नहीं, परन्तु श्री विष्णु के स्वयं अवतार हैं अतः उनके विरुद्ध कोई युद्ध न करो| इसी मध्य माँ ने लंकाधीश को भी महर्षि विश्वामित्र से वैरता का यह समाचार भेज दिया और निवेदन किया कि मुझे तुरंत आदेश देकर सुन्दर वन महर्षि विश्वामित्र एवं उनके साथ आने वाले राजकुमार को मृत्यु दंड देने के लिए भेजा जाए| लंकाधीश रावण सेना के इस प्रकार विनाश से दुःखी है और उसने भी मुझे पर्याप्त सेना के साथ तुरंत सुन्दर वन जाने और महर्षि विश्वामित्र को युद्ध के लिए ललकारने का आदेश दिया है| मैं जानता हूँ कि ऐसा करना काल का मुख देखना है| लेकिन मैं विवश हूँ| मुझे शीघ्र जाना पड़ेगा| यही सन्देश देने मैं तुम्हारे पास स्वयं आया हूँ| संभवतः यह हमारा अंतिम मिलन हो|'

शांत स्वर में आचार्य शबरी बोलीं, 'चाचाश्री मारीचि, जहाँ तक मैंने श्री हरि के बारे में सुन रखा है, वह अत्यंत कृपालु हैं तथा हृदय के भाव समझते हैं| आपका हृदय उनसे युद्ध के विरुद्ध है, वह अवश्य ही यह जानते होंगे| आप जाईए, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप के जीवन की क्षति नहीं होगी|'

'तुम्हारे वचन सत्य हों, पुत्री| यदि ऐसा हुआ तो फिर मिलन होगा', यह कहकर मारीचि चले गए|

अपनी समस्त सेना लेकर मारीचि ने तब सुन्दर वन को प्रस्थान किया| सुन्दर वन पहुँच कर उसने माँ ताड़का एवं भाई सुबाहु को समझाने का प्रयास किया| महर्षि पुलस्त्य का सन्देश भी बताया| लेकिन माँ ताड़का और सुबाहु को तो क्रोध में बस महर्षि विश्वामित्र से बदला लेने के अतिरिक्त कुछ और सूझ ही नहीं रहा था| मारीचि के सभी समझाने के प्रयास असफल हुए और युद्ध सुनिश्चित लगा|

अगले दिन अपनी सेना के साथ माँ ताड़का और सुबाहु को ले कर मारीचि युद्ध के लिए महर्षि विश्वामित्र के आश्रम पहुँच गया| उसने वहां अति सुन्दर दो क्षत्रिय कुमारों को महर्षि विश्वामित्र के आश्रम की रक्षा हेतु पहरा देते हुए देखा| इतने सुन्दर राजकुमारों की हत्या? नहीं, नहीं, यह राजकुमार मारने के योग्य नहीं हैं, उसके हृदय में फिर यह विचार आया| वह यह सब सोच ही रहा था कि पीछे से माँ ताड़का और सुबाहु ने 'आक्रमण' शब्द बोल अपनी सेना को इन दोनों राजकुमारों पर हमला बोलने के लिए आदेश दे दिया| घमासान युद्ध होने लगा| देखते देखते इन दोनों राजकुमारों ने पूरी सेना के साथ माँ ताड़का और सुबाहु का वध कर दिया| पता नहीं क्यों मारीचि को प्रभु ने बिना फल का वाण मारा जिससे वह मूर्छित हो अरण्य वन में जा गिरा|

आज प्रातः जब शबर सेन नित्य कर्म कर पम्पा सरोवर स्नान हेतु जाने लगे तो मार्ग में उन्हें किसी व्यक्ति के कराहने के स्वर ने आकर्षित किया| तुरंत वह उस दिशा में गए और देखा कि कोई व्यक्ति घायल अवस्था में कराह रहा है| समीप जाकर देखा और पहचाना, यह तो मारीचि है| तुरंत उन्होंने कुछ वनवासियों को पुकारा और घायल मारीचि को लेकर आचार्य शबरी के आश्रम ले चले| स्वयं आचार्य मंगला ने तब उनकी चिकित्सा प्रारम्भ की| जब उन्हें होश आया तो आचार्य शबरी उनके पास खड़ीं थीं| मुसकुराकर आचार्य शबरी बोलीं, 'मैंने कहा था न चाचाश्री मारीचि, भगवान् हृदय के भाव को समझते हैं| वह अवश्य ही तुम्हारे प्राण नहीं लेंगे|'

मारीचि ने तब संकेत से आचार्य शबरी का अभिनंदन किया| पूर्णतः स्वस्थ होने में कुछ सप्ताह लगे| इसी बीच मारीचि ने पूरी कहानी सुनाई कि किस प्रकार उन दो राजकुमारों ने समस्त सेना, माँ ताड़का और भाई सुबाहु का तो वध कर दिया परन्तु उसको बिना फल का वाण मार जीवित अरण्य वन पहुंचा दिया| अद्भुत, अद्भुत! कितने बलशाली हैं यह दो अत्यंत सुन्दर राजकुमार| अवश्य ही भगवान् के अवतार

होंगे| आचार्य शबरी को कृतज्ञता दर्शा कर स्वस्थ होकर मारीचि अपनी राजधानी चले गए|

इन वर्षों में आचार्य शबरी समस्त वनवासियों और मारीचि एवं उनके अनुयायिओं की आध्यात्मिक गुरु बन चुकी थी| उन्हें 'महात्मा शबरी' के नाम से सम्बोद्धित किया जाने लगा था|

अत्यंत शान्ति पूर्वक समय बीतता चला गया| महात्मा शबरी अपने उद्देश्य में पूरी प्रकार सफल थीं| अब तो बस उनको एक ही रट थी, 'हे मेरे राम, मुझे कब मिलोगे?' एक दिन प्रातः वह ध्यान से उठीं ही थीं कि 'नारायण, नारायण' के स्वर ने उन्हें आकर्षित किया| तुरंत उठकर कुटिया के द्वार की ओर भागीं| उन्होंने देखा कि स्वयं ब्रह्मऋषि नारद उनकी कुटिया के आगे भगवान् का गुणगान करते हुए वीणा बजा रहें हैं| तुरंत ब्रह्मऋषि का दंडवत चरण स्पर्श किया और उन्हें कुटिया में लाकर उनके चरण जल से धोए और जल पान कराया|

ब्रह्मऋषि नारद से मिलन

महात्मा शबरी को सदैव से ही ब्रह्मऋषि नारद का चरित्र अति आकर्षित करता रहा था| एक अनपढ़ दासी के गर्भ से उत्पन्न होने के बाद भी उन्होंने ब्रह्मत्व पद को प्राप्त किया और स्वयं अगले जन्म में ब्रह्मदेव ने उन्हें अपना पुत्र स्वीकार कर सम्मान दिया, यह विलक्षणता केवल और केवल ब्रह्मऋषि के चरित्र में ही हो सकती है| ब्रह्मऋषि नारद महात्मा शबरी को वीणा के मधुर वादन के साथ श्री हरि की महिमा सुनाते रहे और महात्मा शबरी ब्रह्मऋषि के अतीत में खो गईं|

उन्हें पिताश्री महर्षि कुर्तुक द्वारा ब्रह्मऋषि नारद के जन्म की कथा स्मरण आ गई| पूर्व जन्म में नारद 'उपबर्हण' नाम के एक गंधर्व थे| उन्हें अपने रूप पर बड़ा अभिमान था| एक बार जब ब्रह्मा की सेवा में अप्सराएं और गंधर्व गीत और नृत्य से उनकी आराधना कर रहे थे तब उपबर्हण स्त्रियों के साथ शृंगार भाव से वहां आए| उपबर्हण का यह अशिष्ट आचरण देख ब्रह्मा जी कुपित हो गए और उन्होंने उन्हें श्रमण योनि में जन्म लेने का श्राप दे दिया| श्राप के फलस्वरूप वह एक अनपढ़ दासी के पुत्र हुए| इनकी माता एक अनपढ़ दासी अवश्य थीं लेकिन उनकी संतों के चरणों में अति प्रीति थी| वह अपने पुत्र के साथ साधु, संतों की निष्ठा से सेवा करती थीं| बालक संतों की वाणी सुनता था और उनसे आशीर्वाद लेता था| धीरे धीरे संतों के आशीर्वाद से उसके हृदय के सभी पाप धुल गए| बच्चे के भावों से प्रभावित हो साधुओं ने उसे भगवान् का नाम जाप और ध्यान का उपदेश दिया| अभाग्यवश उसकी माता की सर्प दंश से मृत्यु हो गई| अब नारद जी इस संसार में अकेले रह गए| उस समय इनकी अवस्था मात्र पांच वर्ष की थी| माता के वियोग को भी भगवान का परम अनुग्रह मानकर वह अनाथों के नाथ दीनानाथ की तपस्या करने निकल पड़े| एक दिन वह बालक एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठा था कि उसके हृदय में भगवान की एक झलक प्रकाश की भांति दिखाई दी जो तत्काल अदृश्य भी हो गई| उसके मन में भगवान के दर्शन की व्याकुलता बढ़ गई जिसे देख कर आकाशवाणी हुई, 'हे पुत्र, अब इस जन्म में फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा| अगले जन्म में तुम मेरे पार्षद के रूप में मुझे पुनः प्राप्त करोगे|'

समय आने पर नारद जी का पंचभौतिक शरीर छूट गया और कल्प के अंत में वह ब्रह्मा जी के मानस पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए|

ब्रह्मदेव के मानस पुत्र रूप में उन्होंने त्रिमूर्ति, विष्णु, ब्रह्मा और महेश, से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया था| वह श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, व्याकरण, वेदांग, संगीत, खगोल, भूगोल, ज्योतिष, योग आदि अनेक शास्त्रों में पारंगत थे| ब्रह्मऋषि नारद आत्मज्ञानी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, त्रिकाल ज्ञानी, वीणा द्वारा निरंतर प्रभु भक्ति के प्रचारक, दक्ष, मेधावी, निर्भय, विनयशील, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, स्थित प्रज्ञ, तपस्वी, चारों पुरुषार्थ के ज्ञाता, परम योगी, सूर्य के समान त्रिलोकी पर्यटक, वायु के समान सभी युगों, समाजों और लोकों में विचरण करने वाले, वश में किए हुए मन वाले नीतिज्ञ, अप्रमादी, आनंदरत, कवि, प्राणियों पर निःस्वार्थ प्रीति रखने वाले, देव, मनुष्य, राक्षस सभी लोकों में सम्मान पाने वाले देवता तथापि ब्रह्मत्व प्राप्त ब्रह्मऋषि थे|

महात्मा शबरी को महर्षि वशिष्ठ द्वारा बताए हुए अपने पूर्व जन्म की स्मृति भी आ गई जब उनके पिता की मृत्यु पर वह आत्म हत्या करनी चाहती थीं, लेकिन ब्रह्मऋषि ने उन्हें इस महापाप से बचाया और भगवान् विष्णु के दर्शन भी कराए|

इतने महान व्यक्तित्व ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मऋषि स्वयं मेरे द्वार मुझे अनुग्रहीत करने आए हैं, यह सोचकर महात्मा शबरी का हृदय अत्यंत प्रफ्फुलित हो रहा था|

‘किस पुनर्जन्म के विचार में खो गईं पुत्री? जागो| मैं तम्हें श्री राम का संदेशा देने आया हूँ,’ ब्रह्मऋषि नारद बोले|

श्री राम का संदेशा, मेरे प्रभु के स्मरण में मैं हूँ, इन अमृत समान शब्दों के सुनते ही महात्मा शबरी की तंद्रा भंग हुई|

‘क्या आज्ञा है प्रभु की मेरे लिए ब्रह्मऋषि?’ बड़ी उत्सुकता से महात्मा शबरी ने पूछा|

'पुत्री, ताड़का और सुबाहु के वध की कथा तो मैं जानता हूँ तुम्हें मारीचि ने सुनाई ही दी है| तदुपरांत श्री राम ने अपनी चरण रज से महर्षि गौतम के आश्रम में ऋषि-पत्नी अहिल्या का उद्धार किया| उसके बाद महर्षि विश्वामित्र के साथ दोनों राजकुमार श्री राम और श्री लक्ष्मण ने जनकपुरी में आयोजित सीता के स्वयंवर में भाग लिया| श्री राम ने भगवान् शिव शंकर के धनुष को तोड़कर सीता जी के साथ विवाह कर लिया और वह अयोध्या आ गए| श्री राम को सम्राट दशरथ युवराज घोषित करना चाहते ही

थे कि श्री राम की इच्छानुसार माता कैकई ने उनसे अपने दो वचन, पुत्र भरत को अयोध्या का साम्राज्य और श्री राम को १४ वर्ष का वनवास, मांग लिया| अपने अवतार के कारण हेतु अब वह वनवास को प्रस्थान कर गए हैं जहाँ राक्षसों को मुक्ति दे इस धरा को पापियों से रहित करेंगे| उनके अरण्य वनवास के समय तुम्हें उनके दर्शन होंगे और तब वह तुम्हें नव-विधा-भक्ति का ज्ञान दे तुम्हें साकेत धाम की यात्रा का मार्ग बताएंगे| उस से पहले पुत्री, दो मुख्य कार्य तुम्हें करने हैं| पहला तो पुत्री, एक भ्रम के कारण तारा को उसके पति बाली के मरने का असत्य उद्बोध हो गया है और वह सती होना चाहती हैं| उन्हें समझा बुझा कर सती होने से बचाना है क्योंकि बाली जीवित है| दूसरा महर्षि मतंग अब इस शरीर को छोड़ विष्णुलोक धाम को विदा लेना चाहते हैं| मुझे यहां से शीघ्र ही महर्षि मतंग के आश्रम जाना है जहाँ मैं तुम्हारी बालीधाम से आने की प्रतीक्षा करूंगा| तुम्हारे संचालन में वहां एक यज्ञ का अनुष्ठान करना है जिसके बाद महर्षि मतंग पम्पा सरोवर में जल समाधि ले लेंगे| उनके जल समाधि लेने के बाद उनका अंतिम संस्कार करना है, पुत्री', ब्रह्मऋषि बोले|

'क्या? महर्षि मतंग अब शरीर छोड़ विष्णुलोक जाना चाहते हैं! बड़े आश्चर्य से महात्मा शबरी बोलीं|

'मेरे वह पिता तुल्य हैं| अवश्य ही मैं आपके साथ उनके समाधि से पूर्व यज्ञ का संचालन करूंगी और आप के द्वारा हम सभी ज्ञान प्राप्त करेंगे| लेकिन तारा को अपने पति बाली के मरने का भ्रम कैसे हो गया जब कि वह जीवित हैं? यह कथा मुझे विस्तार पूर्वक कहिए,' महात्मा शबरी बोलीं|

'पुत्री, संक्षेप में मैं यह कथा तुम्हें बतलाता हूँ| दुन्दभी राक्षस का बाली ने वध कर दिया था| इस बात से क्रोधित हो कर उसके भाई मायावी ने बाली को युद्ध में ललकारा| बाली और मायावी युद्ध करते करते पर्वत की एक कंदरा के समीप पहुँच गए| मायावी उस कंदरा में घुस गया| बाली के साथ उसका भ्राता सुग्रीव भी इस युद्ध में था| मायावी का कंदरा में पीछा करने से पहले बाली ने सुग्रीव से कहा कि तुम यहीं गुफा के द्वार पर रुक कर मेरी प्रतीक्षा करो| मैं इस दैत्य को मारकर शीघ्र ही आता हूं| लेकिन कई सप्ताह बीतने पर भी जब बाली कंदरा से बाहर नहीं निकला तो सुग्रीव बैचेन हो गया| बाली ने मायावी का वध तो कर दिया परन्तु मरने से पहले उस मायावी ने बाली के स्वर में घोर चीत्कार किया| बाली के स्वर के चीखने का स्वर एवं कंदरा से बाहर आते

रक्त को देख सुग्रीव यह समझ बैठा कि मायावी ने उसके भ्राता बाली का वध कर दिया है| अब वह मुझे भी मार डालेगा, इस भय से उसने एक बड़े पत्थर से उस गुफा को बंद कर दिया और वहां से चला आया| उस अज्ञानी को यह नहीं पता था कि उसका भाई बाली जीवित है| उसने मायावी का वध कर दिया है| भगवान् की लीला को गुप्त रखते हुए इस समय तुम्हें बस तारा को सती होने से बचाना है| तुम प्रभु श्री राम के आदेश का पालन करते हुए तुरंत बाली की राजधानी बालीग्राम की ओर प्रस्थान करो और तारा को समझाओ| मैं तुम्हारी महर्षि मतंग के आश्रम में प्रतीक्षा करूंगा,' ब्रह्मऋषि नारद बोले|

ब्रह्मऋषि का आदेश मान महात्मा शबरी ने तुरंत बालीग्राम को प्रस्थान किया| ब्रह्मऋषि नारद भी तब महर्षि मतंग के आश्रम की ओर चल दिए| मार्ग में महात्मा शबरी की एक वृद्ध गिद्ध से भेंट हो गई| उनका भयानक स्वरूप देख कर एक बार तो महात्मा शबरी डर गईं, फिर हृदय में साहस कर वह उन के समीप पहुँच करबद्ध अपना परिचय देती हुई बोलीं, 'हे महान बलशाली वृद्ध गिद्ध, मैं शबर सेन पुत्री, महर्षि मतंग शिष्या, आपको प्रणाम करती हूँ| आप भी अपना परिचय मुझे दें|'

तब वृद्ध गिद्धराज बोले, 'हे श्री राम भक्त महात्मा शबरी, तुझे अपना परिचय देने की आवश्यक्ता नहीं| मैं तुझे भली भाँति जानता हूँ| मेरा नाम गिद्धिराज जटायु है| मैं समुद्र तट पर रहने वाले गिद्धराज सम्पाती का भाई हूँ| मैं अवध नरेश चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का धर्म भ्राता हूँ| इस कारण श्री राम और उनके अन्य तीनों भाई, श्री भरत, श्री लक्ष्मण एवं श्री शत्रुघ्न, मेरे धर्म पुत्र हैं| एक बार चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का शनि देव के साथ युद्ध हो गया था| इस युद्ध में भाग लेने के लिए उन्होंने मुझे आमंत्रित किया| तब मैं अपने पूर्ण यौवन में था| यह युद्ध आकाश में हो रहा था| शनिदेव के वार को चक्रवर्ती सम्राट दशरथ सहन नहीं कर पाए और मुझे लगा कि वह मृत्यु को प्राप्त हुए| मैं उनके शरीर को तुरंत अपने पंख पर बिठाकर भूतल पर ले आया और अपने धर्म भ्राता के खोने पर विलाप करने लगा| तभी वहां 'नारायण, नारायण' पुकारते ब्रह्मऋषि नारद का आना हुआ| मुझे सम्राट दशरथ की मृत्यु पर इस प्रकार विलाप करते देख उन्होंने मुझे शनि देव की स्तुति करने का परामर्श दिया| मैं तब वहीं शुद्ध हृदय से क्षमा माँगते हुए शनिदेव की स्तुति **'ॐ शं शनैश्चराय नमः'** का जाप करने लगा| मेरी तपस्या से प्रसन्न हो शनिदेव प्रगट हुए और कहा, 'पुत्र, तेरे धर्म भ्राता दशरथ को केवल मूर्छा आई है| पास के सरोवर से जल ला इस नीलमणि को इनके मुख पर स्पर्श करते हुए

इनके मुख पर छिड़क, शीघ्र ही इनकी मूर्छा समाप्त हो जाएगी और यह जीवन प्राप्त करेंगे| शनिदेव के आदेशानुसार तब मैंने पम्पा सरोवर से जल लाकर शनिदेव की स्तुति के साथ शनिदेव द्वारा दी हुई नीलमणि को इनके मुख पर स्पर्श करते हुए उनके मुख पर जल छिड़कना प्रारम्भ किया| थोड़ी ही देर में वह मूर्छा से जागे और उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया| उनके मूर्छा से जागने के बाद मैंने जिस प्रकार शनिदेव ने उन्हें जीवन दान दिया, सब वृतांत सुनाया| सम्राट दशरथ के हृदय में तब शनिदेव के प्रति श्रद्धा जागी और उन्होंने भी उनका तप कर उनसे क्षमा माँगी|'

'मेरे धर्म भ्राता सम्राट दशरथ ने साम्राज्ञी कैकई को दो वर, पुत्र भरत को अयोध्या का साम्राज्य और श्री राम को १४ वर्ष का वनवास, तो अवश्य दे दिए लेकिन वह श्री राम का वियोग नहीं सह पाए और स्वर्गवासी हुए| जब मुझे इसका पता लगा तो मैं अपने धर्म भ्राता को अंतिम श्रद्धांजलि देने अयोध्या पहुंचा| अयोध्या लगभग खाली थी| कुछ वृद्ध, महिलाएं एवं शिशु ही मुझे वहां दिखाई दिए| एक गिद्ध से मैंने अयोध्या के इस सूनेपन का हाल जाना| भरत जी को अयोध्या साम्राज्य स्वीकार नहीं था| वह अपने भ्राता श्री राम को मनाने और वापस अयोध्या बुलाने चित्रकूट गए हुए थे और उनके साथ समस्त अयोध्या भी गई हुए थी| पहले तो मैंने सरयू तट पहुँच कर अपने भ्राता सम्राट दशरथ को श्रद्धांजलि अर्पित की और फिर मैं भी चित्रकूट की ओर चल दिया| वहां का अद्भुत दृश्य देख कर मैं हैरान हो गया| भरत श्री राम के चरणों में पड़ कर उनसे अपनी एवं अपनी माता कैकई की ओर से क्षमा याचना कर रहे थे तथा अयोध्या वापस आ राजसिंहासन स्वीकार करने की प्रार्थना कर रहे थे| प्रभु श्री राम ने उन्हें गले से लगाकर आलिंगन किया| उन्होंने प्रेम सहित भ्राता भरत से माता-पिता के आदेशानुसार वन में अवश्य १४ वर्ष का वास करने का दृढ निश्चय प्रस्तुत करते हुए भाई भरत को खड़ाऊँ देकर विदा किया| मैं प्रभु से मिला और तब उन्होंने मुझे बताया था कि वनवास के अंतिम वर्ष में वह अरण्य वन आएंगे और मुझे फिर दर्शन देंगे| तब प्रभु के चरणों में सर नवाकर मैं अपने निवास स्थान अरण्य वन आ गया| मैं यहीं उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ|'

इस प्रकार पिता समान गिद्धराज जटायु से मिल कर, उन्हें प्रणाम कर एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त कर महात्मा शबरी ने बालीग्राम की ओर प्रस्थान किया|

थोड़े ही समय में महात्मा शबरी बालीग्राम पहुँच गईं| उन्होंने देखा कि पूरा नगर दुःख में डूबा हुआ है| बाली की मृत्यु के शोक में बालीग्राम का ध्वज झुका हुआ था| तभी उन्हें आपात काल सभा की घोषणा सूचक बिगुल सुनाई दिया| युवराज सुग्रीव ने सभी वरिष्ठ मंत्रीगणों की आपातकाल सभा बुलाई है| सिंहासन को अधिक समय के लिए रिक्त नहीं रखा जा सकता, अतः यह निश्चय करना है कि अब सिंहासन पर किसे आसीन किया जाए? तभी एक सैनिक द्वारा महात्मा शबरी ने अपने आने का समाचार युवराज सुग्रीव एवं साम्राज्ञी तारा को भिजवाया| समाचार सुन युवराज सुग्रीव नंगे पैरों ही महात्मा शबरी का अभिनंदन एवं स्वागत करने नगर के द्वार की ओर दौड़े| यथोचित चरण स्पर्श द्वारा अभिवादन कर वह महात्मा शबरी को साम्राज्ञी तारा के पास ले आए|

साम्राज्ञी तारा के ऊपर दुःख का पहाड़ ही टूटा पड़ा था| उनके बाल बिखरे हुए थे| उनके लाल नेत्र बता रहे थे कि वह संभवतः कई दिनों से सोई नहीं हैं तथा निरंतर रोती रहीं हैं| महात्मा शबरी ने उन्हें हृदय से लगा लिया| महात्मा शबरी सांत्वना भरे प्रेम शब्द बोलीं, 'प्रिय तारा, वैद्यराज अति ज्ञानी सुषेण की पुत्री एवं स्वयं ब्रह्मज्ञान प्राप्ता होते हुए भी यह तुमने क्या हाल बना रखा है? बाली कंदरा में गए अवश्य थे, और हाँ कंदरा से रक्त बहते हुए भी युवराज सुग्रीव ने देखा अवश्य था, लेकिन उनका शव तो बरामद नहीं हुआ| सम्राट बाली के स्वर में वीभत्स पुकार अवश्य युवराज ने सुनी, लेकिन तुम और मैं भली भांति जानते हैं कि मायावी किसी भी प्रकार के स्वर बनाने में दक्ष है| अतः जब तक बाली का शव नहीं मिल जाता तब तक तुम्हारा यह शोक निरर्थक है और सती हो जाने के लिए तत्पर होना, धर्म विरुद्ध है| मुझे ऐसा विश्वास है कि बाली शीघ्र ही वापस आएंगे| अतः शोक छोड़ इस समय राज्य की उचित व्यवस्था करने का प्रबंध करो और पुत्र अंगद को सम्हालो| सभा जा कर साम्राज्ञी के अधिकार को प्रयोग में लाते हुए जब तक बाली वापस नहीं आ जाते तब तक सुग्रीव का राजसिंहासन तिलक करो और उन्हें राज कार्य करने में मदद करो|'

साम्राज्ञी तारा किंकर्तव्यविमूढ़ हो महात्मा शबरी को आश्चर्य दृष्टि से देखने लगीं| हाँ, यह जो माँ शबरी ने कहा, मैंने सोचा ही नहीं? यह समय शोक मनाने का नहीं बल्कि पुत्र अंगद को सम्हालने का और राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था करने का है| माँ ने ठीक ही कहा है कि इसका कोई प्रमाण नहीं हैं कि बाली का वध हो गया है| तुरंत शोक छोड़ साम्राज्ञी तारा उठीं, महात्मा शबरी के चरण स्पर्श किए और शोक गृह से निकल राज

सभा जाने की तैयारी करने लगीं| साथ में महात्मा शबरी को भी सभा में चलने के लिए प्रार्थना की|

साम्राज्ञी तारा के साथ महात्मा शबरी युवराज सुग्रीव के द्वारा बुलाई गई सभी मंत्रीगणों की आपातकाल सभा में पहुँची| सभी ने तुरंत खड़े होकर महात्मा शबरी एवं साम्राज्ञी का स्वागत किया| साम्राज्ञी ने महात्मा शबरी को एक उच्च स्थान पर बिठा कर सभा को सम्बोधित किया|

साम्राज्ञी तारा सभा को सम्बोधित करते हुए बोलीं, 'प्रिय युवराज सुग्रीव, सम्राट बाली के समर्थक मंत्रीगणों एवं सेनापति, हम एक दुःखद घटना के मध्य से जा रहे हैं| माँ शबरी के आदेशानुसार एवं गहन विचार के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँची हूँ कि यह समय युवराज सुग्रीव का राजसिंहासन अभिषेक करने का है, अतः मैं इसका समर्थन करती हूँ| पुत्र अंगद के लालन पालन हेतु और माँ शबरी के समझाने पर कि इस समय सती होना धर्म विरुद्ध है, मैंने सती होने की हठ का भी त्याग कर दिया है| मैं और मेरा पुत्र अंगद अब सम्राट सुग्रीव को पूर्ण समर्थन देंगे|'

'साम्राज्ञी तारा की जय हो, जय हो', इन नारों से पूरी सभा गूँज उठी| तब साम्राज्ञी तारा सभा से बाहर आ गईं और महात्मा शबरी के साथ अपने महल चली गईं| पूर्ण आदर सत्कार के साथ माँ शबरी की विधिवत पूजा की| इसके पश्चात महात्मा शबरी ने अपने आश्रम प्रस्थान के लिए साम्राज्ञी तारा से आज्ञा माँगी| आदर पूर्वक साम्राज्ञी तारा एवं सम्राट सुग्रीव ने उन्हें तब विदा किया| कुछ ही समय में महात्मा शबरी अपने आश्रम लौटीं और अगले दिन ही महर्षि मतंग के आश्रम के लिए प्रस्थान कर गईं जहां ब्रह्मऋषि नारद उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे|

ब्रह्मऋषि नारद को मुख्य पुरोहित की भूमिका में रखते हुए आचार्य मंगला की मदद से महात्मा शबरी ने यज्ञ का आयोजन किया| मंत्रोचारण और यज्ञ हवि से समस्त वातावरण पवित्र हो गया| सात दिनों तक यह महायज्ञ चला| यज्ञ की समाप्ति पर महर्षि मतंग सभी आश्रमवासीओं को सम्बोधित करते हुए बोले, 'मेरे अहोभाग्य कि ब्रह्मऋषि नारद स्वयं यहां पधारे| अब यह शरीर बूढ़ा हो चला है| मैंने साधना में अब इस शरीर को छोड़ने की प्रभु से आज्ञा ले ली है| मेरी प्रार्थना पर मेरे अंतिम क्षणों में इस यज्ञ को संचालित करने के लिए प्रभु ने ब्रह्मऋषि नारद को भेजा है और मुझे

अत्यंत प्रसन्नता है कि मेरी प्रिय शिष्या महात्मा शबरी ने इस यज्ञ का सफलता पूर्वक संचालन किया है| मेरा अब सभी को आशीर्वाद और शुभ कामनाएं| मेरे जाने के पश्चात सभी से विनती है कि मेरे जाने का शोक न मनाऐं| शोक किस बात का? मैंने अपने जीवन के समस्त लक्ष्य प्राप्त किए| हरि की स्तुति से उन्हें प्रसन्न कर उनके धाम की प्राप्ति की| आप जैसे योग्य एवं समर्थ आर्य शिष्य और शिष्याओं को शिक्षा दी जो इस समस्त भूलोक पर मानवता का प्रचार कर रहे हैं| इसी प्रकार निःस्वार्थ भाव से प्रकृति और मानव की सेवा करते रहिए, यही मेरा सन्देश है|'

तदुपरांत ब्रह्मऋषि की ओर मुड़ कर महर्षि मतंग बोले, 'अब आज्ञा दें ब्रह्मऋषि|'

ब्रह्मऋषि नारद ने महर्षि मतंग का आलिंगन किया और तब मंत्रोचारण की ध्वनि के साथ महर्षि मतंग ने पम्पा सरोवर में जल समाधि ले ली|

महर्षि मतंग के साकेत धाम प्रस्थान करने के बाद ब्रह्मऋषि नारद की अध्यक्षता में सभी आश्रम के वरिष्ठ शिष्य और शिक्षकों की सभा हुई| आर्युवेदाचार्य अनंत देव भी अब बहुत बूढ़े हो चुके थे| आचार्य मंगला ही उनकी एक मात्र संतान थीं, और ब्रह्मचारिणी थी| महात्मा शबरी से प्रार्थना करते हुए उन्होंने अपना जीवन अब माता-पिता की सेवा में अर्पित करने की इच्छा व्यक्त की| अरण्य वन के सभी चिकित्सालयों में उनके शिष्य कर्मरत थे| ऐसी संभावना नहीं थी कि अब यह चिकित्सालय आचार्य मंगला के बिना नहीं चल सकते थे| परन्तु आचार्य मंगला के मार्ग प्रदर्शन की आवश्यक्ता अवश्य रहती थी| महात्मा शबरी ने उन्हें अरण्य वन के मुख्य चिकित्सक पद से तो अवश्य मुक्त कर दिया परन्तु उनसे विशेष सलाहकार बने रहने की विनती की जो आचार्य मंगला ने स्वीकार कर ली|

आचार्य जगद्रमूर्ति वापस अपने परिवार के साथ रहने अयोध्या जाना चाहते थे लेकिन महात्मा शबरी ने उनको सम्बोद्धित करते हुए कहा, 'आचार्य जगद्रमूर्ति, मेरी सूचना के अनुसार श्री राम अपने भ्राता श्री लक्ष्मण एवं पत्नी सीता जी के साथ शीघ्र ही अरण्य वन में निवास बनाएंगे| उनकी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुई और चूँकि आप उनके अनन्य भक्त और सेवक हैं, मैं आपकी यह प्रार्थना तब तक स्वीकार नहीं कर सकती जब तक स्वयं श्री राम १४ वर्षों के वनवास की अवधि को समाप्त कर वापस अयोध्या न चले जाएं|'

‘क्या श्री राम अरण्य वन में अपना निवास बनाएंगे? महात्मा, मेरी तुच्छ बुद्धि को क्षमा करें| यह तो मेरा सौभाग्य होगा कि मैं अपने प्रभु की सेवा कर सकूं| मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ', आचार्य जगद्गमूर्ति बोले|

अन्य महर्षि मतंग के शिष्य और शिष्याओं को सम्बोधित करते हुई तब महात्मा शबरी बोलीं, 'आप सबकी शिक्षा पूर्ण कराने के पश्चात ही महर्षि ने साकेत धाम की यात्रा की है| उनके आदेश, ‘अब सभी प्रकृति और मानवता की निःस्वार्थ सेवा करें’, का पालन करते हुई मेरी विनम्र विनती है कि अब आप सब अपने अपने गृह जाकर अपने क्षेत्र में आश्रम की स्थापना कर महर्षि मतंग के ज्ञान को सब ओर बांटे|'

'साधुवाद, साधुवाद' के नारों से सभा गूँज उठी| ब्रह्मऋषि नारद ने महात्मा शबरी को हृदय से लगाया और आशीर्वाद दे कर विदाई माँगी| ब्रह्मऋषि तब 'नारायण, नारायण' भजन गाते हुई वहां से चले गए| अगले दिन सभी अन्य शिष्य और शिष्याएं, केवल आचार्य मंगला, उनके माता-पिता, उनके साथी एवं कुछ सेवकों के अतिरिक्त सभी ने महात्मा शबरी से आश्रम छोड़ अपने अपने ग्रहों को प्रस्थान करने की अनुमति ली और प्रस्थान किया|

तब स्वयं महात्मा शबरी ने भी अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया| वह आश्रम पहुँची हीं थीं कि एक और दुःखद समाचार ने उनके हृदय को विचलित कर दिया| शबर सेन मृत्यु शैया पर पड़े महात्मा शबरी की प्रतीक्षा कर रहें हैं ताकि उनकी उपस्थिति में वह प्राण त्याग प्रभु के लोक को जा सकें| तुरंत महात्मा शबरी शबर सेन के निवास की ओर चल दीं|

शबर सेन को मोक्ष एवं सूपर्णखा से भेंट

महात्मा शबरी शीघ्र ही शबर सेन के निवास स्थान पर पहुँच गईं| उन्होंने देखा कि भील समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति वहां उपस्थित हैं एवं महात्मा शबरी की ही प्रतीक्षा कर रहें हैं| वह सीधे शबर सेन के कक्ष में गईं| उनका गला सूजा हुआ था| बोलने में उन्हें अत्यंत कठिनाई हो रही थी| महात्मा शबरी को देखते ही उनके चेहरे पर मुस्कान आ गई| कुछ कहना चाहते थे परन्तु शब्द स्पष्ट मुख से नहीं निकल पा रहे थे थे| महात्मा शबरी उनके बिलकुल समीप पहुँच गईं और उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया| महात्मा शबरी के उनके स्पर्श मात्र से ही उन्हें ऐसा लगा कि उनकी समस्त पीड़ा चली गई है| बहुत धीमे स्वर में वह बोले, 'पुत्री, जानता हूँ महर्षि मतंग ने महासमाधि ले ली है| मेरा भी अब उनके पास जाने का समय आ गया है| मुझे विदा करो, पुत्री|'

अश्रु छलकते नेत्रों से महात्मा शबरी ने जैसे उनकी बात का समर्थन किया|

'अवश्य पिताश्री, स्वयं विष्णुदेव आपको मोक्ष देने के लिए आपकी प्रतीक्षा में हैं| अब आपको इस पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा,' विनीत स्वर में महात्मा शबरी बोलीं|

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे महर्षि मतंग का नाम उनके ओठों पर आया और फिर उन्होंने इस संसार से विदा ली| शबर सेन की मृत्यु से उनकी पत्नी को गहरा आघात लगा और वह मूर्छित हो गईं| तब महात्मा शबरी उनकी ओर भागीं| तुरंत उनका सर अपनी गोद में ले कर वह उनके बालों को सहलाने लगीं| उनको सजीव स्थिति में लाने को अब बहुत देर हो चुकी थी| उन्होंने भी अपने पति के साथ इस पंच भौतिक शरीर का त्याग कर दिया था|

एक सेवक द्वारा उन्होंने यथा स्थिति का वर्णन करते हुए संदेशा महर्षि मतंग के आश्रम में आचार्य मंगला को पहुंचाया| आचार्य मंगला तुरंत शबर सेन के निवास स्थान पर पहुंचीं और महात्मा शबरी के समीप जा कर बैठ गईं| धीरे से उन्होंने आचार्य मंगला को आदेश दिया कि महर्षि मतंग की महासमाधि एवं शबर सेन और उनकी पत्नी के मृत्यु का समाचार तुरंत आचार्य जगद्रमूर्ति के माध्यम से महर्षि कुर्तकी को प्रयागराज

गुरुकुल पहुंचाया जाए| तद्पश्चात शबर सेन और उनकी पत्नी के अंतिम क्रिया का संचालन स्वयं महात्मा शबरी ने किया|

अंतिम क्रिया अनुष्ठान समाप्त होने के पश्चात आचार्य मंगला महर्षि मतंग के आश्रम में लौट गईं| आचार्य जगद्गमूर्ति को उन्होंने महात्मा शबरी का आदेश सुनाया| तुरंत यह दोनों दुःखद समाचार, महर्षि मतंग के महासमाधि एवं उनके माता पिता के स्वर्गवासी होने का समाचार, प्रयागराज महर्षि कुर्तकी को भेजने का आचार्य जगद्गमूर्ति ने अपने एक साथी के द्वारा प्रबंध किया|

महात्मा शबरी शबर सेन के निवास स्थान पर ही कुछ दिनों के लिए ठहर गईं| संवेदना प्रकट करने वालों का तांता लग रहा था| इसके अतिरिक्त पुरोहित सिंघम के साथ मिलकर उन्हें भील समाज के नेता का भी चयन करना था| सभी से विचार विमर्श कर उन्होंने भील समाज के एक उभरते हुए युवा 'समराजय सेन' को भीलों का सरदार नियुक्त किया| समराजय सेन शबर सेन का भांजा था एवं भीलों के नेतृत्व करने के लिए हर कला में निपुण था| महात्मा शबरी, पुरोहित सिंघम एवं भीलों के वरिष्ठ समुदाय के इस चयन का किसी ने विरोध नहीं किया|

मारीचि को भी शबर सेन और उनकी पत्नी के स्वर्गवासी होने का दुःखद समाचार मिला| तुरंत वह महात्मा शबरी से मिलने और उनको संवेदना प्रकट करने शबर सेन के निवास स्थान जाने के लिए तत्पर हुए| उस समय उनकी राजधानी अभयराण्य में लंकापति रावण की छोटी बहन सुपर्णखा उनके अतिथि के रूप में निवास कर रही थी| मामाश्री मारीचि से जाना कि महात्मा शबरी के माता पिता का देहांत हो चुका है| उसने महात्मा शबरी के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था| महात्मा शबरी अरण्य वन में अत्यंत पूज्या, सभी भील तथा अन्य वनवासी समुदायों के तथा स्वयं मामाश्री मारीचि की आध्यात्मिक गुरु हैं, अवश्य ही उनमें कोई विशेष गुण रहा होगा जिसके कारण सभी उनसे प्रभावित रहते हैं| मुझे मेरे उपयुक्त वर ढूंढने में वह निश्चय ही मेरी सहायता करेंगी| राक्षसों की प्रवर्ति सदैव अपने स्वार्थ में ही लगी रहती है| सुपर्णखा का महात्मा शबरी से मिलने का उद्देश्य तो देखो| एक महान आत्मा से मिल उनका आशीर्वाद प्राप्त कर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर उनसे उसके लिए उपयुक्त वर मिलने में सहायता करने की अपेक्षा करना| महात्मा शबरी से मिलने की अपनी इच्छा को सुपर्णखा ने मामा मारीचि को बताया तथा वह भी उनके साथ जाने को तैयार हो गई|

सूर्पणखा कौन थी और वह अरण्य वन में अपने उपयुक्त वर की तलाश क्यों कर रही थी?

सुपर्णखा लंकापति रावण, कुम्भकरण एवं विभीषण की बहन थी| वह लंकापति रावण के पिता ऋषि विश्वश्रवा और उनकी दूसरी पत्नी कैकशी की पुत्री थी| उसका विद्युत्जह्व महादानव से प्रेम हो गया था जो कालकेय साम्राज्य के सेनापति थे| उसने उन से गांधर्व विवाह कर लिया था|

लंकापति रावण के साम्राज्य विस्तारवाद का कालकेय राज्य निशाना बना| उसने कालकेय साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर उसे लंका राज्य में विलीन करने के लिए कालकेय राज्य पर युद्ध की घोषणा कर दी| इस समाचार के मिलने पर सूर्पणखा ने अपने भाई रावण को बहुत समझाया| मगर लंकापति रावण अपने राज्य के विस्तार की लालसा में अंधा हो गया था अतः उसने कालकेय राज्य पर आक्रमण कर दिया| इस युद्ध में कालकेय राज्य के सेनापति होने के कारण कालकेय सेना का नेतृत्व विद्युत्जह्व ने किया| रावण ओर विद्युत्जह्व का युद्ध हुआ और रावण ने विद्युत्जह्व को वीरगति दी| सूर्पणखा विद्युत्जह्व की पत्नी थी| उसे अपने पति के मरने पर बहुत दुःख हुआ और उसने संकल्प लिया कि वह रावण के सर्वनाश का कारण बनेगी|

युद्ध में विद्युत्जह्व को वीरगति दे एवं कालकेय राज्य पर विजय प्राप्त कर प्रसन्नता और अभिमान से भरा लंकापति रावण जब लंका आया तो उसने अपनी बहन को बहुत दुःखी पाया| उसका हृदय भी द्रवित हो गया और वह इस कृत्य के लिए अपनी बहन से क्षमा याचना करने लगा| साथ में उसने सुपर्णखा को वचन भी दिया कि तीनों लोकों में वह जिस को भी अपने पति के उपयुक्त समझे, उसका विवाह उसी के साथ, साम, दाम, दंड, भेद, चाहे कोई भी नीति अपनानी पड़े, करवाएगा|

वाल्मीकि रामायण के अनुसार पूर्व जन्म में शूर्पणखा इन्द्रलोक की 'नयनतारा' नामक अप्सरा थी| उर्वशी, रम्भा, मेनका, पूंजिकस्थला आदि प्रमुख अप्सराओं में इनकी गिनती होती थी| एक बार इन्द्र के दरबार में अप्सराओं का नृत्य चल रहा था| उस समय नयनतारा नृत्य करते समय अपने कामुक नेत्रों से इंद्र को लुभाने में सफल हुईं और उनकी प्रेयसी बन गईं| तत्कालीन समय में पृथ्वी पर 'वज्रा' नामक एक ऋषि घोर तपस्या कर रहे थे| इंद्र को लगा कि कहीं उसका स्वर्ग सिंहासन ऋषिवर न ले लें,

अतः उन्होंने नयनतारा को उनकी तपस्या भंग करने हेतु पृथ्वी पर भेजा| नयनतारा उनकी तपस्या भंग करने में तो अवश्य सफल हो गईं लेकिन ऋषि ने कुपित होकर तपस्या भंग करने के अपराध में नयनतारा को राक्षसी होने का श्राप दे दिया| ऋषि से क्षमा याचना करने पर और सत्य कारण बताने पर कि वह तो इंद्र के आदेश पर उनकी तपस्या भंग करने हेतु आईं है और इसमें उसका व्यक्तिगत कोई दोष नहीं है, तब वज्रा ऋषि ने उसे राक्षस योनि में प्रभु के दर्शन का आशीर्वाद दिया|

सुपर्णखा ने तीनों लोकों की यात्रा की परन्तु कहीं भी उसे उसके उपयुक्त वर नहीं मिला| अब उसने अपना डेरा मामाश्री मारीचि की राजधानी में डाल रखा था कि संभवतः अरण्य वन में किसी उपयुक्त योग्य वर की प्राप्ति हो| अपने इस संकल्प में वह महात्मा शबरी को पक्षधर बनाने का विचार कर रही थी|

मारीचि, सुपर्णखा के साथ शबर सेन के गृह पहुंचे| महात्मा शबरी को हृदय से लगाकर उन्होंने अपनी संवेदना व्यक्त की| सुपर्णखा का परिचय भी महात्मा शबरी से कराया| सूपर्णखा का महात्मा शबरी ने स्वागत किया और बोलीं, 'हे ऋषि वंसज रक्ष वंश की सुमुखी, मेरे द्वार आईं, धन्य है| लंका में सब कुशल मंगल तो है जो आप स्वर्ण नगरी छोड़ इस वन में विचरण कर रहीं हैं? मैंने तो सुना है कि तुम्हारे भ्राता लंकापति रावण ने काल को भी जीत रखा है| फिर इतने शक्तिशाली भ्राता की भगिनी होकर क्या कष्ट जो मुझ जैसी साधारण स्त्री से मिलने चली आईं?'

महात्मा शबरी के विनीत शब्दों ने सुपर्णखा के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला| अपने भाई लंकापति की प्रशंसा सुन उसका सीना फूल गया|

सुपर्णखा बोली, 'महात्मा, आपने मेरे भ्राता रावण के बारे में जो भी कहा, सत्य है| स्वयं ब्रह्मदेव ने उन्हें वेद, वेदान्तों की शिक्षा दे उन्हें सर्व ज्ञानी बनाया है| लेकिन उनसे एक छोटी सी बात पर रुष्ट हो उन्हें रक्ष वंस का स्वामी बना दिया|'

'ब्रह्मदेव की रुष्टता, तुम्हारे भाई पर? कुछ विस्तार पूर्वक कहो सुमुखी’, मधुर स्वर में महात्मा शबरी बोलीं|

बड़े गर्व के साथ तब सूपर्णखा बोली,' हम ऋषि पुलस्त्य के श्रेष्ठ वंश की संतानें हैं| श्रेष्ठ ऋषि विश्वश्रवा हमारे पिता हैं| महाज्ञानी आचार्य मणिचंद्र ने हमको प्राथमिक शिक्षा दी| तत्पश्चात हमारे पिता ऋषि विश्वश्रवा ने हमें ब्रह्मदेव के पास वेद, वेदान्तों एवं अस्त्र, शस्त्र की शिक्षा प्राप्ति हेतु भेजा| हमने अल्प काल में ही ब्रह्मदेव से सभी शिक्षाएं ग्रहण कीं| ब्रह्मदेव की शिष्या मयदानव की पुत्री मंदोदरी भी तब वहीं अध्ययन कर रहीं थी| भ्राता रावण और मंदोदरी में प्रेम हो गया| एक दिन दोनों को प्रेम पाश में आलिंगन करते हुए ब्रह्मदेव ने उन्हें देख लिया| भ्राता रावण और मय दानव की पुत्री मंदोदरी ब्रह्मदेव के शिष्य और शिष्या होने के कारण गुरु भाई-बहन थे, अतः इस अक्षम्य पाप से ब्रह्मदेव अत्यंत रुष्ट हुए| क्रुद्ध होकर रक्ष वंस में जीवन बिताने का श्राप दे कर उन्होंने हमारा परित्याग कर दिया| मेरे भ्राता रावण ने मय दानव से उनकी पुत्री मंदोदरी का तब हाथ माँगा| रावण के उज्ज्वल भविष्य को देखते हुए उन्होंने अपनी पुत्री मंदोदरी का विवाह मेरे भ्राता रावण से कर दिया| पिता ऋषि विश्वश्रवा ने तब महादेव से दक्षिणा में प्राप्त स्वर्ण लंका को मेरे भ्राता रावण को लंकाधिपति बना उन्हें सौंप दिया| तब से हम वहीं लंका में ही रहते हैं|'

'महादेव की लंका और तुम्हारे भ्राता रावण को तुम्हारे पिता ऋषि विश्वश्रवा ने सौंप दी, कुछ बात समझ में नहीं आई सुमुखी,' महात्मा शबरी बोलीं|

'महात्मा, यह बहुत पुराने समय की बात है जब देवी पार्वती ने महादेव से अपने निवास के लिए एक अनूठा स्वर्ण महल निर्मित करने की इच्छा व्यक्त की थी| महादेव ने उन्हें बहुत समझाया कि हम तो कैलास पर्वत वासी हैं, महल में रहना हमें नहीं सुहाएगा, फिर भी जगदम्बा के हठ के कारण उन्होंने विश्वकर्मा को एक अनूठा स्वर्ण महल बनाने का आदेश दिया| विश्वकर्मा ने मयदानव के सहयोग से इस अनूठी नगरी लंका का स्वर्ण एवं मणियों से निर्माण किया| गृह प्रवेश मेरे पिता ऋषि विश्वश्रवा ने सभी विधि विधान के अनुसार किया| महादेव उनके ज्ञान एवं निष्ठा से अति प्रभावित हुए और प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा| मेरे पिता ऋषि विश्वश्रवा इस लंका नगरी की भव्य सुंदरता देख मोहित गए थे, अतः उन्होंने महादेव से यह अनूठी नगरी ही वर में मांग ली| महादेव ने वचनानुसार यह महल और नगरी मेरे पिता ऋषि विश्वश्रवा की दे दी जिसे उन्होंने मेरे भ्राता रावण को सौंप दी,' सूपर्णखा बोली|

बड़ी गंभीर हो कर महात्मा शबरी बोलीं जैसे उन्हें कुछ पता ही न हो, 'अच्छा, इतने वीर धीर भाई की भगिनी मेरे पास! मैं क्या सेवा कर सकती हूँ तुम्हारी?'

'महात्मा, मैं अपने लिए एक उपयुक्त वर की तलाश में घूम रहीं हूँ| आप मेरी इस कार्य में मदद करें| इस अभियान की सफलता के पश्चात जो भी आप चाहेंगी, वही मैं आपको दूंगी', बड़े अभिमान से सूपर्णखा बोली|

'पुत्री सुपर्णखा, मैं तो अब वृद्ध हो चली| मेरी क्या इच्छा हो सकती है? लेकिन हाँ, तुम जैसी सुमुखी को तो एक विशेष योग्य पति मिलना ही चाहिए| मेरी दृष्टि में एक है| तुम्हें कुछ दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी| यहीं अरण्य वन में ही तुम्हें मिलेगा,' व्यंग्य पूर्वक महात्मा शबरी बोलीं|

सूपर्णखा महात्मा का व्यंग्य नहीं समझ पाई| कहते हैं सावन के अंधे को हरा हरा ही सूझता है| वह तो महात्मा के इन शब्दों पर न्योछावर हो गई और बोली, 'मैं प्रतीक्षा कर लूंगी महात्मा| मुझे बताओ, कब, कहाँ और कैसे मुझे यह मेरा उपयुक्त वर मिलेगा?'

'अवश्य पुत्री, समय आने पर मैं संकेत दे दूंगी| मेरे संपर्क में रहना और अपने कार्य कलापों से मुझे अवगत कराते रहना,' महात्मा शबरी बोलीं|

महात्मा शबरी से अपने मन पसंद शब्दों को सुन प्रसन्न मन से हृदय में महात्मा को धन्यवाद देते हुए मामा मारुचि के साथ सूपर्णखा वापस राजधानी अभ्यारण्य आ गई| कुछ समय शबर सेन के गृह में व्यतीत कर महात्मा शबरी भी अपने आश्रम लौट आईं|

आश्रम लौट महात्मा शबरी का समय अधिकतर वनवासियों एवं वन के जीव जंतुओं की सेवा में व्यतीत होने लगा| वन के हर प्राणी उन्हें अपने जीवन से अधिक प्रेम करते थे| उनकी आज्ञा का पालन वन में रहने वाले नर, नारी ही नहीं बल्कि वन के जंगली जानवर तक करते थे|

इधर आचार्य जगद्रमूर्ति ने अपने सहयोगी और घनिष्ठ मित्र आचार्य शंकरदेव को महर्षि कुर्तकी (श्रमणा) के पास महर्षि मतंग की जल महासमाधि एवं उनके माता पिता के

स्वर्गलोक वास का दुःखद समाचार देने प्रयागराज भेजा| महर्षि कुर्तकी को तो जैसे पहले से ही इसका आभास हो चुका था| कुछ दिनों से उनका हृदय विचलित रहता था| रात्रि को निंद्रा भी ठीक से नहीं आ रही थी| रह रह कर रात में अपने गुरु महर्षि मतंग एवं माता पिता का स्मरण कर उठ जाती थीं| किसी अनिष्ट समाचार की उन्हें आशंका थी तभी आचार्य शंकरदेव प्रयागराज आश्रम पहुँच गए और महर्षि भारद्वाज से मिल कर सब समाचार सुनाए| महर्षि भारद्वाज ने तब महर्षि कुर्तकी को अपनी कुटिया में बुलाया और यह दुःखद समाचार सुनाए| महर्षि कुर्तकी मौन हो गईं| तब महर्षि भारद्वाज ने उनका ढांढस बढ़ाया| कुछ समय बाद दोनों, महर्षि भारद्वाज एवं महर्षि कुर्तकी, माँ गंगा तट पर इन महान व्यक्तित्वों को तर्पण देने पहुंचे|

ॐ आं ह्रीं क्रों दत्तात्रये नमः| ॐ गुरुभ्य: नम:| ॐ पितृभ्य: नम:| ॐ मात्रभ्य: नम:| ॐ शांतिः शांतिः शांतिः|

शांति प्रदायक महात्मा शबरी

महर्षि मतंग की महासमाधि, शबर सेन एवं उनकी पत्नी के स्वर्गवास तथा आचार्य मंगला के अपने माता पिता के प्रति निष्ठा के कारण मुख्य चिकित्सक पद से मुक्ति ले कर महर्षि मतंग के आश्रम में स्थापित हो जाना, इन सब घटनाओं ने महात्मा शबरी को कुछ अकेला सा कर दिया था| वह अब अपना अधिक समय एकांतवास में साधना में बिताने लगीं| वह कभी कभी तो प्रातः ही वन भ्रमण को निकल जातीं और घंटों वन में घूमते हुए जंगली पशुओं के साथ बातें करते हुए बहुत देरी से लौटतीं| उनका स्वास्थ्य भी शनैः शनैः बिगड़ने लगा था| उनका भी हृदय अब समाधि लेने के लिए विचलित होने लगा था| उन्हें ऐसा अनुभव होता था कि अब तो संभवतः प्रभु ने उनके जीवन के समस्त उद्देश्य एवं लक्ष्य सफलता पूर्वक पूर्ण करवा दिए, अतः अब उनका साकेत धाम जाने का समय आ गया है| लेकिन समाधि लेने से पहले वह एक बार प्रभु को अपने नेत्रों से जी भर कर देखना चाहतीं हैं, इसीलिए उन्होंने अपने प्राण त्यागने के निर्णय को स्थगित कर रखा था| प्रभु अब वनवास में हैं तथा शीघ्र ही अरण्य वन आने वाले हैं और मुझे दर्शन देंगे, इस आशा से उनकी दृष्टि आश्रम के द्वार पर ही लगी रहती थी| बस, अब तो प्रभु शीघ्र आ जाइये, यह शरीर अधिक दिन तक मेरा सहयोग नहीं दे सकता, ऐसा हृदय में रटती रहतीं थीं|

आज ब्रह्म मुहूर्त से भी पहले महात्मा शबरी ने अपना बिस्तर छोड़ दिया| निंद्रा ही नहीं आ रही थी| रात्रि के अन्धकार में ही पम्पा सरोवर में स्नान करने निकल पड़ीं| अभी स्नान करने सरोवर में घुसी हीं थीं कि एक सिंह के बच्चे की चीख ने उनका ध्यान आकर्षित किया| पशुओं की भाषा महात्मा अच्छी प्रकार समझतीं थी| उन्हें लगा कि सिंह सावक किसी कष्ट में हैं| तुरंत सरोवर से निकलीं| शीघ्रता में कपड़े पहने और तीव्र गति से कदम बढ़ाती हुईं उस दिशा में चल दीं जहां से सावक की मार्मिक पुकार आ रही थी| थोड़ी ही दूर पहुँची होंगी कि उन्होंने देखा एक हाथी अपनी सूंड़ में दबा कर सिंह के छोटे से सावक को मारने का प्रयास कर रहा है| धीरे धीरे उसकी सूंड़ का दबाब इस छोटे से सावक पर बढ़ता जा रहा था और वह दर्द से छटपटा रहा था| तुरंत महात्मा ने उस गज को ललकारा| पता नहीं कहाँ से बूढ़े शरीर में इतनी शक्ति आ गई कि गज की सूंड़ को इतने प्रवाह से झकझोरा कि सावक छूट गया और भाग गया| इस प्रकार उस असहाय छोटे बच्चे के प्राण बचाए| वह गज के आगे खड़ी हो गईं और

बोलीं 'हे वक्रतुण्ड, तुम तो न्याय के प्रतीक हो| ऐसा अन्याय क्यों? उस असहाय सिंह सावक को मारने का प्रयास क्यों?'

गज महात्मा शबरी के समक्ष नत मस्तक हो गया और दीन वाणी में बोला, 'महात्मन, जब मैं बच्चा था, तब कुछ नर प्राणी जंगल आए| मेरी माँ को मार दिया और मुझे बाँध कर ले गए| उन्होंने मुझे बड़े कष्ट दिए| मुझे एक दंगल के स्वामी को बेच दिया जो मुझे भर पेट खाना भी कभी नहीं देता था लेकिन तमाशा कराने के लिए पीट पीट कर मुझे अधमरा कर देता था| मैं आज ही उस दुष्ट से छुटकारा पा कर उस दंगल से भाग आया हूँ | लेकिन इस मनुष्य व्यवहार ने मेरी मानसिकता पूर्ण प्रकार से ही बदल दी है| मैं हिंसक हो गया हूँ, महात्मन| मुझे हर वस्तु से डर लगता है| इस सावक से भी मुझे डर लगा और मैंने उसे मारने की ठानी| मुझे क्षमा करें महात्मा|’

तब महात्मा शबरी ने अपना वात्सल्य हस्त गज की सूंड़ पर रख आशीर्वाद दिया, 'हे गजराज, आप अब इस वन में स्वतन्त्रता से विचरण करें| आपको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता, यह मेरा वचन है|'

तब गज माँ रूपिणी महात्मा शबरी को प्रणाम कर वहां से चला गया|

महात्मा शबरी का ऐसा महान व्यक्तित्व था |

एक तोता पास में ही वृक्ष पर बैठा यह सब देख रहा था|

'धन्य धन्य माँ, प्रभु की प्रिय महात्मा शबरी का ऐसा मानवीय हृदय क्यों न हो?', वह बोल बैठा|

तब महात्मा ने उसे पास बुलाकर अपने कंधे पर बिठा लिया और प्रेम पूर्वक शब्दों में बोलीं, 'हे शुक, तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? मेरे प्रति इतने उदार वचन बोल मेरे प्रभु की स्मृति मुझे दिला रहे हो| अवश्य ही तुम मेरे प्रभु को जानते हो|'

'महात्मा, मैं महर्षि गौतम की पत्नी अहिल्या का प्रिय शुक हूँ| उनका कोई दोष न होते हुए भी इंद्र द्वारा धोखा दिए जाने पर इस महान नारी को मैंने घुट घुट कर तिल तिल

मरते देखा है| मानसिक संतुलन खोने पर पत्थरवत हो कर एक लम्बे समय तक प्रभु राम की चरण रज से अपने को पवित्र करने की प्रतीक्षा में आँखे बिछाए देखा है| लेकिन प्रतीक्षा अंततः सफल हुई| ब्रह्मऋषि विश्वामित्र के साथ भगवान् श्री राम ने स्वयं उनके आश्रम जाकर उनकी पवित्रता लौटाई| महर्षि गौतम ने तब उन्हें सहर्ष अपनी पत्नी के रूप में पुनः स्वीकार कर लिया| हे माँ, श्री हरि जानते हैं कि आप भी उसी प्रकार उनका स्वरुप देखने के लिए बेचैन हैं| मुझे आपके समीप प्रभु ने यही संदेशा देकर भेजा है कि शीघ्र ही उनके दर्शन आपको होंगे| आप हताश न हों', शुक ने मधुर शब्दों में श्री हरि का संदेशा महात्मा शबरी को सुनाया|

'साधु, साधु', शब्द महात्मा के मुख से निकले| वह शुक को लेकर अपने आश्रम में आ गईं| न जाने कितनी भगवद कथाएं प्रति दिन शुक उनको सुनाते रहते और महात्मा तन्मय होकर सुनती रहतीं| इस प्रकार समय बीतता चला गया|

फिर एक दिन महात्मा को सूचना मिली कि श्री राम, भ्राता लक्ष्मण एवं पत्नी सीता सहित, पंचवटी में निवास कर रहे हैं और लीला करने को तत्पर हैं| महात्मा को श्री राम ने सन्देश भिजवाया कि उनकी वनवास की अंतिम प्रक्रिया का शुभारम्भ कर रावण के विनाश का उपाय प्रारम्भ करें| तब एक संदेशवाहक द्वारा महात्मा ने मारीचि को संदेशा भिजवाया कि सुपर्णखा के लिए उपयुक्त वर की तलाश हो गई है| उनका भावी वर पंचवटी में डेरा डाले है अतः वह शीघ्र, अति शीघ्र, पहुँच वर को चुन उनसे विवाह की तैयारी करें| मारीचि की अनुभवी आँखें तो सब समझ गईं लेकिन प्रत्यक्ष में उन्होंने वह संदेशा तुरंत सूपर्णखा को लंका भिजवा दिया| सूपर्णखा तो इस अवसर की न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहीं थी| संदेशा मिलते ही एक अति सुन्दर नारी का रूप बना कर वह तुरंत पंचवटी गई और वहां श्री राम पर मोहित हो गई| श्री राम ने अपने को विवाहित बतलाते हुए श्री लक्ष्मण की ओर संकेत किया| इस मध्य लक्ष्मण जी ने उनके नाक कान काट दिए|

इस प्रकार अपमानित हो वह रावण के सेनापति खर एवं दूषण के पास गई और अपमान का बदला लेने को उन्हें प्रेरित किया| उसका हृदय श्री राम एवं श्री लक्ष्मण पर अभी भी मोहित था| अतः उनको जीवित पकड़ कर लाने की आज्ञा दी ताकि वह उनसे विवाह कर सके| किसी भी परिस्थिति में उनका वध न करें| हाँ, उनके साथ एक नारी है| यदि उसका वध कर दें तो सोने में सुहागा होगा| अपने स्वामी लंकापति

रावण की बहन के आदेश पर खर एवं दूषण ने उन दोनों राजकुमारों पर आक्रमण बोल दिया| श्री राम ने लक्ष्मण जी को तो सीता जी की रक्षा हेतु कुटिया पर रहने का आदेश दिया और देखते देखते पल भर में ही उन्होंने खर एवं दूषण सहित उनकी सेना का विनाश कर दिया|

इस प्रकार महाबलशाली खर, दूषण एवं उनकी सम्पूर्ण सेना का विनाश देख सूपर्णखा अचम्भे में आ गईं| तुरंत उन्हें ब्रह्मदेव के शब्द स्मरण हो आए, 'जब खर दूषण का कोई मानव वध कर दे तब समझ लेना तुम्हारा रावण से प्रतिशोध पूर्ण होगा| वही नर रावण का वध करेंगे|'

उसकी रावण के प्रति पति की हत्या के कारण प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी| तुरंत वह लंकापति रावण के समीप लंका पहुँची और खर दूषण एवं उनकी सेना के वध का समाचार देने के साथ रावण को श्री राम के विरुद्ध भड़काने में अग्नि में घी का कार्य करने लगी| रावण सोच में पड़ गए| खर दूषण का वध कोई मानव नहीं कर सकता| यह अवश्य ही श्री हरि के अवतार हैं और मुझे मोक्ष देने हेतु अवतरित हुए हैं| इस तामस देह से अब भजन, पूजन, तपस्या तो हो नहीं सकती अतः उनसे वैर ले कर उनके हाथों मारे जाने से ही मुझे अब मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है| अतः उसने उनसे शत्रुता करने की योजना बनानी प्रारम्भ कर दी|

श्री राम की पत्नी सीता का हरण करने की उसने योजना बना ली| इस कार्य में सहायता के लिए उसने मारीचि को चुना| तुरंत अपने पुष्पक विमान से वह मारीचि के पास राजधानी अभयराण्य पहुंचा| उसने मारीचि को अपनी योजना बताई| उसने मारीचि से कहा कि वह स्वर्ण मृग बन सीता को रिझाए| तब राम उसकी स्वर्ण मृग छाल के लिए उसका पीछा करेंगे| किसी भी प्रकार लक्ष्मण को भी अपने पीछे लगा लेना| सीता जब अकेली रह जाएँगी तो मैं उनका हरण कर उन्हें लंका ले जाऊँगा|

मारीचि ने रावण को समझाने का बहुत प्रयास किया| मारीचि बोले, 'अरे मूर्ख, जिनको तू साधारण मनुष्य समझ रहा है उनके बिना फल के वाण से मैं सुन्दर वन से अरण्य वन में घायल होकर आ पड़ा था| उन्होंने मेरी माता ताड़का, भ्राता सुबाहु और अब खर, दूषण के साथ उनकी समस्त सेना का विनाश कर दिया| तू अब भी उन्हें मनुष्य समझता है|'

लेकिन रावण पर इन उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा| उसने मारीचि को अंतिम चेतावनी दे दी, या तो मेरी योजना का भाग बनो अथवा अभी मरने के लिए तत्पर हो जाओ|

'इस मूर्ख के हाथों से मरने से तो श्रेष्ठ श्री राम के हाथों से मरना है जहाँ मुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी', ऐसा विचारकर उसने रावण की योजना का भाग बनने के लिए स्वीकृति दे दी| तब संतुष्ट हो एवं अगले दिन इस कार्य को करने के लिए प्रतिबद्ध हो रावण पुष्पक विमान से लंका लौट गया|

अचानक आज फिर मारीचि का महात्मा शबरी के आश्रम में आगमन हुआ| अत्यंत चिंतित और घबराए हुए लग रहे थे| महात्मा ने यथोचित आसन दे कर उनका सत्कार किया, जल पान दिया और फिर उनकी चिंता का कारण पूछने लगीं| तब मारीचि ने सब गाथा सुनाई जिस प्रकार रावण उनके महल आया और उनसे स्वर्ण मृग बन सीता को रिझाने का वचन ले कर चला गया|

'मेरा मरण अब तय है महात्मा| मेरे लिए प्रार्थना करो', मारीचि बोले|

महात्मा ने तब उनके परमार्थ के लिए प्रार्थना की|

मारीचि के चले जाने के बाद सब वृतांत शुक को बता कर तुरंत उसे श्री राम की कुटी के लिए प्रस्थान कराया| शुक की बातों से रावण की योजना सुन, श्री राम ने सीता से कहा, 'प्रिये, समय आ गया है जब मैं अपनी लीला प्रारम्भ करूँ| अतः तुम अग्नि में प्रवेश कर जाओ और अपने स्थान पर प्रतिबिंबित सीता को लीला के लिए छोड़ दो|'

अगले दिन लंकापति रावण ने अपनी योजना को क्रियान्वित किया| मारीचि ने स्वर्ण मृग बन प्रतिबिंबित सीता का मन हर लिया और उन्होंने श्री राम को उस स्वर्ण मृग को मार कर उसके चर्म से अपना आसन बनाने के लिए प्रेरित किया| श्री राम उसका पीछा करते हुए दूर निकल गए| तदुपरांत उन्होंने उसे अपने वाणों से मार दिया| मरते समय मारीचि ने श्री राम के स्वराघात में दर्द से भरा स्वर निकाला जिससे सीता को लगा कि श्री राम कठिनाई में हैं| तब सीता जी ने श्री लक्ष्मण जी को भी श्री राम की सहायता के लिए भेज दिया| कुटी में सीता को अकेले देख तब रावण ने सन्यासी के

रूप में उनका हरण कर लिया| इस कथा का विवरण गोस्वामी तुलसी दास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' में बड़ी सुंदरता से दर्शाया है, अतः यहां सक्षेप में ही प्रस्तुत है|

जब श्री राम और लक्ष्मण जी मारीचि का वध कर कुटिया वापस आए तो वहां सीता को न पा अति दुःखी हुए और उनकी खोज का प्रयत्न करने लगे| श्री राम जानते थे कि उनकी गुप्तचर शबरी को इस अपहरण का पूर्ण भेद पता होगा अतः वह महात्मा शबरी के आश्रम की ओर चल दिए| मार्ग में उन्हें घायल जटायु मिले| सीता की सहायता की पुकार सुन जटायु ने रावण को ललकारा था, परन्तु रावण की शक्ति के समक्ष उनका बल न ठहर सका और वह घायल हो गए| जटायु ने तब उन्हें रावण द्वारा सीता के अपहरण की सूचना देने के साथ श्री राम की गोद में अपना शरीर त्याग मोक्ष की प्राप्ति की| उनका अंतिम संस्कार करने के पश्चात श्री राम और लक्ष्मण महात्मा शबरी के आश्रम की ओर बढ़े|

श्री राम से मिलन एवं मोक्ष

जब मारीचि महात्मा शबरी से मिलने उनके आश्रम आए थे तथा उन्होंने रावण की सीता हरण की योजना बताई थी, तभी से महात्मा को विश्वास हो गया था कि श्री राम अब कभी भी उनके आश्रम पधार सकते हैं| वह आँखे गढ़ाए उनकी प्रतीक्षा कर रहीं थीं|

सबरी देखि राम गृहँ आए| मुनि के बचन समुझि जियँ भाए||

महात्मा शबरी ने श्री रामचंद्र जी को अपने आश्रम की ओर आते देखा तो गुरु के वचनों को स्मरण कर उनका मन प्रसन्न हो गया| जैसे ही महात्मा शबरी के आश्रम में उन्होंने कदम रखा, कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजाओं वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए सुंदर, साँवले और गोरे दोनों भाईयों के चरणों से महात्मा शबरी लिपट गईं| वह प्रेम में मग्न हो गईं| उनके मुख से कोई वचन नहीं निकल रहा था| बार बार प्रभु के चरण कमलों में सिर नवा रही थीं| तद्पश्चात उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाईयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसन पर बैठाया| तब उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल फल लाकर श्री राम जी एवं श्री लक्ष्मण जी को दिए| प्रभु ने बार बार प्रशंसा कर उन्हें प्रेम सहित खाया| प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया और कहने लगीं, 'हे, जगत के पालनहार, मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं अत्यंत मूढ़ बुद्धि हूँ, अधम और पापिन हूँ|'

तब श्री राम मधुर वचन बोले, 'हे महात्मा, तुम भली भांति जानती हो कि मुझे भक्ति अति प्रिय है| जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सब गुण होने के पश्चात भी भक्ति से रहित मनुष्य उसी प्रकार है जैसे जलहीन बादल दिखाई पड़ता है|'

तद्पश्चात श्री राम ने महात्मा शबरी को नव-विधा-भक्ति का ज्ञान दिया|

श्री राम बोले, 'हे महात्मन, मैं तुझसे अब अपनी नव-विधा-भक्ति का वर्णन करता हूँ| पहली भक्ति है, संतों का सत्संग| दूसरी भक्ति है, मेरे कथा प्रसंग में प्रेम| तीसरी भक्ति है, अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा| चौथी भक्ति है, कपट

छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करना| पांचवीं भक्ति है, मेरे नाम रूपी मंत्र का दृढ़ विश्वास से जाप करते रहना| छठी भक्ति है, इंद्रियों का निग्रह कर शील सहित वैराग्य से लिप्त हो कार्य करते हुए (केवल धर्म उपदेषित कार्य करते रहना एवं फल की इच्छा नहीं करना) निरंतर संत पुरुषों के आचरण में लगे रहना (संत पुरुषों का सम्मान करना और उनके उपदेशों को जीवन प्रणाली में लाना)| सातवीं भक्ति है, विश्व को समभाव से मुझ में ओत प्रोत (राममय) देखना और संतों का मुझ से भी अधिक सम्मान करना| आठवीं भक्ति है, जो कुछ मिल जाए उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना| नवीं भक्ति है, सरलता और सबके साथ कपट रहित बर्ताव कर हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना| इन नौ प्रकार की भक्तिओं में से एक में भी जिसका मन रम जाए वह स्त्री, पुरुष, जड़, चेतन कोई भी हो, हे महात्मा, मुझे वही अत्यंत प्रिय है| हे महात्मा, तुम में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है| अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज तुम्हारे लिए सुलभ हो गई है| हे महात्मन, अब तुम मेरी प्रिये गजगामिनी जानकी का जो भी समाचार जानती हो, बताओ|’

जनकसुता कइ सुधि भामिनी | जानहि कहु करिबरगामिनी ||

तब महात्मा शबरी ने कहा, ‘हे रघुनाथ, आप पम्पा सरोवर के दूसरी ओर किष्किंधा पर्वत पर जाईए| वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी| हे देव, हे रघुवीर, वह सब हाल आपको बताएगा और युद्ध में रावण से विजय दिलाएगा|’

पंपा सरहि जाहु रघुराई | तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ||
सो सब कहिहि देव रघुबीरा | जानतहूँ पूछहु मतिधीरा ||

(इस प्रकार यहां गोस्वामी तुलसीदास जी ने महात्मा शबरी के गुप्तचर होने का संकेत दिया है|)

तब प्रभु श्री राम ने प्रसन्न हो महात्मा शबरी से वर माँगने को कहा|

महात्मा शबरी बोलीं, 'हे प्रभु, आपने मुझे महर्षि कुर्तुक जैसे महाज्ञानी और भगवदप्रिय पिता दिए| उसके पश्चात महर्षि भारद्वाज, महर्षि वशिष्ठ एवं महर्षि मतंग जैसे ब्रह्मज्ञानी

गुरु भी दिए| अपने कार्य में लगा कर मेरा जीवन सार्थक बना दिया| आपका कार्य करते हुए मुझे शबर सेन और उनका परिवार मिला जिनके प्रेम की मैं सदैव कृतज्ञ रहूंगी| अब और मुझे क्या चाहिए, प्रभु? मुझे अपने चरणों में सदैव रखिए तथा मुझे अब साकेत धाम जाने की आज्ञा दीजिए| एक मेरी इच्छा अवश्य है, प्रभु| मैं आपके रावण वध और राज्याभिषेक के पावन चरित्र को सुनना चाहतीं हूँ|'

तब श्री राम बोले, 'हे महात्मन, प्रथम तो मैं तुम्हें इच्छा मृत्यु का वरदान देता हूँ| जब तक इस पृथ्वी पर सूर्य एवं चन्द्रमा रहेंगे तब तक तुम्हारी कीर्ति इस विश्व में उज्जवल रहेगी| तुम्हारे नाम स्मरण मात्र से ही नर, नारियों को मोक्ष मिलता रहेगा| रावण वध और राज्याभिषेक के पावन चरित्र की कथा जानने के लिए मेरी एक प्रार्थना है| साकेत धाम जाने से पहले महर्षि वाल्मीकि की प्रतीक्षा करो| त्रिकालज्ञ ऋषि वाल्मीकि जब तुम्हारे आश्रम आकर भविष्यत् की गाथा गाएँगे, उस से तुम्हारा अत्यंत कल्याण होगा| महर्षि ने मेरे कर्तव्यों की रचना तो पहले से ही कर दी है| मैं तो केवल उनका अनुकरण मात्र कर रहा हूँ|'

यह कहकर प्रभु श्री राम अपने आसन से खड़े हो गए तथा महात्मा शबरी से जाने की आज्ञा मांगने लगे, 'हे महात्मन, अब मुझे शीघ्र किष्किंधा पहुँच हनुमान और सुग्रीव से मिलन करना है| सुग्रीव के कष्टों का हरण करना है एवं फिर सीता की खोज कर उन्हें वापस लाना है| अब हमें प्रस्थान की आज्ञा दो|'

यह सुन महात्मा शबरी के नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी| सजल नेत्रों से प्रेम भरे स्वरों से मंत्रोचारण करते हुए उन्होंने बहुत प्रकार से दोनों भाईयों की स्तुति की और उन्हें अग्नि वाण देकर विदा किया| अब महात्मा शबरी ऋषिवर वाल्मीकि के उनके आश्रम में आने की प्रतीक्षा करने लगीं|

श्री राम के किष्किंधा पर्वत पर श्री हनुमान से मिलन, सुग्रीव से मित्रता, बालि वध एवं सुग्रीव का राज्याभिषेक, यह सब सूचनाएं महात्मा शबरी को मिलती रहीं| तद्पश्चात वर्षा ऋतु आ गई और श्री राम वर्षा ऋतु की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे ताकि सीता की खोज प्रारम्भ की जा सके| दिन बीतते चले जा रहे थे कि एक दिन महात्मा शबरी को आश्चर्यचकित करते हुए महर्षि वाल्मीकि महात्मा की कुटिया पर पधारे|

महात्मा शबरी ने देखा कि चंद्र प्रभा तन पर कोषिक कोपीन लपेटे, विशद भाल पर विशद जटाएँ जग कालिमा समेटे, भव्य तेजमय महर्षि उनकी कुटिया के द्वार पर खड़े मुस्कुरा रहे हैं| महात्मा ने तत्काल ऋषिवर को दंडवत प्रणाम किया और उन्हें कुटिया में ले जाकर एक उच्च आसन पर बिठलाया| सरस मधु कंदमूल फल जल पान में भेंट किए|

महर्षि अत्यंत प्रसन्न हो कर बोले, 'हे महात्मा शबरी, तुम हर प्रकार से शुभ हो| तप श्रम की साकार मूर्ति हो| दृढ संकल्पमती हो| तुम धन्य हो जो तुम्हारी कुटिया को युग पुरुष राम ने स्वयं परम पावन किया है| जीवन के कठोर श्रम तप से महापुण्य प्राप्त कर तुमने चारों आश्रम का सहज शुभ फल पाया है| भद्रे, तुमने जन मानस के लिए जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है| यूँ तो मैं जानता हूँ कि तुमने जीवन में सब कुछ पा लिया है और कुछ पाना अब शेष नहीं रह गया है| फिर भी मैं तुमसे अति प्रसन्न हो कर पूछता हूँ, शुभे, हृदय में कोई अभीष्ट हो तो बताओ|'

करबद्ध तब महात्मा शबरी बोलीं, 'हे पिताश्री के गुरु मेरे पितामह स्वरुप देव, आपका सत्य वचन शाश्वत है| स्वयं श्री राम ने मुझ से कहा है कि आपने उनके जन्म से पूर्व ही उनके जीवन की गाथा की रचना कर दी थी और अनुकरण हेतु आपने उन्हें समय समय पर सुभग मंत्रणा दी|'

तब महर्षि बोले,' हे महात्मा, मुझे इसका श्रेय देना उचित नहीं है| श्री राम नित्य अवतार पुरुष हैं अतः उनकी गाथा भी सर्व विदित है| मुझे तो यह चरित्र ब्रह्मऋषि नारद ने सुनाया था जिसको मैंने केवल काव्य बद्ध किया है|’

'हे भद्रे, जानता हूँ तुम शीघ्र अति शीघ्र साकेत धाम जाना चाहती हो| तुम्हारी जिज्ञासा एवं प्रभु की इच्छा है कि मैं तुम्हारे विष्णुलोक जाने से पहले तुम्हें श्री राम के अयोध्या के राज्याभिषेक, राम राज्य एवं उनके जल समाधि लेकर विष्णु लोक लौटने तक की कथा सुना दूँ ताकि भद्रे, तुम उनका आगे का शुभ चरित्र जान सको| सुग्रीव को राज्याभिषेक तक की कथा तुम जान चुकी हो| अब वर्षा ऋतु समाप्त होने पर सुग्रीव बानरों का दल सीता की खोज में भेजेंगे| श्री हनुमान जी लंका जाकर सीता की खोज करेंगे| तत्पश्चात भालू बानरों की सेना के साथ श्री राम रामेश्वरम में पुल बांधकर लंका पर आक्रमण करेंगे| लंकापति रावण का भाई विभीषण श्री राम की शरण में आ

जाएगा| सोलह दिन तक यह युद्ध चलेगा| रावण एवं कुम्भकरण सहित समस्त राक्षस कुल को मोक्ष देकर, विजयी होने के पश्चात श्री राम विभीषण को लंका का राज्य सौंपेंगे| सीता को तब सम्मान सहित विभीषण श्री राम के पास ले आएँगे| तब प्रतिबिंबित सीता को अग्नि में सौंपकर लक्ष्मी अवतार सीता अग्नि से अवतरित होंगी| सीता के अग्नि से अवतरित होने के बाद समस्त सखाओं को लेकर श्री राम पुष्पक विमान से अयोध्या की ओर प्रस्थान करेंगे| मार्ग में महर्षि भारद्वाज के प्रयाग आश्रम में रुक कर, महर्षि को प्रणाम कर एवं माँ गंगा में स्नान कर, महर्षि कुर्तकी को अपने साथ लेकर वह अयोध्या को प्रस्थान करेंगे| श्री राम की इच्छा है कि गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ के साथ महर्षि कुर्तकी उनका अभिषेक करें| तुम अवश्य नहीं होगी लेकिन तुम्हारा नाम प्रभु के साथ सदैव रहेगा| वनवास की अवधि समाप्त होते ही श्री राम अयोध्या पहुँच भरत को हृदय से लगा अयोध्या का राज्य स्वीकार करेंगे| राम-राज्य की स्थापना होगी जो कई सहस्त्र वर्षों तक चलेगी| राम-राज्य स्थापित कर, समय आने पर अपने दोनों पुत्रों लव और कुश को राज्य देकर, तब श्री राम समस्त परिवार के साथ जल समाधि ले विष्णु लोक को वापस लौट जाएंगे|'

'हे शुभे, श्री राम की इच्छानुसार मैंने श्री राम के इस लोक में भविष्य की संक्षिप्त समीक्षा तुम्हें सुना दी| हे भक्तिमती शबरी, तुम्हारा जीवन यथार्थ में सफल हुआ| तुम्हारी अद्भुत जीवन कथा सदैव जीवित रहेगी| तीनों काल में तुम्हें भक्त शिरोमणि का पद प्राप्त रहेगा| तुम्हारी निष्काम भक्ति को जो भी स्मरण करेगा अथवा गाएगा, मैं वर देता हूँ कि उसे और उसके परिवार को कभी कोई विपदा नहीं व्यापेगी| हे शुभे, तुम्हारी प्रतिमा का जो अर्चन नित्य करेगा उस की समस्त कामनाएं पूर्ण होंगी और उसके गृह में सुख सौभाग्य सदैव रहेगा| उसे यम की यातना कभी नहीं सताएगी| तुम्हारे भक्त को सदैव स्वर्ग का वास ही मिलेगा और यदि उसका पुनर्जन्म हुआ, तो जीवन में नित्य संपन्नता बरसती रहेगी| तुम्हारे श्री राम के प्रति समर्पण का विश्व सदैव ऋणी रहेगा| हे महात्मा, मैं तुम पर बलि, बलि जाता हूँ|'

यह भविष्य कथा सुनकर महात्मा शबरी का तन मन प्रभु के स्मरण में खो गया| उनके नेत्रों से प्रेम अश्रु धार बहने लगी| महर्षि वाल्मीकि के चरणों को अपने अश्रुओं से भिगोती हुए महात्मा शबरी विनीत शब्दों में बोलीं, 'हे प्रभु, मेरी अब समस्त इच्छाएं पूर्ण हुईं| अब आप मुझे साकेत धाम जाने की आज्ञा दीजिए|'

महर्षि वाल्मीकि ने तब उन्हें धरा से उठाकर अपने सीने से लगा लिया और बोले, 'पुत्री, तुम्हारा हृदय तो भगवान् के लिए सदैव ही समर्पित रहा है| इस पृथ्वी पर रहते हुए भी तुम साकेत धाम में ही रही हो| अब यदि इस नश्वर शरीर का त्याग करना चाहती हो, तो मेरी अनुमति है|'

तब महात्मा शबरी ने हृदय से प्रभु को स्मरण करते हुए योगाग्नि द्वारा इस शरीर को भष्म कर प्रभु के धाम को प्रस्थान किया| उनकी भष्मी को तब महर्षि वाल्मीकि ने पम्पा सरोवर में मन्त्रोच्चारण के साथ तर्पण किया और वह अपने आश्रम लौट आए |

श्री राम का राज्याभिषेक

रावण वध, लंका विजय एवं विभीषण को लंका का सिंहासन सौंपने के बाद प्रभु पुष्पक विमान में बैठ कर सभी सखाओं के साथ अयोध्या की ओर चले| मार्ग में समस्त महर्षिओं को प्रणाम करते हुए महर्षि भारद्वाज के आश्रम प्रयागराज पहुंचे जहाँ उन्होंने मुनिवर एवं माँ गंगा की विधिवत स्तुति की और उनका आशीर्वाद पाया| तब प्रभु महर्षि कुर्तकी (श्रमणा) को अपने साथ विमान में बिठा श्रंगवेरपुर की ओर चले| श्रंगवेरपुर पहुँच कर श्री राम ने विमान को गंगातट पर उतरने के लिए प्रेरित किया| जैसे ही निषादराज को प्रभु के आने का समाचार मिला, वह प्रेम से विह्वल होकर गंगा तट की ओर भागे| प्रभु समीप जा कर आनंद समाधि में मग्न होकर दंडवत प्रणाम करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े| तब प्रभु ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया| उसी समय प्रभु ने विस्मय से गंगा तट पर एक विशेष समाज को अस्थायी निवास बना डेरों में निवास करते हुए देखा| उनके प्रमुख टकटकी लगाए प्रभु की ओर देख रहे थे कि प्रभु उन्हें कुछ आदेश दें| प्रभु तुरंत उस उपनिवेश में गए और आश्चर्य से पहचानते हुए जाना कि वह तो अयोध्या के किन्नर हैं| भरत जी के साथ यह किन्नर भी श्री राम को अयोध्या से उन्हें वापस साम्राज्य स्वीकारने की प्रार्थना के साथ मनाने आए थे| श्री राम ने यह प्रार्थना अस्वीकार करते हुए भरत जी को तो अपनी खड़ाऊं देकर विदा किया और समस्त अयोध्या वासियों को १४ वर्ष के वनवास के बाद लौटने का वचन दे कर सब को वापस अपने अपने गृह जाने का आदेश दिया था| लेकिन यह किन्नर अभी यहीं पर क्यों हैं? अयोध्या वापस क्यों नहीं चले गए? प्रभु तुरंत किन्नर समाज के प्रमुख के समीप पहुंचे| किन्नर प्रमुख ने तुरंत प्रभु को दंडवत प्रणाम किया| उसके नेत्रों से अविरल प्रेम अश्रुओं की धारा बह रही थी| प्रभु को इस प्रकार श्रंगवेरपुर में उनकी प्रतीक्षा करते हुए विस्मय होते देख बड़ी विनम्रता से उसने प्रभु को उत्तर दिया, 'हे कृपानिधान स्वामी, आपने समस्त अयोध्यावासी नर, नारी, बालक, बालिका, वृद्ध एवं वृद्धों को तो अयोध्या वापस जाने की आज्ञा दे दी थी, परन्तु किन्नर समाज को सम्बोधित कर हमारे लिए कोई आज्ञा नहीं दी थी| अतः हमने समझा कि प्रभु ने हमें यहीं ठहरकर वनवास से वापस आने तक प्रतीक्षा करने का आदेश दिया है| अतः हम आपके स्वागत के लिए यहीं अस्थायी निवास बनाकर आपके वनवास से लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं|'

उनके इस त्याग से प्रभु के नेत्र नम हो गए| उन्होंने किन्नर समाज के प्रमुख को तुरंत धरा से उठाकर गले से लगाया और सभी किन्नरों से प्रेम से मिले| भाव विह्वल हुए प्रभु ने तब उनको वरदान दिया|

प्रभु बोले, 'हे मेरे भक्त किन्नरो, आज से किसी भी शुभ कार्य में जब तक सर्व प्रथम किन्नरों को सम्मान न दिया जाए तब तक वह शुभ कार्य फलित नहीं हो सकता|'

प्रभु के इसी वरदान के कारण आज तक प्रत्येक शुभ कार्य में प्रथम किन्नरों का सम्मान करने के पश्चात ही शुभ कार्य का प्रारम्भ किया जाता है|

भगवान् श्री राम आगे बोले, 'मेरे प्रिय भक्तो, अब तुम सब भी अयोध्या को प्रस्थान करो| अब वहीं हमारा फिर से मिलन होगा|'

हर्ष एवं उल्लास के साथ तब सभी किन्नरों ने अयोध्या को प्रस्थान किया|

इधर प्रभु ने तब भरत जी को अपने आगमन का समाचार देने के लिए श्री हनुमान जी को अयोध्या के लिए प्रस्थान करने की आज्ञा दी| श्री हनुमान जी के वापस लौटने तक उन्होंने अपना विश्राम स्थल श्रंगवेरपुर को ही बनाया |

श्री हनुमान जी के भरत जी से मिलकर और श्री राम के अयोध्या वापस आने का समाचार उन्हें देकर लौटने के पश्चात निषादराज को भी अपने साथ पुष्पक विमान में बिठा स्वयं भी तब उन्होंने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया|

अयोध्या पहुँचने पर श्री राम का भव्य स्वागत हुआ| सर्व प्रथम श्री राम दंडवत प्रणाम कर गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ से मिले| तद्पश्चात सभी भाईओं, माताओं, प्रशासनिक अधिकारिओं एवं समस्त प्रजा से मिले| महर्षि कुर्तकी ने महर्षि वशिष्ठ को प्रणाम कर उनके चरणों की वन्दना की| महर्षि वशिष्ठ ने तब उन्हें तुरंत अपने सीने से लगा लिया और आदेश दिया, 'अब देरी किस बात की महर्षि कुर्तकी, तुरंत श्री राम के राज्याभिषेक की तैयारी करो|'

महामंत्री सुमंत ने तब महर्षि कुर्तकी के निर्देशन में श्री राम के राज्याभिषेक के लिए समस्त ब्राह्मणो को आंमत्रित किया तथा दूतों को भेजकर सभी मांगलिक वस्तुएं मंगाईं|

महर्षि वशिष्ठ ने एक दिव्य सिंहासन मंगवाया| श्री राम और सीता जी गुरुदेव के चरणों में सर नवाकर उस आसान पर बैठे| तब महर्षि कुर्तकी ने समस्त उपस्थित ब्राह्मणों के साथ वेद मन्त्रों का उच्चारण प्रारम्भ किया| सर्व प्रथम गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ ने श्री राम को तिलक किया, उसके पश्चात महर्षि कुर्तकी ने|

इस प्रकार वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ श्री राम का राज्याभिषेक हुआ|

ॐ स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाः | स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः |
स्वस्ति नस्ताक्ष्योर्यो अरिष्टनेमिः | स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ||
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः |

राज्याभिषेक के पश्चात महर्षि कुर्तकी अयोध्या में महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में रहने आ गईं| एक दिवस श्री राम गुरुदेव वशिष्ठ के आश्रम में विशेषतः महर्षि कुर्तकी से मिलने गए| गुरुदेव को प्रणाम कर महर्षि कुर्तकी को आदर सम्मान देते हुए वह उनका गुणगान करने लगे|

प्रभु बोले, 'हे श्रमणा, तुम्हारी भक्ति को मैं नमन करता हूँ| मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूँ, वर मांगो|'

तब महर्षि कुर्तकी करबद्ध प्रभु के समक्ष खड़ी हो गईं और बोलीं, 'हे प्रभु, आपने महात्मा शबरी को नव-विधा-भक्ति का ज्ञान दिया| मैं भी आपके श्री मुख से कुछ ज्ञान सुनने के लिए बेचैन हूँ| अतः मुझे अपनी शरण में लेते हुए मेरा अज्ञान दूर करें|'

तब प्रभु मुस्कुरा कर बोले,'हे श्रमणा, मैं कुछ नीति संक्षेप में कहता हूँ, ध्यान से सुनो| मानव तन के समान कोई शरीर नहीं है| यह मानव तन ही नर्क, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है| इस पावन मानव तन धारण करने के पश्चात भी जो भगवद्भक्ति में लीन नहीं होते और सांसारिक विषयों

में अनुरक्त रहते हैं, वह पारसमणि त्याग कर बदले में कांच के टुकड़े ले लेते हैं| इस संसार में दरिद्रता के समान कोई दुःख नहीं है तथा संत समागम के समान कोई सुख नहीं है| हे भद्रे, मन, वचन और तन से परोपकार करना संतों का सहज स्वभाव है| संत दूसरों की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुंचाने के लिए| कृपालु संत दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति भी सहते हैं| हे सुमुखी, सब रोगों का मूल अज्ञान है| नियम, धर्म, उत्तम आचरण, तप, ज्ञान, यज्ञ, दान अदि मानव को सुख, शांति और अंततः मोक्ष दिलाने की औषधियां हैं| भगवद्भक्ति संजीवनी बूटी है| हृदय में वैराग्य मन और तन दोनों को सुखी करता है|'

प्रभु के यह ज्ञानरूपी वचन सुनते हुए महर्षि कुर्तकी भगवान् की भक्ति में लीन हो ध्यानावस्था में पहुँच गईं| उनके नेत्र बंद हो गए| श्वास गति अत्यंत धीमी हो गई और प्रभु के समक्ष तब उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया| प्रभु ने जब यह देखा तो वह तुरंत उठे| श्रमणा का सर उन्होंने अपनी गोद में ले लिया और प्रेम भरे शब्दों में बोले, 'हे भद्रे, अब तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा| तुमने योगियों को भी दुर्लभ ब्रह्म लोक में अपना स्थान पा लिया|'

श्री राम ने महर्षि वशिष्ठ एवं अन्य आश्रम वासियों के साथ स्वयं अपनी महान भक्त महर्षि कुर्तकी (श्रमणा) का अंतिम संस्कार किया और अपने महल को वापस लौट गए|

कृष्ण भक्त सहजो बाई

आमुख

युगों युगों से मानव शांति, सुख और आनंद की खोज कर रहा है| यज्ञ, जप, तप, भजन, पूजन, उपदेश आदि सब शांति, सुख और आनंद की प्राप्ति के लिए करता चला आ रहा है किंतु फिर भी यह प्राप्त नहीं हो पाते| संभवतः इसका क्या कारण हो सकता है? महाकवि श्री अवधेश जी के इस कथन को सुनिए| मानव अपने आप को धार्मिक मानता हुआ रामायण, गीता, भागवत आदि का पारायण करके ही अपने कर्तव्यों की इति मान लेता है तथा पुण्य प्राप्ति की कल्पना करने लगता है| सत्यता यह है कि जब तक इन महान पुस्तकों के कथन को आचरण में नहीं उतारा जाता तब तक शांति, सुख और आनंद मिलना कठिन ही नहीं, असंभव है| जिन महापुरुषों एवं महामाताओं ने इसे आचरण में उतारा, उन्हें आनंद की प्राप्ति हुई है|

गोस्वामी तुलसीदास ने देश, काल एवं परिस्थिति की विभीषिका को देखते हुए ही चरित्र पर बल दिया है| सब को अपने कर्मानुसार फल मिलता ही है|

कोऊ न काहु सुख-दुःखकर दाता | निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ||

मानव अज्ञान में, विशेषकर, दुःखों का दोष ईश्वर को देने लगता है| प्रश्न उठता है कि जो मानव सहज सुख रासी है, वह निस्तेज, समल, सहज दुःख रासी क्यों बन रहा है? इसका कारण केवल यह है कि वह अपने कर्तव्य को भूला हुआ है| एक आदर्श को सामने रखकर उसे अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ होना है, असत से सत की ओर, तम से ज्योति की ओर बढ़ना है, पर वह लौकिक भोग विलास में पड़ कर ऐसा नहीं करता| मानव की कामना अपने अखंड ज्योतिर्मय अंशी से मिलना होनी चाहिए| तभी उसका संसार में मानव जन्म लेना सार्थक होगा| यह संभव तभी होगा जब हम महान पुरुषों एवं महान माताओं के मानव चरित्र को अपने आचरण में लाने का प्रयास करेंगे| उनके चरित्र को सँभालकर अनुसरण करेंगे|

जो प्रबंध नहिं बुध आदरहीं | सो श्रम वाद बाल कवि करहीं ||
कीरति भनिति भूति भलि सोई | सुरसरि सम सबकर हित होई ||
जे गावहिं यह चरित संभारे | सो यहि ताल चतुर रखवारे ||

अतीत को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत करना, देवत्व मानवीय परिप्रेक्ष्य में दिग्दर्शन कराना माता सहजो बाई के चरित्र चित्रण का मुख्य उद्देश्य है| माता सहजो बाई न तो ब्याहता थीं और न ही शृंगार प्रसाधन युक्त सधवा नारी, पत्नी अथवा प्रियतमा| वह एक महान तपस्विनी थीं| माता सहजो बाई के पूर्व जन्म की कथा तथा अनेक विचारकों के मतों में उनका गुरु और प्रभु के प्रति प्रेम उसी प्रकार का है जैसा कि मीरा बाई का भगवान् कृष्ण के प्रति|

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का परिचय देने के लिए उसके रूप, गुण कर्म, स्वभाव और नाम की आवश्यक्ता होती है| इतिहास की पुस्तकों में माता सहजो बाई की कथा अति संक्षिप्त रूप से मिलती है| उस संक्षिप्त रूप को प्रबंधात्मक स्वरूप देने के लिए विकसित रूप रेखा देना अति आवश्यक है और यह कथा उस लक्ष्य की पूर्ति करती है|

माता सहजो बाई एक वैश्य कन्या थीं| आदि काल से कुछ कथा कथित विद्वानों द्वारा आध्यात्मिकता संभवतः ब्राह्मण जाति के लिए ही आरक्षित समझी जाती रही है| किंतु विकास जाति और धर्म पर निर्भर नहीं होता| सभी को अपने को विकसित करने का अधिकार है| उतिष्ठ जाग्रत् का उद्घोष प्राणी मात्र के लिए है, जाति-धर्म का इसमें प्रतिबंध नहीं है| एक वैश्य कन्या माता सहजो बाई गुरु भक्त एवं भगवद्भक्त के रूप में उठीं| यह विडम्बना ही रही कि उनके इन गुणों के वर्णन करने में कथाकार अधिकतर मौन रहे| उनकी लोक कल्याण की बहुमुखी प्रतिभा प्रस्फुटित नहीं हो पाई|

अधिकांश भक्त पात्रों ने प्रभु से कुछ न कुछ माँगा ही है| यहाँ तक कि भक्त प्रवर हनुमंत लाल जी ने भी श्री राम से माँगा:

नाथ शैल पर कपि पति रहई | सो सुग्रीव दास तव अहई ||
तेंहिं सन नाथ मयत्री कीजै | दीन जान तेहिं अभय करीजे ||

भले ही उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं माँगा| किंतु अपने राजा के लिए तो माँगा| उनका माँगना परोपकारी अवश्य है, किंतु है तो माँगना ही| माता सहजो बाई ने श्री कृष्ण के वरदान देने पर भी कुछ नहीं माँगा| केवल इतना ही कहा, 'प्रभु आपने मुझे गुरु दे तो दिए हैं न? इससे अधिक और मुझे कुछ नहीं चाहिए|'

उन्होंने कुछ नहीं चाहा, फिर भी उन्हें सब कुछ मिल गया| जीवन भर गुरुदेव और श्री कृष्ण की आराधना करती रहीं और भगवान् का ही कार्य जान कर लोक हितैषी कार्यों में रत रहीं| ऐसी उदात्त चरिता धीरोललित भक्त शिरोमणि माता सहजो बाई इस कथा की प्रधान नायिका हैं| भक्ति मूर्ति माता सहजो बाई के रूप, गुण, कर्म, स्वभाव की सामग्री पर्याप्त रूप से इस कथा में प्रतिपादित की गई है| जब रूप, गुण, कर्म, स्वभाव का परिमार्जन किया गया है तो नाम का परिमार्जन भी आवश्यक है| कोष के अनुसार सहजो शब्द का अर्थ है, सहज आचरण वाली स्त्री| यह नाम माता सहजो बाई के लिए सार्थक है| इस कथा में उनके यश, वैभव और प्रतिभा का वर्णन करने का प्रयास किया गया है|

इस कथा का यही आदर्श है कि इस में माता सहजो बाई के आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक प्रसंगों के गूढ़तम तथ्यों को अत्यंत सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है| किसी रचना की कसौटी भोला भावुक हृदय है जो इस कथा की लेखनी से संभवतः पाठकों को स्पष्ट हो जाएगा|

माता संत सहजो बाई के चरित्र को अपने जीवन में आप उतार सकें, इस के लिए ईश्वर से हम प्रार्थना करते हैं| इसी से सुख, शांति एवं आनंद की प्राप्ति होगी|

संत सहजो बाई - साहित्यकारों की दृष्टि में

सभी हिंदी साहित्यकारों का ऐसा मत है कि संत सहजो बाई ने मीराबाई की भांति अपनी रचनाओं में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता की दिशा निर्देश की है| अभाग्य से उनकी रचनाओं का अपेक्षित मूल्यांकन आलोचकों के एक पक्षीय दृष्टिकोण तथा पुरुषवादी सामंती विचारधारा के कारण संभव नहीं हो पाया| आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सहजो बाई की गुरुभक्ति, भगवद् प्रेम भाव, भाव विह्वलता, आत्म-समर्पण का उल्लेख संक्षिप्त रुप में अवश्य किया है लेकिन उनके

साहित्य के योगदान का विस्तृत वर्णन करने में उनसे भी चूक हुई है| डॉ रामकुमार वर्मा ने भी अपनी पुस्तक ‘हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास’ में संत चरण दास एवं सहजो बाई के साहित्य का संक्षिप्त में ही उल्लेख किया है|

डॉ जगदीश चतुर्वेदी जी ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि साहित्य की मुख्य धारा ने स्त्री संतों जैसे सहजो बाई की अस्मिता, आकांक्षाओं, इच्छाओं, आवश्यक्ताओं, अनुभवों एवं मनः स्थिति की कुल मिलाकर उपेक्षा की है| हिंदी के आचार्यों ने अभाग्य से उनके साहित्यिक योगदान के साथ न्याय नहीं किया है|

यह सभी आलोचकों का मानना है कि सहजो बाई ने अपनी रचनाओं में अपने अनुभवों से यथा संभव सामाजिक कुरीतिओं पर प्रहार किया है| सहजो बाई अपने समय की सामाजिक व्यवस्था से पूर्ण परिचित थीं तथा उसमें प्रचलित अमान्य विचारों का विरोध करती थीं| स्वयं सहजो बाई ने अपनी रचनाओं में यह दर्शाया है कि संभवतः राजकुल की मीराबाई के लिए अपने निर्णय लेना जितना सहज था, वैश्य कुल की सनातन धर्मी परिवार की सहजो बाई के लिए उस समय में प्रचिलित सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति पाना उतना ही कठिन था| उन्होंने हिन्दू सनातन धर्मी महिलाओं को मीराबाई की ही भांति जाति और कुल की मर्यादा को तिलांजलि देने का निर्देश दिया है|

चरनदास सतगुरू दियो, प्रेम पिलाया छान |
सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान ||
प्रेम दिवाने जो भये, जाति वरन गइ छूट |
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ||

सहजो बाई ने पुरुष केन्द्रित समाज में स्त्री-पुरुष संबंध की विडंबना की स्थिति पर प्रहार करते हुए परिवार में स्त्री-पुरुष के मध्य असमान श्रम विभाजन का विरोध किया है| उन्होंने स्त्री की रूढ़िवादी छवि को तोड़ते हुए उस संतत्व को प्राप्त किया जो मध्यकालीन समाज में एक असंभव सी बात थी| उस समय यह अधिकार तथाकथित आचार्यों द्वारा केवल पुरुषों को ही दिया गया था| उन्होंने उदाहरण के तौर पर मोक्ष प्राप्त करने की परंपरागत मान्यता (पति की सेवा) से अलग मोक्ष यात्रा गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति एवं समाज सेवा से प्रारम्भ होती है, ऐसी शिक्षा दी| उनकी रचनाओं में

व्यक्त नारी विमर्श को एक स्वतंत्र आत्म निर्भर भगवद्भक्त समाज सेवी महिला के रूप में देखना उचित होगा|

जन्म

संत सहजो बाई के पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी और उनकी माता श्रीमति अनूपी देवी थीं| मूलतः वह राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र के रहने वाले थे परन्तु जीविका हेतु दिल्ली के पास एक नगर परीक्षितपुर में आ बसे थे| पूरे उत्तर भारत में सूखे मेवाओं के वह एक छत्र व्यापारी थे| उन पर माता लक्ष्मी की वैभवता पूर्वक कृपा दृष्टि थी| दानीओं में तो उनकी तुलना दानवीर कर्ण से की जाती थी| उन्होंने व्रत ले रखा था कि अपने गृह के आस पास पांच मील के क्षेत्र में किसी को भूखा नहीं सोने देंगे|

अट्ठारवीं सदी के प्रारम्भ का समय था| अभाग्य से उस समय राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में, जहां के साहूकार श्री हरि प्रसाद जी मूलतः निवासी थे, भीषण अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी| वह कैसा दुःखदायी और भयानक समय था? यह सोचकर आज भी उनकी रूह काँप जाती थी| लोग भूख से मर रहे थे| कहीं भी खाने पीने की वस्तुएं उपलब्ध नहीं थीं| लोग आश्रय की तलाश में यहां वहां भटक रहे थे| लेकिन न उन्हें रहने की जगह मिलती, न कुछ खाने को| कूड़ेदानों को ही तलासते रहते कि संभवतः वहां कुछ तो पेट भरने के लिए मिल जाय| लेकिन वहां भी उन्हें कुत्ते, बिल्लियों से संघर्ष ही करना पड़ता था| जहां तहाँ क्षेत्र कंकालों से भर गए थे|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने अपने क्षेत्र में राहत कर्मियों के एक छोटे से दल का संगठन किया और मारवाड़ क्षेत्र पहुँच गए| अपने साथियों के साथ वह मारवाड़ क्षेत्र के आस पास सभी गाँव में जाकर सभी निर्धन लोगों को खाद्य व्यवस्था प्रदान करने का यथा संभव प्रयास करने लगे| अपना स्वयं का खाद्य भण्डार भी अपने साथ इस अकाल ग्रस्त क्षेत्र में ले गए| उनका अपना अन्न भण्डार भी समाप्ति के कगार पर था फिर भी अपने और अपने परिवार का ध्यान न रखते हुई उन्होंने निर्धनों की यथा संभव मदद की| कहते हैं कि अगर साहूकार श्री हरि प्रसाद जी और उनकी राहत कर्मियों की टोली ने यह सामयिक सहायता नहीं पहुंचाई होती तो सहस्रों की संख्या में लोग भूख से मर चुके होते| कहावत है कि हर अच्छा बुरा समय कट ही जाता है, वह बुरा समय भी किसी तरह कट गया|

ऐसे महादानी और परोपकारी पुरुष साहूकार श्री हरि प्रसाद जी थे | भगवान् ऐसे महापुरुषों को भी विषाद ग्रस्त कर सकता है, साधारण बुद्धि से तो यह बाहर ही

लगता है| साहूकार श्री हरि प्रसाद जी प्रौढ़ावस्था में कदम रख चुके थे परन्तु भगवान् ने उन्हें कोई संतान नहीं दी थी| संतान विहीन होने का दुःख उन्हें बहुत सताता था|

इसी दुविधा में सोच विचार करते हुए साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बहुत उदासीन अवस्था में एक दिन अपनी दुकान की गद्दी पर बैठे थे| वह गहन चिंतन में थे कि तभी एक स्वर सुनाई दिया, 'सेठ जी, सौ सेर काजू और सौ सेर अखरोट तुलवाईए|'

लेकिन सेठ जी तो न जाने किस दुनिया में खोए हुए थे| इस व्यापारी के शब्द सुने अनसुने हो गए| यह व्यापारी सेठ धनराज जी साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के पुराने मित्र थे| अपने मित्र को समीप पहुँच कर झकझोड़ दिया और बोले, 'क्या बात है मित्र? इतने उदासीन एवं गुमशुम हो कर किन गहन विचारों में खोये हुई हो?'

कहते हैं कि दुःखी अवस्था में अगर परम हितकारी मित्र के दो सहानुभूति भरे शब्द मिल जाएं तो दुःखी व्यक्ति को अपना दुःख दर्द कहकर बोझ हल्का करने का एक कांधा मिल जाता है | यही साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के साथ भी हुआ| अपने परम मित्र सेठ धनराज जी को सम्मुख देख एवं इस तरह सहानुभूति शब्द बोलते देख साहूकार श्री हरि प्रसाद जी का रोना छूट गया और बोले, 'मित्र, तुम तो जानते ही हो| माँ लक्ष्मी ने वैसे तो सब कुछ दिया है परन्तु संतान विहीन रखा है| मेरे किन कर्मों का यह दंड मुझे माँ ने दिया है? इस जन्म में तो मैंने जहां तक मेरी स्मृति जाती है, ऐसा कोई अशुभ कार्य माँ को अप्रसन्न करने वाला नहीं किया| पिछले जन्म का मैं जानता नहीं| क्या कोई विधि है जिससे मुझे संतान का मुख दिख सके?'

साहूकार श्री हरि प्रसाद के यह दुःख भरे वचन सुनकर सेठ धनराज जी बोले, 'अवश्य मित्र| तुम संभवतः भूल गए हो कि तुम्हारे ममेरे भाई संत चरण दास जी एक सिद्ध पुरुष हैं| उनके आश्रम जाओ और उन्हें अपनी व्यथा सुनाओ| वह अवश्य ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे|'

'हाँ मित्र, जानता हूँ, अवश्य जानता हूँ| परन्तु संत चरण दास जी एक महान वैरागी संत हैं| उन्हें इन सब सांसारिक वस्तुओं से कोई लेना देना नहीं है| उन्होंने तो यह सांसारिक मोह माया अल्पायु में ही छोड़ दी थी', साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बोले|

‘मित्र, संतों का हृदय तो अत्यंत दयावान और कृपालु होता है| उनका जीवन हम सांसारिक लोगों के मार्ग दर्शन के लिए ही समर्पित होता है| अब वह समस्या सांसारिक हो अथवा आध्यात्मिक, अवश्य ही उसका समाधान उनके पास होगा| मित्र, सकुचाओ नहीं और अपना हृदय संत के चरणों में रख दो’, सेठ धनराज जी बोले|

सेठ धनराज जी की बात का साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपना मन मार्ग दर्शन हेतु अपने ममेरे भाई संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम अपनी धर्म-पत्नी श्रीमति अनूपी देवी के साथ दिल्ली जाने का बना लिया| एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर वह अपनी धर्म-पत्नी श्री मति अनूपी देवी के साथ संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम दिल्ली पहुँच गए|

जब उन्होंने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के दिल्ली स्थित आश्रम में प्रवेश किया तब वहां की भव्यता वह देखते ही रह गए| आश्रम में प्रवेश करने मात्र से ही उनका अशांत मन शांत हो गया|

आश्रम का प्राकृतिक वातावरण देखते ही बनता था| उन्हें प्रतीत हुआ कि अवश्य ही ईश्वर ने समस्त प्राकृतिक सुंदरता का वरदान संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम को ही दे दिया है| सुंदरता देखते देखते जैसे आँखे थक ही नहीं रहीं थीं| संत के आश्रम में जैसे मानव और प्रकृति के बीच का रिश्ता ही समाप्त हो गया था| चिड़ियों का चहचहाना, यमुना नदी का तट, नदी की कुलकुलाहट का स्वर, वृक्ष, फूलों से सुगन्धित वनस्पति पौधे और ऊपर से शिष्यों द्वारा धीमी धीमी मंत्रोचारण ध्वनि, बस, देखते ही बनती थी|

आश्रम के द्वार पर पहुंचते ही संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के एक शिष्य ने साहूकार श्री हरि दास जी एवं उनकी पत्नी श्रीमति अनूपी देवी जी को पहचान लिया| तुरंत दौड़ कर आया| उन दोनों के चरण स्पर्श किए और बोला, ‘काका, आपने अपने आने का कोई समाचार नहीं भेजा| सब ठीक है न|’

साहूकार श्री हरि दास जी इस संत चरण दास जी के शिष्य से बोले, 'हाँ पुत्र छीतरमल, सब कुशल मंगल है|’

यह संत जी का शिष्य छीतरमल कोई और नहीं, बल्कि उनका स्वयं का भतीजा ही था|

'संत जी कैसे हैं?' साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने पूछा|

‘सब कुशल मंगल है| आप यात्रा से थके हुए हो| हाथ मुँह धो थोड़ा अल्पाहार और विश्राम कर लो फिर मैं आपको और काकी को संत जी के समक्ष ले चलूँगा| आपको देखकर'बहुत प्रसन्न होंगे’, छीतरमल ने प्रत्युत्तर दिया|

यात्रा की थकावट तो आश्रम के वातावरण ने तुरंत ही हर ली थी फिर भी छीतरमल का हृदय रखने के लिए वह स्वयं एवं श्रीमति अनूपी देवी जी उस के साथ अतिथि आवासगृह चले गए| हाथ पैर धो कर बैठे ही थे कि छीतरमल ने फलों की टोकरी के साथ प्रवेश किया| साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी ने फलाहार किया और विश्राम हेतु चारपाई पर लेट गए| थकावट तो थी ही फिर भोजन भी कर लिया था| प्रौढ़ शरीर अर्धसुप्त अवस्था में आ गया| निद्रा के आगोश में आते ही मधुर स्वप्नों ने उन्हें घेर लिया| उन्होंने देखा कि एक अत्यंत सुन्दर कन्या एक ब्रह्मचारिणी की वेशभूषा में उनसे कुछ कहना चाहती थी|

'क्या कह रही हो पुत्री? स्पष्ट शब्दों में कहो| मुझेकुछ समझ नहीं आ रहा', साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बोले|

'मैं तो कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, बाबा| आपने आने में इतनी देर क्यों लगा दी?', यह मधुर शब्द साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को सुनाई दिए|

भड़भड़ाहट में तुरंत आंखें खुल गईं| अपनी पत्नी श्रीमति अनूपी देवी जी को उन्होंने इस स्वप्न के बारे में बताया और इसे अत्यंत शुभ शगुन मानकर छीतरमल के आने की प्रतीक्षा करने लगे जो उन्हें संत जी से मिलवाएगा|

कुछ ही समय के बाद उन्होंने देखा कि छीतरमल के साथ स्वयं संत चरण दास जी ही उनकी ओर आ रहे थे| तुरंत दोनों पति-पत्नी संत जी के स्वागत में खड़े हो गए| उनके हृदय में भावना आई कि तुरंत उनके पैर छूएं, लेकिन उन्हें अचम्भा हुआ जब

संत जी उनके पैरों की ओर झुके और साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी का उन्होंने चरण स्पर्श किया|

'भैया, भाभी, बहुत दिनों बाद दर्शन दिए| आशा है सब कुशल मंगल होगा,' संत जी के शब्द सुनाई दिए|

दोनों पति-पत्नी, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए| उन्होंने तो कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि संत जी इस प्रेम से उनसे मिलकर उनके चरण स्पर्श करेंगे| कहाँ सिद्ध पुरुष संत शिरोमणी श्री चरण दास जी और कहाँ वह एक साधारण पुरुष| हाँ, आयु में वह अवश्य संत जी से बड़े थे लेकिन सम्मान का हेतु आयु नहीं, ज्ञान युक्तता होती है| संत जी की इस विनम्रता से दोनों की आँखे नम हो गईं| वह रोने लगे और अपने भैया से चिपट गए|

'भैया, भाभी अभी आप थोड़ा विश्राम करो| सांय स्तुति के समय छीतरमल आपको मंदिर ले आएंगे, वहीं फिर मिलन होगा', कहकर संत जी चले गए|

कुछ दिवस आश्रम में रहते इसी प्रकार बीत गए| प्रतिदिन प्रातः सांय श्री संत जी के दर्शन होते थे, बातें भी होती थीं, परन्तु साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को अपना हृदय खोलने का अवसर नहीं मिल पा रहा था|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को संत जी के आश्रम में आए अब एक सप्ताह बीत गया था| उनका साहस ही नहीं हो पा रहा था कि संत जी के समक्ष अपने हृदय की व्यथा खोल सकें| फिर संत जी तो सदैव शिष्यों और आगुन्तकों से घिरे रहते थे| कब और किस तरह से उनसे व्यक्तिगत रूप में मिलन हो, इसकी संभावना ही दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी| उन्होंने सोचा कि छीतरमल से बातें करेंगे| वह अवश्य ही कोई उपाय बताएगा| वह यह सोच ही रहे थे कि उन्होंने छीतरमल को अपनी ओर आते देखा| वह बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में था| काका काकी के चरण स्पर्श किए और कहा, 'संत जी आश्रम के द्वार समीप यमुना तट पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं| जब समय मिले, वहीं आ जाएं|'

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी की आँखों से आंसू निकल पड़े| संत जी का कितना विनम्र स्वभाव है| जब मुझे समय हो तब मैं मिलने आ जाऊं, ऐसी विनम्रता| तुरंत पत्नी सहित छीतरमल के साथ संत जी से मिलने चल दिए|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी यमुना तट पर शांत मुद्रा में बैठे संत जी के समीप पहुंचे| फिर वही शिष्टाचार| संत जी उठे और साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के चरण स्पर्श करने लगे| साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने विचार किया कि यह तो घोर पाप है कि एक संत साधारण पुरुष के चरण छूए| तुरंत साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने संत जी का हाथ पकड़ लिया| उन्होंने न अपने और न ही पत्नी के चरण स्पर्श करने दिए| तब वहीं यमुना तट पर आसन पर सभी बैठ गए|

धीमे धीमे स्वर में संत जी ने बोलना प्रारम्भ किया, 'भैया, भाभी, मीराबाई स्वयं आपके गृह में अवतार ले रहीं हैं | बस, वृंदावन जाकर बांके बिहारी का आशीर्वाद ले लो|’

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी तो अपने हृदय में सोचे बैठे थे कि वह संत जी से संतान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करेंगे| लेकिन उन्हें अन्तर्यामी संत जी के बारे में कुछ आभास नहीं था| अपनी मूर्खता पर क्रोध आने लगा| जीवन बिता दिया| प्रौढ़ अवस्था में प्रवेश कर लिया फिर भी संत की महत्वा को नहीं समझ सके| संत तो अन्तर्यामी होते हैं| उनसे कुछ कहने की आवश्यक्ता ही नहीं| केवल मिलन एवं दृष्टि से ही वह मन की व्यथा समझ उसके समाधान का तुरंत आशीर्वाद दे देते हैं| साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला| बस संत जी की ओर एक टक उसी प्रकार देखते रहे जैसे चकवा चन्द्रमा को देखता रहता है| फिर थोड़ी देर में संत जी के शब्दों ने उनका ध्यान तोड़ा|

'भैया, भाभी, अब मुझे आज्ञा दें| मेरा चिंतन का समय प्रारम्भ हो गया है| आप जब तक चाहें आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करें और जब मन हो तब वृंदावन बांके बिहारी के दर्शनार्थ प्रस्थान करें|’

इन प्रेम भरे संत जी के शब्दों को सुनकर साहूकार श्री हरि प्रसाद जी भावाविहोर हो गए| उन्होंने संत जी के कर कमलों को अपने हाथ में ले लिया और बोले, 'हे भाई, मुझे आज ही विदा करो| मैं बांके बिहारी जी के दर्शन के लिए अत्यंत व्याकुल हूँ|'

'जैसी आपकी इच्छा भैया, भाभी', कहकर संत जी ने प्रेम दृष्टि से साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी को देखा और वह चले गए|

छीतरमल ने उनकी विदाई की और वृंदावन जाने का पूरा प्रबंध उसने कर दिया|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी वृंदावन पहुंचे| छीतरमल जी ने एक पत्र द्वारा श्री कृष्ण धर्मशाला के प्रबंधक को जो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के भक्त थे, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के बारे में अवगत कराया| स्वयं संत जी के भाई आज उनकी धर्मशाला में पधार रहे हैं, इस प्रसन्नता से उनका हृदय अति प्रफुल्लित हो उठा| उन्होंने प्रेम से साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी का स्वागत किया और उनके सुविधापूर्वक रहने की पूर्ण व्यवस्था की|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बांके बिहारी की महिमा के बारे में सोचने लगे| उन्हें अपने पिता के शब्द याद आने लगे कि श्री बांके बिहारी जी का मंदिर किसी ने निर्मित नहीं किया अपितु बिहारी जी की यह प्रतिमा श्री स्वामी हरिदास जी के द्वारा संगीत साधना से प्रगट हुए थी| उनके पिताजी ने बताया था कि श्री बांके बिहारी जी की प्रतिमा कोई एक मूर्ति नहीं परन्तु साक्षात श्री कृष्ण भगवान् एवं श्री माता राधा रानी की उपस्थिति है| प्रति दिन न जाने यहां कितने चमत्कार होते हैं| उन्हें देखने के लिए सिर्फ नेत्र ही काफी नहीं है| उनके दर्शन के लिए प्रेम भाव भी होना चाहिए|

पिताश्री के शब्दों की उन्हें स्मृति आ गई, 'हे पुत्र, श्री बांके बिहारी जी का प्राकट्य बहुत ही अद्भुत था| श्री स्वामी हरिदास जी के भगवान् के प्रति प्रेम भाव का हृदय से समर्पण स्वीकार कर भगवान् कृष्ण माता राधा रानी के साथ स्वयं प्रगट हुए थे,’ पिताश्री के शब्द उनके कर्णों में गूंजने लगे|

पिताश्री ने आगे कहा था, ‘पुत्र, श्री स्वामी हरिदास जी कोई और नहीं बल्कि संगीत सम्राट तानसेन एवं संगीत सम्राट बैजू बावरा के गुरु ही थे| श्री स्वामी हरिदास जी का जन्म राधा अष्टमी के दिन हुआ था| वह ललिता सखी के अवतार थे| ललिता सखी राधा रानी की अति प्रिय सखी थीं| उनको बचपन से ही ध्यान और ग्रंथों में अधिक रूचि थी| कृष्ण भगवान से उन्हें अत्यंत स्नेह था|’

युवा हरिदास जी सांसारिक सुख से दूर रहे और ध्यान पर केंद्रित हो गए| श्रीमति हरिमती जी के साथ समय से उनकी शादी तो अवश्य हुई पर वह बिलकुल ही अलग थे| उन्हें सांसारिक सुख से कोई मोह नहीं था| श्रीमति हरिमती जी इस को अल्प काल में ही समझ गईं कि उनके पति का प्रेम प्रभु के प्रति अतुल्य है| धीरे धीरे समय बीता और वह दिन आ गया जब श्री स्वामी हरिदास जी वृन्दावन के लिए निकल पड़े| उस समय वृन्दावन एक घना जंगल था| उन्होंने अपने निवास के लिए एक निर्जन स्थान चुना जिसे अब निधिवन के रूप में जाना जाता है| उन्हें संगीत में अत्यंत रूचि थी| वह संगीत सम्राट थे| अपने संगीत को उन्होंने प्रभु को समर्पित कर रखा था| संगीत के साथ वह नित्य आनंद के साथ प्रभु की रास लीला और विहार का चित्रण करते रहते थे| साधना का उनका नियम भगवान की स्तुति में गीतों को लिखना और उन्हें अपने संगीत में बांधकर गाते रहना था| इससे उन्हें भगवान की निकटता की प्रसन्नता का आनंद अनुभव होता था| उन्होंने निर्वाण के प्रवेश द्वार के रूप में निधिवन में एक निर्जन और घने वन क्षेत्र कुंज को चुन लिया और अधिकतर वहीं ध्यानावस्था में रहते थे| अनन्त आनंद के महासागर निधिवन में गायन, ध्यान और नाम संकीर्तन करते रहते थे| जब श्री स्वामी हरिदास जी संगीत साधना से बांके बिहारी जी को रिझाते थे तो उस निधिवन की हर एक डाल भक्ति रस में श्री राधा कृष्ण प्रेम में झूम उठती थी| पूरे निधिवन में एक अद्भुत प्रकाश फैल जाता था| भगवान् कृष्ण के श्री स्वामी हरिदास दीवाने रहते थे| उनके रूपों का जिस प्रकार वर्णन करते थे, ऐसा लगता था कि स्वयं बांके बिहारी जी के उन्हें दर्शन हो रहे थे|

अन्य साधारण पुरुष की आँखें एक प्रकाश के अतिरिक्त कुछ और नहीं देख पातीं थीं| तब लोगों ने उनसे विनती की, ‘हे स्वामी जी महाराज, हमें भी बांके बिहारी जी के दर्शन कराओ|’

उनकी करुण पुकार सुनकर और उन सब के हृदय की वेदना सुन स्वामी जी ने भगवान् से विनती की|

स्वामी जी महाराज प्रभु श्री कृष्ण से बोले, ‘हे प्रभु, जिस छठा का मैं दर्शन करता हूँ, उसका दर्शन सब करना चाहते हैं| हे भगवन्, कृपा करके आप प्रगट हो जाएं जिससे सभी आपका दर्शन कर सकें और अपना जीवन सफल बना सकें|’

स्वामी हरिदास जी गाने लगे:

भाई री सहज जोरी प्रकट भई, जुरंग की गौर स्याम घन दामिनी जैसे |
प्रथम था हुती अब हूं आगे हूं रहि था न टरि था तैसे ||

अंग अंग की उजकाई सुघराई चतुराई सुंदरता ऐसे |
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा पुंज बिहारी सम वैसे वैसे ||

भगवान् का हृदय तो माखन की तरह करुणा और दयामयी होता है, अतः स्वामी जी के निवेदन से कृष्ण और राधा रानी ने दर्शन देने की मति बना ली| लेकिन राधा रानी के प्रताप को सहन करना सामान्य लोग के सामर्थ्य में नहीं था|

स्वामी जी ने प्रार्थना की, ‘हे भगवन्, कृपा करके कुछ ऐसा कीजिये कि सामान्य पुरुष एवं नारी भी आपके दर्शन कर सकें|’

स्वामी जी के प्रेम से तब राधा और कृष्ण दोनों एक हो गए| माँ राधा का प्रताप भगवान् कृष्ण ने अपने में समाहित कर लिया| वह बांके बिहारी जी के रूप में प्रकट हो गए| इसी कारण श्री बांके बिहारी जी का दर्शन करना राधा कृष्ण की जुगल जोड़ी के दर्शन करना है|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी इन्हीं दोनों भगवान् कृष्ण और माता राधा रानी के श्री बांके बिहारी के रूप में दर्शन करेंगे, यह सोच कर उनका हृदय प्रसन्नता से भरा हुआ था|

सुबह दैनिक क्रिया से निवृत हो, स्नान आदि से पवित्र हो, दोनों पति-पत्नी बांके बिहारी मंदिर दर्शन के लिए गए| भगवान् कृष्ण की बांसुरी बजाते हुए काली मनमोहक प्रतिमा ने उन दोनों का मन मोह लिया| पति-पत्नी भवाविहोर हो गए|

‘हे प्रभु, हमारी रक्षा करो, रक्षा करो,’ कहते हुए मंदिर के प्रांगण में ही वह बैठ गए| हृदय से ‘हे गोविन्द, हे राधे’ का स्वर निकल रहा था| उनके कवि हृदय से भजन की कुछ पंक्तियाँ फूट पड़ीं|

राधे कृष्णा राधे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा राधे राधे |
राधे श्याम राधे श्यामा, श्याम श्यामा राधे राधे ||

अचानक साहूकार श्री हरि प्रसाद जी अवचेतन अवस्था में चले गए| वही सुन्दर बालिका जो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम में स्वप्न में आईं थीं, यहां भी उन्हें दिखाई देने लगी| वही मूरत, वही सुन्दर शब्द साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को सुनाई दिए, 'मैं तो कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी बाबा, आपने आने में इतनी देर क्यों लगा दी?'

चेतन अवस्था में आने पर उन्होंने अपने आप को सम्हाला और पत्नी को लेकर भगवान् को प्रणाम कर मंदिर से बाहर निकल आए|

प्रभु एवं माँ के दर्शन कर तब वह अपने निवास स्थान परीक्षितपुर लौट आए|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं बांके बिहारी के दर्शन किये लगभग एक वर्ष हो चुका था| आज विक्रम सम्वत १७८२ के आषाढ़ महीने की शुक्ल पक्ष पूर्णिमा (२५ जुलाई १७२५) का शुभ दिन था| वैदिक हेमंत ऋतु अपने कदम पसारना चाहती थी| वर्षा ऋतु और उमस भरी अति आर्द्रता से स्वतन्त्रता मिलने लगी थी| अगले दिन से ही श्रावण मास प्रारम्भ होने वाला था| इसी समय श्रीमति अनूपी देवी को प्रसव पीड़ा होने लगी| घर की दाई को तुरंत बुलाया गया|

'कन्या का जन्म हुआ है, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी', दाई के मधुर शब्दों ने साहूकार श्री हरि प्रसाद जी का ध्यान भंग किया|

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को तो जैसे मन मनौती ही मिल गई| उन्हें वह स्वप्न की सुन्दर बालिका याद आने लगी जो उन्होंने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम एवं बांके बिहारी मंदिर में देखी थी| संत शिरोमणी जी के शब्द याद आने लगे, 'मीरा बाई जैसी पुत्री आएंगी आपके गृह, भैया'| मन प्रफुल्लित हो गया| सभी गरीबों के लिए कोष खोल दिया और मिठाईओं का वितरण प्रारम्भ हुआ|

कन्या के जन्म के ग्यारहवां दिन नाम संस्कार के लिए पुरोहित जी को बुलवाया गया| पुरोहित जी ने उस कन्या का नाम रखा, ‘सहजो’| ‘सहजो’ अर्थ सरल, सुगम एवं स्वाभाव से अति दयावान कन्या|

बचपन एवं गुरु दीक्षा

शनैः शनैः सहजो बड़ी होने लगीं| पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं माता श्रीमति अनूपी देवी, दोनों ही संत शिरोमणि श्री चरण दास जी को अपना गुरु मानते थे| संत शिरोमणि श्री चरण दास जी सहजो के जन्म पश्चात यदा कदा साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी का आतिथ्य स्वीकार करने दिल्ली से परीक्षितपुर आते रहते थे| एक बार जब सहजो की आयु तीन वर्ष की रही होगी, संत जी का पावन पदार्पण साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के गृह हुआ| संत जी ने दिव्य दृष्टि से तभी जान लिया कि यह बालिका भगवान् श्री कृष्ण की अनन्य भक्त है| संत जी ने इस छोटी सी आयु में सहजो को कुछ मन्त्र सिखलाए| सहजो की प्रखर बुद्धि ने उन मन्त्रों को तुरंत कंठस्थ कर लिया| संत शिरोमणि जब भी साधना में लीन होते, सहजो उनके साथ बैठकर उनकी मुद्राओं को दोहराने लगतीं|

संत जी की कुछ ऐसी नैत्य क्रिया थी कि वह जब भी साधना करने बैठते तो अपने साथ लाई एक भगवान् कृष्ण (बाल गोपाल ठाकुर जी) की पत्थर की प्रतिमा को अपने सम्मुख रख लेते थे| तीन वर्षीय बालिका सहजो ने उनसे प्रश्न पूछा, 'चाचा जी, कृष्ण भगवान् की प्रतिमा को माँ तो मंदिर में रखती हैं, आप अपने साथ इन्हें लिए क्यों भ्रमण करते रहते हैं? जब भी आप साधना में लीन होते हैं तो इस प्रतिमा को क्यों सम्मुख रखते हैं?'

संत शिरोमणी चरणदास जी ने बालिका को अपनी गोद में उठा लिया और मधुर शब्दों में बोले, 'पुत्री, तुम्हें अवश्य अनुभव है कि तुम्हारे माता पिता सदैव तुम्हारी सुरक्षा के लिए खड़े रहते हैं| अब मेरे माता पिता तो भगवान् कृष्ण के समीप पहुँच गए| मेरी रक्षा कौन करेगा? यही कृष्ण भगवान् मूर्ति स्वरुप में मेरी सदैव रक्षा करते हैं| इसीलिए मैं सदा इन्हें अपने समीप रखता हूँ|'

भोली भाली बालिका सहजो संत जी के गूढ़ शब्दों का अर्थ तो नहीं समझ पाई परन्तु तुरंत बोली, 'चाचा जी, आपके माता पिता क्यों नहीं हैं? वह आपका ध्यान क्यों नहीं रखते? मेरा आप उनसे मिलन कराईए| मैं उनसे अवश्य यह कहूंगी कि वह आपका ध्यान रखें, आपकी रक्षा करें| यह तो उनका कर्तव्य है|'

संत शिरोमणी चरण दास जी मुस्कुराए और प्रिय वचनों में बोले, 'प्रिय पुत्री, मेरे माता पिता अब इस दुनिया में जीवित नहीं हैं| वह प्रभु के पास जा चुके हैं| अब वह जब जीवित हैं ही नहीं तो मैं तुम्हारा मिलन उनसे कैसे करा सकता हूँ?'

प्रखर बुद्धि की बालिका सहजो बाई ने इतनी सुलभता से संत जी को नहीं छोड़ा| उसने फिर प्रश्न किया|

बालिका सहजो बोलीं, 'चाचा जी, उन्हें आपने भगवान् कृष्ण के पास जाने से क्यों नहीं रोका? क्यों नहीं कहा कि मेरी रक्षा कौन करेगा?'

अब संत शिरोमणि जी कुछ गंभीर हो गए और बोले, 'पुत्री, अभी तुम बहुत छोटी हो, संभवतः मेरे शब्दों का अर्थ न समझो| मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता| जिसने इस संसार में जन्म लिया है, उसे एक दिन जाना ही पड़ता है| अब वह कब और कैसे जाएगा, यह उसके कर्म निर्धारित करते हैं| मैं निःसहाय था| मैं कुछ नहीं कर सकता था|'

प्रत्युत्तर में फिर बालिका सहजो बोलीं, 'तो क्या चाचा जी, मेरे माता पिता भी एक दिन मुझे छोड़ कर चले जाएंगे?'

संत जी गंभीरता से बोले, 'हाँ पुत्री, ऐसा ही विधि का विधान है|'

बालिका सहजो भी तब गंभीर मुद्रा में आ गईं और बोलीं, 'तब फिर तो मुझे भी कृष्ण भगवान् की एक मूर्ति दीजिए, चाचा जी| माता पिता के जाने के पश्चात मेरी रक्षा भी वही कर सकते हैं|'

संत शिरोमणी ने बालिका को अपनी गोदी से उतारा और बोले, 'अवश्य पुत्री| तुम मेरे ही बाल गोपाल को रख लो| इन्हें सदैव अपने साथ रखना| स्मरण रहे इन्हें प्रातः ही भूख लगती है, कुछ भोजन देना नहीं भूलना| मैं कृष्ण कन्हैया से प्रार्थना करूंगा कि वह सदैव तुम्हारी रक्षा करें, ' यह कहकर उन्होंने बाल गोपाल ठाकुर जी को बालिका सहजो को सौंप दिया|

बालिका सहजो ने बाल गोपाल तो ले लिए परन्तु उसे तुरंत स्मरण आया कि मैंने तो चाचा जी के बाल गोपाल ले लिए, अब उनकी रक्षा कौन करेगा? अतः वह फिर संत शिरोमणी संत जी से बोलीं, 'नहीं चाचा जी, मैं आपके बाल गोपाल नहीं ले सकती? अगर मैंने आपके बाल गोपाल ले लिए तो फिर आपकी रक्षा कौन करेगा?'

बालिका सहजो का इतना ही कहना था कि संत शिरोमणी ने मुस्कुराकर बाल ठाकुर जी को अपने हाथों में एक बार फिर से ले लिया| अपने गुरुदेव भगवान् सुकदेव का स्मरण किया और तुरंत दो बाल गोपाल बन गए| एक बाल गोपाल बालिका सहजो को देते हुए बोले, 'लो पुत्री, भगवान् अपने दो रूपों में प्रगट हो गए| अब एक बाल गोपाल तुम्हारी रक्षा करेंगे और दूसरे मेरी| अब तो तुम प्रसन्न हो?'

बालिका सहजो की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा| वह अपने इन बाल गोपाल के प्रेम में दीवानी हो गई| धैर्य, त्याग, समर्पण और लज्जा की प्रतिमूर्ति कन्या बन गई| तुरंत दौड़ कर माता श्रीमति अनूपी देवी के पास पहुँची और भगवान् श्री कृष्ण की प्रतिमा दिखाते हुई बोलीं, 'देख माँ, चाचा जी ने मुझे क्या दिया है| स्वयं भगवान् कृष्ण मुझे दे दिए हैं| अब यह मेरी सदैव रक्षा करेंगे| तुम्हारे और पिता जी के भगवान् के पास जाने के बाद भी|'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तो अगले दिन ही अपने आश्रम दिल्ली चले गए परन्तु बालिका सहजो बाई को एक अनुपम उपहार दे गए| बालिका सहजो को इस श्री कृष्ण की मूर्ति से इतना लगाव हो गया कि उठते, बैठते, सोते, खाते, सदैव वह इन ठाकुर जी की प्रतिमा को प्राणों की तरह सदा अपने साथ रखने लगीं| बालिका सहजो के लिए अब यह भगवान् कृष्ण मूर्ति ही उनकी आत्मा थी| प्रातः उठते ही वह बाल गोपाल को भोग लगातीं, उन्हें लड्डू का प्रसाद अर्पण करतीं, दिन बीतने पर उन्हें निहलातीं, धुलातीं, नए कपडे पहनातीं, भोजन खिलातीं, इत्यादि इत्यादि| जो समय उनकी अवस्था की बालिकाएं गुड्डे, गुड़ियों से खेलने में बितातीं, वह समय बालिका सहजो अपने बाल गोपाल के साथ बितातीं|

शनैः शनैः समय बीतता जा रहा था| सहजो बाई की अवस्था कोई पांच वर्ष की रही होगी| बरसात के दिन थे| एक दिन वायु कुछ तीव्र ही चल रही थी| वायु के साथ साथ वर्षा के कभी कभी छींटे भी पड़ जाते थे| समय घर में ही रहकर सुरक्षित विश्राम करने

का था| परन्तु बालिका सहजो को न जाने क्या सूझी कि वह बिना माता पिता को कुछ बिताए अपने गृह के समीप एक तालाब के पास टहलने चली गईं| सदैव की भांति बाल गोपाल उनके पास ही थे| वहां एक चरवाहा बालक तालाब में अपनी गैयों को पानी पिलाने लाया हुआ था| इधर गैयाँ पानी पी रहीं थीं और वह तालाब के तट पर खड़ा उन्हें निहार रहा था| अचानक तालाब के तट पर बारिश के कारण कीचड़ से हुई उत्पन्न फिसलन के कारण वह फिसला और तालाब में जा गिरा| अभाग्य से बच्चे को तैरना नहीं आता था| डूबते हुए बच्चे ने संभवतः एक बार सहायता की पुकार लगाई जो बालिका सहजो ने सुन ली| बालिका सहजो तुरंत तालाब के उस तट पर गईं और तीव्र शक्ति से उन्होंने अपने बाल गोपाल ठाकुर जी को तालाब में फेंक दिया और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगीं, 'हे ठाकुर जी, आप तो चाचा जी की रक्षा करते हैं, मेरे माता पिता की रक्षा भी करते हैं, इस बाल ग्वाले की भी रक्षा कीजिए|'

साथ ही तीव्र स्वर में वह ग्रामवासियों को रक्षा के लिए पुकारने लगीं| देखते ही देखते ग्रामवासियों का एक झुण्ड एकत्रित हो गया| वह बच्चे की मदद तो करना चाहते थे परन्तु उस गहरे एवं विस्तृत तालाब में उस बच्चे को कहाँ ढूंढें? इतने में ही एक चमत्कार हुआ| वायु की गति आंधी में बदल गई| तालाब में ऊंची ऊंची लहरें उठने लगीं| उन्हीं ऊंची ऊंची लहरों ने उस बच्चे एवं स्वयं बाल गोपाल ठाकुर जी को तालाब के तट पर ला कर पटक दिया| ग्रामवासियों ने उस बच्चे को होश में लाने का प्रयत्न किया| थोड़ी ही देर में बच्चा ऐसे उठ कर खड़ा हो गया जैसे कुछ हुआ ही न हो और कहने लगा, 'वह मोर पंख धारी बालक कहाँ है जिसने मुझे तालाब के तल से तट पर धकेल दिया|'

सभी ग्रामवासी अचंभित हो उसके मुख की ओर देखने लगे| लेकिन सहजो को समझने में देर नहीं लगी| बालिका सहजो तुरंत बाल गोपाल की ओर दौड़ीं| कृतज्ञता से उन्होंने बाल गोपाल को अपने सीने से लगा लिया| उनके नैनों से अश्रु धारा बह निकली और एक काव्य उनके मुख से निकल पड़ा|

हम बालक तुम माय हमारी | पल पल मांहि करो रखवारी ||
निस दिन गोदी ही में राखो | इत वित बचन चितावन भाखो ||
विषै ओर जान नहीं देवो | ढुर ढुर जाऊं तो गहि गहि लेवो ||
मैं अनजान कुछ नहिं जानूं | बुरी भली को कुछ नहिं पहिचानूँ ||

जैसी तैसे तुमहीं चीन्हेव | गुरु हैं ध्यान खेलौना दीनहेव ||
तुम्हरी रच्छा से ही जीवें | नाम तुम्हारो इमरत पीवें ||
दिष्टि तिहारो ऊपर मोरे | सदा रहूँ मैं सरने तेरे ||
मारो झिडको तौ नहिं जाऊं | सरक सरक तुमहीं पाई आऊं ||

बालिका सहजो के पिता ने भी अपनी पुत्री की सहायता की पुकार सुनी| दोनों माता पिता किसी अनहोनी दुर्घटना की आशंका लिए एवं हृदय में संत शिरोमणी श्री चरण दास जी को सहायता के लिए पुकारते हुए तालाब की ओर दौड़े| तालाब के समीप पहुँच कर वहां का दृश्य देख कर अचंभित हो गए| सभी ग्रामवासियों ने बालिका सहजो के चरण स्पर्श करने प्रारम्भ कर दिए थे| ऐसा सब का विश्वास था कि यह अवश्य ही सहजो की श्रद्धा के कारण बाल गोपाल द्वारा चमत्कार से ही संभव हुआ है| इन सब घटनाओं से अनभिज्ञ सहमी बालिका सहजो किंकर्तव्यविमूढ़ हुई चुपचाप रोती रहीं और पिता के साथ घर आ गईं| इसके पश्चात ही गांव में ही नहीं आस पास के सभी क्षेत्रों में बालिका सहजो के बाल गोपाल के प्रति श्रद्धा के चर्चे फैलने लगे|

समय बीतता चला गया| सहजो ग्यारह वर्ष की हो गयीं| यह वह काल था जब बाल विवाह की राजस्थान में प्रथा थी| अतः पिता ने अपनी सुन्दर एवं प्रखर बुद्धि वाली पुत्री के लिए उपयुक्त वर ढूंढा और विवाह की तैयारी होने लगी| उनके एक मित्र के पुत्र दूल्हे राजा बारह वर्ष की अवस्था के थे|

सहजो के पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी स्वयं संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम विवाह में निमंत्रण देने दिल्ली गए| विवाह में सहजो को आशीर्वाद देने हेतु अवश्य आने का आग्रह किया| संत जी ने निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया और विवाह में सही समय पर पहुंचे| उन्होंने सहजो को देखा और आशीर्वाद दिया| वह तो जानते थे कि सहजो का जन्म तो आध्यात्मिकता के लिया हुआ है, न कि सांसारिकता के लिए| लेकिन इस समय चुप रहे| भगवान् की लीला भी विचित्र है|

विवाह के दिन सायंकाल बरात चढ़ रही थी| ऐसा कहते हैं कि किसी कारण घोड़ी बिदक गयी| दूल्हे राजा घोड़ी से गिर गए और उनका सिर एक पेड़ से टकराया| वहीं मृत्यु हो गयी| अब तो विलाप होना लगा| कहाँ तो विवाह की खुशियां मनाई जा रहीं थीं और कहाँ यह मातम! दूल्हे के पिता संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के पास

विलाप करते हुए पहुंचे, उनके चरण पकड़ लिए और बोले, 'हे संत शिरोमणि महाराज, आप तो सिद्ध पुरुष हैं| हमारे सद्गुरु हैं| फिर सहजो तो आपकी ही पुत्री समान है| वह आपके फुफेरे भाई की पुत्री है| आपकी उपस्थिति में उनके साथ ऐसा अनर्थ कैसे हो सकता है? संत जी, आप मेरे पुत्र को जीवित कीजिये|'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी का हृदय पिघल गया| वह बोले, 'पूर्णतः इसको जीवन दान देना तो मेरी शक्ति से बाहर है| वह तो प्रभु ही कर सकते हैं| हाँ, मैं इसकी आत्मा को कुछ समय के लिए इसके शरीर में प्रवेश अवश्य करा सकता हूँ| अगर इसकी आत्मा स्थाई रूप से शरीर को स्वीकारे तो मैं गुरुदेव भगवान् श्री सुक महाराज से स्तुति कर सकता हूँ| वह ही कुछ कर सकते हैं|'

डूबते को जैसे तिनके का सहारा मिला| संत जी के उन्होंने चरण पकड़ लिए, 'संत जी, ऐसा ही कीजिये| हम तो अपने पुत्र से बहुत प्रेम करते हैं और वह भी हम से बहुत प्रेम करता है| वह अवश्य जीवित रहना चाहेगा|'

योग शक्ति से संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने उसकी आत्मा को मृतक शरीर में प्रवेश कराया| बालक जैसे निद्रा से जाग गया| उठते ही संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के चरण स्पर्श किये और बोला, 'संत जी आप तो अन्तर्यामी हैं| सब जानते हैं| मैं पिछले कितने जन्मों से आपका और सहजो का भक्त रहा हूँ| इस परिणय के बहाने सहजो ने मुझे मुक्त कर दिया| आप मुझे फिर से इस सांसारिक बंधनों में क्यों डालना चाहते हैं?'

सभी स्तब्ध हो गए| अब गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास जी दूल्हे के पिता से बोले, 'क्या चाहते हो?'

पिता ने श्री संत जी के चरण पकड़े और बोले, 'संत जी, हम अज्ञानीयों को क्षमा करो| इस हमारे पुत्र ने तो हमारी समस्त पीढ़ियों को तार दिया| प्रभु वही करो जो हमारा पुत्र चाहता है| उसे जाने की आज्ञा दो|'

बालक ने एक बार फिर संत जी के चरण स्पर्श किये और जाने की आज्ञा माँगी| संत जी ने उसे आशीर्वाद दिया| संत जी ने कहा, 'अब इन्हीं गाने बाजों के साथ जो बरात

चढ़ने पर बज रहे थे, इसकी अंतिम क्रिया करो| सब प्रसन्नता के साथ अपने अपने घर जाओ | आज तुम्हारा दर्शन एक योग पुरुष से हुआ है|’

सभी घर वापस आये| तब संत जी सहजो से बोले:

चलना है रहना नहीं चलना विश्वाबीस |
सहजो तनिक सुहाग पर कहाँ गुठावइ शीश ||

‘सहजो तेरा जन्म तो ईश्वर की भक्ति के लिए हुआ है| पारिवारिक जीवन के लिए नहीं|’

इतना सुनते ही सहजो ने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के चरण पकड़ लिए| संत चाचा से प्रार्थना की, ‘मुझे अपनी शरण में ले लो चाचा जी और शिष्या स्वीकार करो|’

पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं माता श्रीमति अनूपी देवी जी ने भी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से अपनी पुत्री को शिष्या रूप में स्वीकार करने हेतु प्रार्थना की|

सहजो को तब संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने अपने साथ दिल्ली चलने की आज्ञा दी| माता श्रीमति अनूपी देवी के हृदय में कुछ दिन अपनी पुत्री के साथ दिल्ली आश्रम में समय बिताने की इच्छा हुई| अन्तर्यामी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने तत्काल श्रीमति अनूपी देवी की अंतर्मन दशा जानते हुए उनसे कहा, 'भाभी, अब देर किस बात की| शीघ्र ही सहजो के साथ दिल्ली चलने का प्रबंध करो| जितने दिन आश्रम में रहने की इच्छा हो, वहां का आतिथ्य स्वीकार करो|'

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी से तब अनुमति लेकर तीनों प्राणी, संत शिरोमणी श्री चरण दास जी, माता श्रीमति अनूपी देवी जी एवं ११ वर्ष की बालिका सहजो दिल्ली को संत जी के आश्रम को प्रस्थान कर गए|

गुरु - संत शिरोमणी श्री चरण दास जी

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के ममेरे भाई थे| साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के मामा श्री सेठ मुरलीधर जी एक संभ्रांत परिवार के अलवर के बड़े व्यापारी थे| वह साधु स्वभाव के त्याग व्रत वाले प्रभु भक्त थे| उनकी पत्नी श्रीमति कुंजी देवी निर्मलता, सहनशीलता और नम्रता की देवी थीं| ऐसा बचपन में साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के पिता ने उन्हें बतलाया था कि मामी श्रीमति कुंजी देवी की आस्था एवं श्रद्धा से प्रभावित स्वयं भगवान् कृष्ण ने उन्हें दर्शन देकर उनके गर्भ से एक संत आत्मा का पुत्र रूप में जन्म लेने का आशीर्वाद दिया था| यथा समय सन १७०६ में एक अत्यंत तेजवान पुत्र का जन्म उनके गृह में हुआ, जिसका नाम 'रणजीत' उन्होंने रखा| बाद में गुरु दीक्षा के पश्चात उनका नाम श्री चरण दास हुआ|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने स्वयं ही लिखा है|

डेहरे में मेरा जनम नाम रणजीत पिछानो |
मुरली को सुत जान जात ढूसर पहिचानो ||

अत्यंत प्रतिभाशाली बालक रणजीत ने एक वर्ष की अवस्था होते होते बोलना एवं चलना भी सीख लिया| इस अल्पायु में भी जब माँ श्रीमति कुंजी देवी भगवान् कृष्ण की आराधना करतीं तो बालक रणजीत माँ की स्तुति की घंटी का स्वर सुनते ही तुरंत गृह मंदिर दौड़ कर आ जाते और पूजा में पूर्ण रूप से भाग लेते| भगवान् कृष्ण के प्रति बालक रणजीत का ऐसा प्रेम था|

विद्वानों ने आपके परिवार की आठ पीढ़ियों की वंशावली इस प्रकार दी है, संत शिरोमणी श्री (रणजीत) चरण दास के पिता श्री मुरलीधर, श्री मुरलीधर के पिता श्री प्रागदास, श्री प्रागदास के पिता श्री जगनदास, श्री जगनदास के पिता श्री लाहड़दास, श्री लाहड़दास के पिता श्री गिरिधर दास, श्री गिरिधर के पिता श्री चतुरदास तथा श्री चतुरदास के पिता श्री शोभनदास| श्री शोभनदास की तपस्या पर प्रसन्न होकर भगवान ने स्वयं उन्हें समृद्धि और ऐश्वर्यता का वरदान दिया था| संत चरण दास जी इसके बारे में अपने भक्ति काव्य में लिखते हैं:

भवन तिहारे मैं ही आऊँ | कलियुग माहीं भक्ति चलाऊँ ||
तो कुल माही भक्ति चलेगी | आठवीं पीढ़ी जाय फलेगी ||

पाँच वर्ष की आयु से ही रणजीत की रसना पर "राम नाम" का जाप चढ़ा हुआ था| पाँच साल की आयु में एक दिन जब आप "राम नाम" के कीर्तन में मग्न थे तो आपकी एक बैरागी तपस्वी से भेंट हुई| उस बैरागी ने आपको आम वृक्ष के नीचे अपनी गोद में लेकर प्रेम से दो पेड़े (मिठाई) दिए| संत चरण दास जी लिखते हैं:

कृपा प्यार बहुते ही किये | पुचकारे दो पेड़े दिये ||
बहुरि कही तोहि सिषहम किन्हा | हूज्यों संत यही वर दीन्हा ||
भव सागर को खेवट हवै है | वहु जग जीवन पार लंघौ है ||

रणजीत के पिता जी भी भक्ति में अत्यंत तल्लीन रहते थे| अक्सर जंगल में जा कर एकांत में वह साधना किया करते थे| जंगल में जंगली जानवरों से रक्षा करने हेतु अंग रक्षक रखा गया था जो सायंकाल उन्हें घर सुरक्षित ले आता था| एक दिन पिता जी जब जंगल के एकान्त में साधना कर रहे थे, थोड़ी दूर बैठे अंग रक्षक को नींद आ गई| इसी बीच पिताजी अचानक लुप्त हो गये| किसी को कुछ पता न चला कि वह कहाँ अदृश्य हो गए? पिता जी का लुप्त हो जाना घर पर छाये हुए संकट के बादलों का अन्त नहीं, आरम्भ था| तीन महीने के बाद आप के दादा एवं दादी का भी निधन हो गया| अब आपकी माँ बेसहारा हो गईं| उनके सामने अँधेरा ही अँधेरा था| उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें? अन्त में उन्होंने अपने मायके दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया|

आपके (रणजीत के) नाना श्री भिखारी दास दिल्ली राज दरबार के अधिकारी थे| वह चाहते थे कि बालक रणजीत अरबी और फारसी पढ़े| तत्कालीन रीति के अनुसार छठे वर्ष में आपको पाठशाला भेजा गया| मौलवी अध्यापक ने आपकी पढ़ाई में रूचि उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये पर कोई लाभ न हुआ| प्रेम से काम न चला तो मौलवी ने डाँट डपट भी की, पर सब व्यर्थ साबित हुआ| इस क्रम में रणजीत ने अध्यापक को निर्देशित करते हुए कहा|

आल जाल तू क्या पढ़ावे | कृष्ण नाम लिख क्यों न सिखावे ||
जो तुम हरि की भक्ति पढ़ाओं | तो मोकु तुम फेर बुलाओ ||

मौलवी ने उनके नाना जी के कथनानुसार एवं अपनी भाषा विवशता के कारण उन्हें उर्दू ही पढ़ाने का प्रयास किया| लेकिन आपने उर्दू को आलतू फालतू पढ़ाई कहा तथा कृष्ण या हरि की भक्ति पढ़ाने को कहा|

'यदि हरि भक्ति से सम्बन्धित पढ़ाई कराओगे तो मैं पुनः आऊँगा', ऐसा कहकर बालक रणजीत अपने गृह चले गए|

नाना जी ने एक बार फिर प्रयास किया और उन्हें मौलाना के पास शिक्षा हेतु भेजा| मौलवी ने पुनः आठ मास तक उन्हें पढ़ाने का प्रयास किया पर उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा| उन्होंने तब एक पद की रचना की और मौलवी से कहा:

हमें आज से पढ़ना नाँही | जिकर ने होय फिकर के मांही ||
सुनि मुल्ला हैरत में आया | इस लड़के पर रब की छाया ||

आपका उपरोक्त भाव जानकर मौलवी आश्चर्य में आया कि इतनी कम आयु में भी बालक अध्यात्म की बात करता है| निश्चित ही इस लड़के पर ईश्वर की अत्यंत कृपा है|

विद्यालय तो बालक रणजीत ने अवश्य छोड़ दिया लेकिन उन्हें नाना जी का उपकार सताने लगा| उन्हें लगा कि उनके पढ़ाई न कर पा सकने के कारण नाना जी एवं नानी जी दोनों ही दु:खी हैं| इस भाव को आपने इस प्रकार प्रकट किया:

सोचि सोचि मन माँही ठानी | दु:खी होयेंगे नाना नानी ||
कैसे मिठू उनका कीया | ताते पढ़ने में मन दीया ||

बालक रणजीत नाना जी एवं नानी जी के प्रति कृतज्ञ तो अवश्य थे परन्तु उनके हृदय में सद्गुरु के मिलाप एवं भगवान् कृष्ण से मिलने की अत्यंत अभिलाषा थी| वह सद्गुरु

के विरह की पीड़ा से क्षण क्षण व्याकुल रहने लगे| आप सद्गुरु की खोज में जंगलों में भटकने लगे| इस अवस्था को स्वयं श्री चरण दास जी ने व्यक्त किया है|

ऐसी विरह अग्नि तन लागी | गई भूख और निद्रा भागी ||
सतगुरु कूँ ढूंढन ही लागे | ढूंढे सब मत पंथ उदासी ||

बालक रणजीत ने अभी ग्यारहवें वर्ष में कदम रखा ही था कि देश में चेचक महामारी ने त्राहि त्राहि मचा दी| लाखों की संख्या में लोगों की मृत्यु का कारण यह महामारी बन रही थी| अभाग्य से बालक रणजीत की माता इस महामारी की शिकार हो गईं| नाना जी एवं नानी जी ने बालक के लालन पालन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया| लेकिन बालक का किसी भी प्रकार से मन लगता ही नहीं था| माता की मृत्यु के कुछ महीनों पश्चात ही एक दिन घर से बालक चुपचाप निकल गया|

घर से निकल कर वन में भटकने लगे| एक दिन भूख प्यास से व्याकुल हो कर एक वृद्ध ब्राह्मणी के झोंपड़े के आगे बेहोश हो गए| वृद्ध ब्राह्मणी के प्रयास से उन्हें होश आया| वृद्ध ब्राह्मणी ने तब उन्हें खाना पानी दिया और पूछा, 'बेटा, इतनी कम आयु में तुम जंगल में क्यों भटक रहे हो?'

ग्यारह वर्ष के बालक रणजीत ने बड़े ही भोलेपन से उत्तर दिया, "सद्गुरु और कृष्ण को ढूंढ रहा हूँ, माँ| क्या आप मुझे उनके पास तक पहुंचा सकती हैं?"

वृद्ध ब्राह्मणी स्तब्ध हो गईं| वृद्ध ब्राह्मणी बोली, "बेटा, मैं तो कृष्ण के दर्शन नहीं करा सकती, लेकिन हाँ, एक मार्ग अवश्य बता सकती हूँ| मार्ग अत्यंत कठिन है| क्या कर पाओगे?"

बालक रणजीत को तो यह शब्द अमृत समान लगे| वह बोले, "माँ, मैं सद्गुरु एवं भगवान् कृष्ण को पाने के लिए कुछ भी करने का प्रयास करूंगा| बस एक बार, एक बार, मुझे सद्गुरु और भगवान् कृष्ण के दर्शन करा दो|"

वृद्ध ब्राह्मणी बोलीं, "बेटा, इस वन में भगवान् सुकदेव का वास है| भगवान् सुकदेव भगवान् वेद व्यास के पुत्र हैं| तू यदि उनकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर सके तो वहीं

तुझे भगवान् कृष्ण के दर्शन करा सकते हैं| इसके लिए कठोर तपस्या की आवश्यक्ता होगी| क्या तेरा यह बालपन का शरीर इतनी घोर तपस्या कर सकेगा?”

बालक रणजीत बोले, "माँ, मेरा मार्ग दर्शन करो| मैं अवश्य ही घोर तपस्या करने का पूर्ण प्रयास करूंगा| माँ, अगर मुझे भगवान् सुकदेव मिल गए तो मैं उनसे कैसे भेंट करूँ और उनसे क्या मांगू?"

वृद्ध ब्राह्मणी बोलीं, "पुत्र भगवान् सुकदेव के दर्शन पर तुम उनके चरण पकड़ कर उनसे प्रार्थना करना कि वह तुम्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लें| भगवान् सुकदेव अन्तर्यामी हैं| वह तुम्हारी सभी इच्छाएं पूर्ण कर देंगे और तुम्हें भगवान् कृष्ण के भी दर्शन करा देंगे|"

बालक रणजीत को यह वचन अत्यंत प्रिय लगे| वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया के बाहर ही एक नीम वृक्ष के नीचे वह तप करने बैठ गए| वृद्ध ब्राह्मणी उनके शरीर को जीवित रखने के लिए किसी प्रकार उन्हें भोजन कराती रहीं| दो वर्ष तक कठोर तप किया| बालक के इस कठोर तप से प्रभावित हो भगवान् सुकदेव प्रगट हुए|

भगवान् सुकदेव बोले,"क्या चाहिए पुत्र?"

बालक रणजीत जी ने तुरंत उनके चरण पकड़ लिए और कहने लगे, ‘मुझे अपना शिष्य बना लीजिये और ज्ञान दीजिये, भगवन्|’

उनके तप से प्रसन्न भगवानावतार श्री सुकदेव जी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया तथा अपने साथ आश्रम में ले आए| भगवान् सुकदेव ने उन्हें दीक्षित किया और ‘चरण दास’ नाम दिया |

बालक चरण दास की कुशाग्र बुद्धि ने अल्प समय में ही समस्त वेद वेदांतो की शिक्षा गुरुदेव भगवान् श्री सुकदेव से प्राप्त कर ली| शिक्षा की समाप्ति पर करबद्ध गुरु के समक्ष खड़े हो गए और उनके चरण पकड़ कर बोले, "हे प्रभु, आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे भगवान् कृष्ण के दर्शन कराएं|"

शिष्य की भगवान् कृष्ण के प्रति इतनी गहन प्रीति देख भगवान् सुकदेव पिघल गए और वचन दिया कि शीघ्र ही उन्हें भगवान् कृष्ण के दर्शन होंगे| उन्होंने आदेश दिया, ‘अभी वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया पर वापस जाओ और 'भक्ति सागर' ग्रन्थ की रचना करो|’

गुरु के आदेश पर तब चरण दास जी वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया में वापस लौट आये| वृद्ध ब्राह्मणी को तो जैसे अपना पुत्र ही वापस मिल गया| दोनों वृद्ध ब्राह्मणी और पुत्रवत चरण दास जी उस सायं बहुत देर तक आध्यात्मिक बातें करते रहे और गुरु प्रसाद की फल श्रुति चर्चा करते रहे|

तब चरण दास जी ने गुरु आदेशानुसार 'भक्ति सागर' की रचना प्रारम्भ कर दी| महान ग्रन्थ ‘भक्ति सागर’ भगवान् कृष्ण की स्तुति से ओत प्रोत ग्रन्थ है|

महाकवि संत शिरोमणी श्री सरस माधुरी जी ने इस 'भक्ति सागर' ग्रन्थ की महिमा काव्य रूप में ठीक ही कही है| एक कवि ने इस ग्रन्थ महिमा में उचित ही कहा है|

ग्रन्थ महासागर उजागर सब विश्ववीच वांचत हैं जाको कवि कोविद और ज्ञानी हैं |
साधु बुद्धिमन्त विद्विजन विविध भांति मनन करत हिय धरत योगी यति ध्यानी हैं ||
त्यागी वैरागी जन-पढ़त ताय चितलगाय चतुर्वर्गदायक यह निश्चय कर जानी है |
कहे सरसमाधुरी सुनाय सब सन्तन को याके अर्थ समझे होत जीवन्मुक्त प्राणी है ||

'भक्ति सागर' रचना की समाप्ति पर चरण दास जी को बहुत प्रसन्नता हो रही थी|

वसंत ऋतु का आरंभ हो चुका था| आज चैत्र मास का पहला दिवस था| मौसम अत्यंत सुहावना हो रहा था| शीत ऋतु के पतझड़ के बाद पेड़ों में नए पत्ते आने लगे थे| आम के वृक्ष बौरों से लद गए था| खेत सरसों के फूलों से भरे पीले दिखाई देने लगे थे| उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था कि कविराजों ने इसे ऋतुराज क्यों कहा है? पौराणिक कथाओं के अनुसार तो इस मौसम को कामदेव का पुत्र कहा गया है| वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए स्वयं प्रभु कृष्ण कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे रूप व सौंदर्य के देवता कामदेव के घर पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाते ही प्रकृति झूम उठी हो| पेड़ों ने उसके लिए नव पल्लव का पालना डाला हो| पुष्पों ने वस्त्र पहनाए हों| मंद मंद

सुगन्धित पवन झुला रही हो| कोयल गीत सुनाकर दिल बहला रही हो| उन्हें स्मरण आया कि भगवान कृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है, 'ऋतुओं में मैं वसंत हूँ|'

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् |
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ||१०.३५||

वसंत ऋतु की महिमा में किसी कवि ने ठीक ही कहा है|

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के, सुमन झिंगूला सोथा तन छबि भारी दै |
पवन झूलावै, केकी-कीर बतरावैं 'देव', कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै ||
पूरित पराग सों उतारो करै राई नोन, कंजकली नायिका लतान सिर सारी दै |
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि, प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ||

कवि कहता है कि बसंत ऋतु आ गई। बसंत एक नन्हें बालक की तरह पेड़ की डाली पर नए-नए पलों के पलने रूपी बिछौने पर झूलने लगा है। फूलों का ढीला-ढाला झबला उस के शरीर पर अत्यधिक शोभा दे रहा है। अर्थात् बसत के आते ही पेड़-पौधे नए-नए पत्तों और फूलों से सज-धज कर शोभा देने लगे हैं। हवा उसके पलने को झुलाती है। देव कवि कहता है कि मोर और तोते अपनी-अपनी आवाजों में उस से बातें करते हैं। कोयल उसके पलने को झुलाती है और तालियाँ बजा बजा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है कमल की कली रूपी नायिका सिर पर लता रूपी साड़ी से सिर ढांप कर अपने पराग कणों से बालक बसंत की नजर उतार रही है अर्थात् वह बालक बसंत को दूसरों की बुरी नजर से बचाने का वैसा ही टोटका कर रही है, जैसा सामान्य नारियाँ किसी बच्चे की नजर उतारने के लिए उस के सिर के चारों ओर राई-नमक घुमाकर आग में डालने का टोटका किया करती है। यह बसंत कामदेव महाराज का बालक है जिसे प्रातः होते ही गुलाब चुटकियाँ बजा कर जगाते हैं। अर्थात् गुलाब की कली फूल में बदलने से पहले जब चटकती है तो बसंत को जगाने के लिए ही ऐसा करती है।

गुरु सुकदेव की आज उन्हें बहुत याद आ रही थी| मन में विचार करने लगे, 'हे प्रभु, मैंने आपके आदेशानुसार 'भक्ति सागर' की रचना समाप्त कर ली है| हे गुरुदेव, दर्शन देकर इसे स्वीकार करो| मुझे मेरे प्रियतम श्री कृष्ण के दर्शन कराओ|'

तभी एक विशेष सुगंधी से समस्त वातावरण पुष्पमय हो गया| इस मादक सुगंधी से बेहोशी सी छाने लगी| तभी उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं दूर कोई बांसुरी बजा रहा है| बांसुरी का स्वर धीरे धीरे तीव्र, पर अति मनमोहक होता चला जा रहा था| श्री चरण दास जी आँखें खोलने का प्रयास करते हैं और यह क्या! भगवान कृष्ण की मोहक बांसुरी बजाती हुए छवि उन्हें अपने समक्ष दिखलाई पड़ती है| उनके मुख से स्वतः ही भगवान् की स्तुति निकल पड़ती है|

कस्तूरी तिल्कम ललाटपटले, वक्षस्थले कौस्तुभम |
नासाग्रे वरमौक्तिकम करतले, वेणु करे कंकणम ||
सर्वांगे हरिचन्दनम सुललितम, कंठ च मुक्तावाली |
गोपस्त्री परिवेश्तिथो विजयते, गोपाल चूड़ामणि ||

भगवान् के इस सुन्दर रूप को देखकर श्री चरण दास इतने मोहित हो गए कि बस एकटक उन्हें ही देखते रहते हैं| साधारण नमस्कार शिष्टाचार की भी विस्मृति हो गई| तभी उन्हें एक और स्वर सुनाई देता है, "चरण दास, क्या प्रभु को प्रणाम नहीं करोगे?"

यह तो मेरे गुरुदेव का स्वर है| सब कुछ भूलकर श्री चरण दास उनके चरणों में गिर जाते हैं |

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाँय |
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिओ बताय ||

गुरुदेव को प्रणाम कर भगवान् की सुध आती है| श्री चरण दास भगवान् के चरणों में गिर जाते हैं | एक शब्द भी मुख से नहीं निकल रहा| जिसे पूरी निधि मिल गयी हो, वह अब और क्या इच्छा रखे? भगवान् मुस्कुराते हुए उनके सर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हैं और फिर धीरे धीरे बांसुरी का स्वर मंद होता चला जाता है| आज श्री चरण दास के जीवन की इच्छा पूर्ति हुई है| उनका हृदय गुरुदेव के प्रति सम्मान और

अभिवादन से झुक जाता है| गुरुदेव ने अपना वचन निभाया और मुझे मेरे प्रियतम के दर्शन कराए|

पास ही वृद्ध ब्राह्मणी अचेत अवस्था में पड़ी हुई थीं | भगवान् के दर्शन से उन्हें भी आज मुक्ति मिल गई| श्री चरण दास जी स्वयं कहते हैं कि उन्हें ऐसा लगा जैसे वृद्ध ब्राह्मणी को प्रभु अपने साथ साकेत धाम ले गए|

चेतन अवस्था में आने पर गुरु के आदेश की चरण दास जी प्रतीक्षा करते हैं|

'वत्स, पुत्र भाँति इन वृद्ध ब्राह्मणी का दाह संस्कार करो और दिल्ली की ओर प्रस्थान करो| वहीं अपना आश्रम स्थापित कर सनातन धर्म का प्रचार एवं प्रसार करो,' गुरुदेव की आज्ञा सुनाई दी|

आपने सद्गुरु भगवान् श्री सुकदेव के प्रति समर्पण की भावना को चरण दास जी ने इस प्रकार प्रकट किया है|

पितु सूँ माता सौ गुना, सुत को राखै प्यार |
मन सेती सेवन करै, तन सूँ डाँट अरू गार ||
माता सूँ हरि सौ गुना, जिनसे सौ गुरुदेव |
प्यार करैं औगुन हरै, चरणदास शुकदेव ||

गुरुदेव की आज्ञानुसार श्री चरण दास जी ने दिल्ली आकर अपना आश्रम स्थापित किया| अब वह संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के नाम से विख्यात हो गए|

तब दिल्ली में मुग़ल सम्राट जहांगीर का शासन था| सनातन धर्म लोप होता चला जा रहा था| ऐसे में संत श्री चरण दास जी के प्रभाव से सनातन धर्म अनुयायीओं में एक ऊर्जा का सृजन हुआ| उनके बढ़ते प्रभाव से स्वयं मुग़ल शहंशाह जहांगीर को असुरक्षा की भावना ने घेर लिया| लेकिन वह कुछ कर भी तो नहीं सकता था| उसके मंत्रीगणों ने सलाह दी कि श्री चरण दास जी को छेड़ना गृह युद्ध को आमंत्रण करने के बराबर था|

जन्माष्टमी का दिवस था| यह उत्सव संत चरण दास जी के आश्रम में बड़े धूम धाम से मनाया जाता था| सभी आश्रमवासी व्रत रखते हुए रात्रि को १२ बजे भगवान् कृष्ण का जन्म उत्सव मना कर उन्हें भोग लगाकर ही अपना व्रत तोड़ते थे| संत श्री चरण दास जी के अनुयायीओं द्वारा भेंट किये फलों और मिठाईओं का इस दिन अम्बार लग जाता था| आज शहंशाह जहांगीर को भी एक उपहास सूझा| उसने दो टोकरियाँ मंगवाईं| दोनों टोकरियों में कीचड़ भर कर बस ऊपर एक पर्त घेवर की लगा कर संत जी के आश्रम में उपहार स्वरूप भेज दी| शहंशाह के सिपाही उपहार लेकर संत जी के दरबार में पहुंचे| संत जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि टोकरियों में क्या था| टोकरियों को स्पर्श किया और एक टोकरी उपहार प्रति-स्वरूप शहंशाह के पास वापस भेज दी| जब टोकरी शहंशाह के पास पहुँची तो उसमें से बड़ी ही मधुर आम्र सुगन्ध आ रही थी| शहंशाह ने उत्सुकतावश तुरंत उस टोकरी का निरीक्षण किया| उसमें तो मिठाई की पर्त के नीचे आम भरे हुए थे| यह देखते ही शहंशाह को अपनी करनी पर बड़ा ही दुःख हुआ| कहते हैं कि सम्राज्ञी नूरजहां को लेकर उसने तुरंत संत के आश्रम में आकर उनसे क्षमा माँगी तथा भविष्य में ऐसा कभी न करने का वचन दिया| तभी से शहंशाह जहांगीर संत को गुरु सदृश्य सम्मान देने लेगा|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ऐसे महान सिद्ध पुरुष थे |

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें प्रमुख हैं, अष्टांगयोग, नरसाकेत, सन्देह सागर, भक्ति सागर, हरिप्रकाश, अमरलोक खण्डधाम, भक्तिपदारथ, शब्द, दानलीला, मनविरक्तकरन गुटका, राममाला, ज्ञानस्वरोदय इत्यादि इत्यादि|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी जाति पाति एवं प्राचीन रूढ़िवादी नामकरण की परम्परा के विरोधी थे| वह कर्म के आधार पर नामकरण करने के पक्षधर थे, वंश के आधार पर नहीं| इसी क्रम में वंशधारी ब्राह्मणों पर कठोर प्रहार करते हुए उन्होंने ब्राह्मण शब्द को परिभाषित किया|

ब्रह्मण सोइ जो ब्रह्म पिछानै, बारह जाता भितर आनै |
पाँचो वस कारे झूठ न भाखै, दिया जनेऊ हृदय राखै ||

आतम विद्या पढै पढ़ावै, परमातम का ध्यान लगावै |
काम क्रोध मद लोभ न होइ, चरनदास कहै ब्रह्मण सोइ ||

सद्गुरु भगवान् सुकदेव ने सन १७७१ में उन्हें दर्शन देकर बतलाया कि इस समय से बारह वर्ष पश्चात वह स्वयं उन्हें साकेत धाम लेने के लिए आएँगे| तब उन्होंने एक पद की रचना की|

बारह बरस मै और हूँ, मृत्यु लोक के माहि |
फिर जहाँ ईश्वर निकट, जग में रहना नाहि ||

७९ वर्ष की आयु में सन १७८५ में सद्गुरु भगवान् सुकदेव स्वयं उपस्थित हुए और उन्हें विमान में बिठाकर साकेत धाम ले गए|

यही संत शिरोमणी श्री चरण दास जी माता सहजो बाई के सद्गुरु महाराज थे|

संत चरण दास जी के आश्रम में सहजो बाई का निवास

११ वर्ष की बालिका सहजो एवं उनकी माता श्रीमति अनूपी देवी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के साथ शीघ्र ही दिल्ली स्थित उनके आश्रम में पहुँच गए| आश्रम में श्री छीतरमल जी (साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के भतीजे एवं संत जी के निकटतम शिष्य) ने उनका भव्य स्वागत किया| संत जी के आदेश पर श्री छीतरमल जी बालिका सहजो एवं उनकी माता श्रीमति अनूपी देवी जी को आश्रम के अतिथि गृह में ले गए| संत जी ने स्वयं अपनी कुटिया की ओर प्रस्थान किया|

अभी बालिका सहजो एवं उनकी माता को अतिथि गृह में आए कुछ क्षण ही बीते होंगे कि संत शिरोमणी महाराज एक संत स्त्री को लेकर अतिथि गृह में पधारे| भाभी श्रीमति अनूपी देवी का अभिनन्दन करते हुए उन्होंने उन संत महिला का बालिका सहजो एवं माता श्रीमति अनूपी देवी से परिचय कराया|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी श्रीमति अनूपी देवी जी से बोले, 'भाभी जी, यह मेरी बड़ी बहन (चचेरी बहन) संत दया बाई हैं| संभवतः आपको मेरे चाचा जी श्री केशव प्रसाद जी का स्मरण अवश्य होगा जो डेहरा ग्राम निवासी हैं| यह उन्हीं की पुत्री हैं| इन्होंने संत रूप में अविवाहित रहकर अपना जीवन भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दिया है| यही इस आश्रम की संचालिका हैं| दीदी दया बाई का आध्यात्मिक स्थान यद्यपि मेरे से उच्च है लेकिन गुरुदेव भगवान् सुकदेव के आदेश से मुझे इन्हें दीक्षा देने के लिए विवश होना पड़ा| फिर भी मैं इन्हें शिष्या न मानकर अपनी माता स्वरुप ही इनका सम्मान करता हूँ| आज मैं सहजो को इन्हें सौंप रहा हूँ| सहजो को इस आश्रम में दीदी दया बाई के रुप में एक और माँ से मिलन होगा| धन्य है सहजो जिसे दो दो माताओं का वात्सल्य प्राप्त होगा| पुत्री सहजो, सम्बन्ध में दीदी दया बाई तुम्हारी बुआ हैं और अब तुम्हारी माँ भी| इनके चरण स्पर्श कर इनका आशीर्वाद प्राप्त करो|'

बालिका सहजो बुआ संत दया बाई के चरण छूने ही लगी थीं कि संत दया बाई ने उन्हें हृदय से लगा लिया और बोलीं, 'संत जी तो अत्यंत विनम्र भाषा में बातें करते हैं| संत जी ने तुम्हें अपनी शिष्या स्वीकार किया है और मैं भी इनकी शिष्या हूँ| अब सांसारिक सम्बन्धों को भुलाकर हम आध्यात्मिक सम्बन्धों को अपनाएं| तुम मेरी गुरु-

बहन हुईं और यही सम्बन्ध हम मानेंगे| बहनें एक दूसरे के चरण स्पर्श नहीं करतीं, आलिंगन कर प्रेम बांटती हैं|'

इस प्रकार दो महान विभूतियों, संत दया बाई एवं सहजो, का का मिलन हुआ, | बालिका सहजो ने जैसे ही गुरु-बहन संत दया बाई का आलिंगन किया, उन्हें कुछ ऐसी अनुभूति हुई जैसे स्वयं राधा देवी ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया हो|

बालिका सहजो के नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी| वह गुरु-बहन संत दया बाई से बोलीं, 'हे दीदी माँ, मैं मूर्ख, अज्ञानी, अनपढ़ और गंवार हूँ| मुझे संत चाचा जी ने अपनी शिष्या स्वीकारा अवश्य है लेकिन में संभवतः उसके योग्य नहीं हूँ| मैं आपकी शरण में हूँ| मैं प्रभु अवतार संत चाचा जी की शिष्या बनने में समर्थ हो सकूं, अब यह आप पर ही निर्भर है|'

बालिका सहजो की इस विनम्रता से संत दया बाई द्रवित हो गईं| तब वह गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी से बोलीं, 'हे गुरुदेव एवं माँ स्वरुप भाभी, आपकी आज्ञा हो तो मैं सहजो को अपने साथ अपने कक्ष में ले जाऊं| कल प्रातः शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्त है| मैं सहजो को गुरुदेव द्वारा दी जाने वाली दीक्षा को स्वीकार करने के लिए तैयार करना चाहती हूँ|'

दोनों ही, संत जी एवं माता अनूपी देवी जी, ने सर हिलाकर तुरंत अनुमति दे दी| तब बालिका सहजो को लेकर संत दया बाई अपने कक्ष की ओर चल दीं|

सांय काल का शीघ्रता से उपागम हो रहा था| भोजन का समय निकट ही था| गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी केवल अपनी बड़ी बहन संत दया बाई के हाथ का बना भोजन ही ग्रहण करते थे| तुरंत संत दया बाई ने भोजन पकाने का प्रबंध करना प्रारम्भ कर दिया| बालिका सहजो बाई भी उसमें हाथ बटाने लगीं| आज केवल संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ही नहीं, बल्कि उनके दो और अति विशिष्ट अतिथि भी थे, बालिका सहजो बाई एवं उनकी माता श्रीमति अनूपी देवी जी| समय पर भोजन बना| गुरुदेव संत जी के साथ माँ श्रीमति अनूपी देवी जी ने भोजन ग्रहण किया| तद्पश्चात स्वयं संत दया बाई एवं बालिका सहजो ने भी भोजन ग्रहण किया|

भोजन की समाप्ति के बाद संत दया बाई करबद्ध माता श्रीमति अनूपी देवी से बोलीं, 'भाभी, जब तक आप आश्रम में हैं, प्रतिदिन मेरे ही कक्ष में गुरुदेव के साथ भोजन करें| भोजन तैयार होने पर मैं आपको सन्देश भिजवाती रहूंगी| इसके अतिरिक्त और भी कोई सेवा की आवश्यक्ता हो तो मुझ से अथवा ब्रह्मचारी छीतरमल से बेझिझक कहें| मैं जानती हूँ कि आप यात्रा से थकी हुई हैं अतः अब अतिथि गृह में विश्राम कीजिए| कल प्रातः कलेवे पर फिर मिलेंगे| सहजो को कृपया मेरे पास ही रहने दीजिए|'

इस प्रकार संत दया बाई के मधुर शब्द सुन माता अनूपी देवी के नेत्रों से अश्रु छलक पड़े और वह बोलीं, 'प्रिय पुत्री दया बाई, सहजो को तुम्हारे रूप में माँ मिल गई| मैं अब सहजो की ओर से पूर्ण आश्वस्त हूँ| अगर संत जी की आज्ञा हो तो मैं कल अपने गृह जाने के लिए आज्ञा चाहूंगी| वहां मेरे पति अकेले हैं| मेरे लौटने की प्रतीक्षा में हैं|'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तब बोले, 'भाभी जी, जानता हूँ आपको घर वापस पहुंचने की शीघ्रता है| मेरा ऐसा निवेदन है कि कल सहजो के दीक्षा ग्रहण समारोह के पश्चात आप परसों घर को पधारें तो अच्छा रहेगा|'

'अवश्य, अवश्य, श्री संत जी| जैसी आपकी आज्ञा', इस प्रकार वचन बोलकर अत्यंत प्रसनता से श्रीमति अनूपी देवी ब्रह्मचारी छीतरमल जी के साथ तब अतिथि गृह में विश्राम हेतु चली गईं| बालिका सहजो संत दया बाई के समीप उनके कक्ष में ही रहीं|

भोजन पश्चात जब गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी अपने कक्ष की ओर एवं श्रीमति अनूपी देवी जी अतिथि गृह चली गईं तब संत दया बाई ने बड़े प्रेम से बालिका सहजो को अपने समीप बिठाया| प्रेम से वह उनके केशों से क्रीड़ा करती हुई बोलीं, 'प्रिय सहजो, कल तुम्हारा दीक्षा समारोह होगा| इससे पूर्व मैं तुम्हें इस समय गुरु महत्व एवं गुरु मन्त्र के बारे में ज्ञान देने का प्रयास करूंगी| ध्यान से सुनना|'

बालिका सहजो की उत्सुकता अत्यंत बढ़ गई| वह टकटकी लगाए अपनी सांसारिक सम्बन्ध से बुआ एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध से गुरु-बहन संत दया बाई के चरणों में दृष्टि लगाए गंभीरता से उनके द्वारा दिए हुए ज्ञान को लेने का प्रयास करने लगीं| संत दया बाई ने बोलना प्रारम्भ किया|

गुरूमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा |
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरूपुत्रके ||

हे बहन, जिसके मुख में गुरू मंत्र है, उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं| दीक्षा के कारण ही गुरु परम्परा के माध्यम से शिष्य भगवान् से जुड़ जाता है|

संत दया बाई उपदेश देती जा रहीं थीं| वह आगे बोलीं, 'हे बहन सहजो, 'स्वयंभू अगम' ग्रन्थ में लिखा है:'

यथा मर्ग पतिम द्रष्टवा भीतो याति वने गजः |
अधिक्षीतो अर्चये लिंगं तथा भीतो महेश्वरी ||

जिस प्रकार हाथी वन में सिंह देखकर भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार अदीक्षित पुरुष अथवा नारी इस भव अरण्य माया के भय से कम्पित रहता है| अर्थात गुरु के बिना नर/ नारी का भव भय मुक्त होना असंभव है|

हम मानवों के लिए मार्ग दर्शन अत्यंत आवश्यक है| यह विश्व एक उस घने जंगल के समान है जहां ऊँचे ऊँचे वृक्षों ने सूर्यदेव के प्रकाश को पूर्ण रूप से ढक लिया है| पगडंडी दिखाई नहीं देती| ऊपर से भयावय जंगली जानवर, सर्प इत्यादि काल रूपी मुख खोले खड़े हैं| ऐसे में गुरु मार्ग दर्शाते हुए, सही पगडंडी पर चलाते हुए, खाईओं से, जंगली जानवरों से रक्षा करते हुए गंतव्य स्थान पर ले जाते हैं|

गुरु की कृपा और उनके अमर्त बोध से मानव परम पद पाता है| इस कारण दीक्षा मानव को अनिवार्य और अति अवश्यक है|

विश्व पथ बहुत निराला है| इसे साधारणतया समझ पाना असंभव सा लगता है| ईश्वर की कृपा से ही उसकी माया को समझना संभव हो सकता है| गुरु ईश्वर का ही एक रूप और उनकी माया समझने का एक मात्र साधन है|

श्रुति कहती है कि दीक्षा के अभाव में सभी कर्म निष्फल होते है| किसी भी प्रकार का जप, तप तथा पूजा आदि गुरु दीक्षा बिना फलित नहीं होते| गुरु दीक्षा से गुरु के मार्ग दर्शन से करोड़ो जन्मों के पाप दूर हो जाते है|

सनातन समय से ही श्री गुरुदेव द्वारा मन्त्र से दीक्षित करने की प्रथा रही है| श्री गुरुदेव का उद्देश्य अपने शिष्य को सांसारिक कष्टों से छुटकारा दिलाकर शान्ति की अनुभूति कराना है| श्री गुरुदेव जानते हैं कि इसके लिए बुद्धि का शुद्ध होना एवं प्रवर्तियों का सात्विक होना अत्यंत आवश्यक है| बुद्धि शुद्ध होने पर आत्म विकास की प्रेरणा जागती है तथा शिष्य लौकिक एवं परलौकिक असीम सुखों को भोगने का अधिकारी बनता है|

कल प्रातः गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तुम्हें गायत्री मन्त्र से दीक्षित करेंगे| गायत्री मन्त्र सद्बुद्धि प्रदाता, प्रेरणादायक और मानव कल्याणकारी मन्त्र है| यह मन्त्र व्यक्तिगत और सामाजिक, सभी उच्च जीवन मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है| संक्षेप में, यह मन्त्र मानव मात्र का सम्पूर्ण जीवन है|

अथर्व वेद १९/७१/१ में गायत्री मन्त्र के बारे में लिखा है:

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् |
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्,
मह्यं दत्तवा व्रजत ब्रह्मलोकम् ||

अर्थात मैंने इष्टफल देने वाली वेदमाता गायत्री का स्तवन अर्थात् अध्ययन कर लिया है| हे गुरुजनो, इस का मुझे और प्रवचन कीजिये| द्विजन्मों एवं द्विजों को यह वेदमाता पवित्र करती है| स्वस्थ और दीर्घ आयु, प्राणविद्या, उत्तम सन्तानों, पशुपालन, पुण्य और यश, धनोपार्जन विद्या, ब्रह्म के तेज स्वरूप का परिज्ञान व इनका सदुपदेश मुझे देकर, हे गुरुजनों, आलोकमय ब्रह्म तक मुझे पहुंचाइये|

गायत्री मन्त्र की अनुभूति सम्राट विश्वरथ को उनकी साधना की स्थिति में हुई थी| साधना में उन्हें एक तीव्र प्रकाश का भाव हुआ जिसका स्थान शीघ्र ही एक देवी की

आकृति ने ले लिया| उस देवी के पाँच सिर थे, जो भिन्न दिशाओं में देख रहे थे| उस देवी के दस हाथों में त्रिदेव के पास रहने वाले सभी अस्त्र थे| देवी शक्ति के दर्शन करते ही सम्राट विश्वरथ नतमस्तक हुए और स्वतः ही उनके मुख से संस्कृत का एक श्लोक निकल पड़ा:

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं |
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ||

अर्थात हे तीनों लोकों की स्वामिन, मैं आपके प्रकाशमान रूप का ध्यान करता हूँ| आपका ये रूप मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे|'

संत दया बाई ने इस प्रकार बालिका सहजो को दीक्षा का महत्व समझाया|

रात्रि का तीसरा प्रहर प्रारम्भ हो चुका था| संत दया बाई ने बालिका सहजो की शैया पृथ्वी पर ही अपने समीप लगाई| बालिका सहजो यात्रा से थकी हुई भी थी, तुरंत निद्रा के आगोश में चली गई|

प्रातः जब सहजो निद्रा से जागीं तो उन्हें संत दया बाई द्वारा दी गई शिक्षा का एक एक शब्द याद था| सहजो निद्रा से जाग गईं हैं, यह जैसे ही संत दया बाई ने जाना उन्होंने सहजो को नित्य क्रिया से निवृत हो पवित्र यमुना नदी में स्नान कर शीघ्र वापस आने की आज्ञा दी|

नित्य क्रिया से निवृत होकर एवं पवित्र माँ यमुना नदी में स्नान कर जब तक बालिका सहजो बाई लौटीं तब तक संत दया बाई ने यज्ञ अग्नि प्रज्वलित कर सहजो को दीक्षा प्रदान करने के सभी प्रबंध कर लिए थे| यथा समय संत शिरोमणी श्री चरण दास जी यज्ञ बेला पर पधारे| सभी अन्य शिष्यों के साथ मंत्रोचारण के साथ सहजो को तब गुरुदेव ने गायत्री मन्त्र से दीक्षा दी और उनका दीक्षित नाम हुआ, 'संत सहजो बाई'|

दीक्षा समारोह के अगले दिन ही माता अनूपी देवी वापस घर लौट गईं| संत दया बाई एवं संत सहजो बाई दोनों ने ही उन्हें भाव भीनी विदाई दी और प्रार्थना की कि यथा

संभव वह स्वयं सहजो के पिता श्री हरि प्रसाद जी के साथ आश्रम आती रहें| स्वयं ब्रह्मचारी छीतरमल जी उन्हें घर तक छोड़ने परीक्षितपुर गए|

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से दीक्षित संत सहजो बाई संत दया बाई की अति प्रिय छोटी बहन बन गईं| दोनों बहनों का निवास एक ही स्थान संत दया बाई के कक्ष में ही रहा| संत सहजो बाई उन्हें दीदी माँ से सम्बोधित करती थीं|

संत दया बाई का जन्म सन १६९३ में हुआ था अतः वह संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से आयु में लगभग १३ वर्ष और संत सहजो बाई से लगभग ३२ वर्ष बड़ी थीं| संत दया बाई के वात्सल्य ने सहजो बाई को अपने घर की स्मृति पूर्णतः ही भुला दी| यदा कदा श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमति अनूपी देवी जी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम आते रहते थे| अपनी पुत्री सहजो के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव देख उन्हें विशेष सुख की अनुभूति होती थी|

शनैः शनैः संत दया बाई एवं गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के सानिंध्य से संत सहजो बाई के ज्ञान में नित्य प्रति वृद्धि होती रही| उन दिनों संत दया बाई ‘दया बोध’ काव्य ग्रन्थ की रचना कर रहीं थीं| 'दया बोध' ग्रन्थ गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं भगवान् श्री कृष्ण को समर्पित एक अति भक्ति पूर्ण ग्रन्थ है|

जैसे ही संत दया बाई किसी पद की रचना करतीं तुरंत सहजो बाई को उसे सर्व प्रथम सुनातीं| यद्यपि सहजो बाई स्वयं भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त थीं लेकिन कभी कभी उन्हें ऐसा लगता कि दीदी माँ दया बाई जैसा भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम पाने के लिए संभवतः उन्हें दूसरा जन्म लेना पड़ेगा| वह दीदी माँ संत दया बाई को नत मस्तक हो जातीं| उनका हृदय उनके चरण छूने को करता लेकिन संत दया बाई उन्हें अपने चरण छूने ही नहीं देती थीं| एक दिवस यह अपनी व्यथा संत सहजो बाई ने दीदी माँ संत दया बाई को बताई ही दी| दीदी माँ अत्यंत प्रेम से बोलीं, 'बहन सहजो, मैं गुरुदेव द्वारा दी दिव्य दृष्टि से देख पा रही हूँ कि तुम कृष्ण की आराध्य राधा की अति प्रिय सहेली हो| कृष्ण और राधा दोनों ही मेरे आराध्य हैं| अपने आराध्य की अति प्रिय सहेली से चरण छुलवाने का पाप मैं अपने सर पर नहीं ले सकती|’

दीदी माँ दया बाई आगे बोलीं, 'सहजो, आज मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्व जन्म की कथा सुनाती हूँ| द्वापर युग में जब भगवान कृष्ण ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया और वह ब्रज में लीला कर रहे थे तब तुमने माँ राधा की सखी ललिता के रूप में जन्म लिया था| ललिता रूप में तुम्हारा प्राकट्य राधा रानी के अंग से ही हुआ था| जब राधा और कृष्ण में लीला स्वरुप कुछ अनबन हो जाती थी तो प्रायः तुम कृष्ण का पक्ष लेती थीं, राधा जी की आलोचना करती थीं, यद्यपि तुम्हारी दृष्टि में राधा और कृष्ण एक ही थे| तुम्हारे हृदय में कोई ईर्ष्या नहीं थी| राधा और कृष्ण को संग देख कर ही तुम्हें सुख मिलता था और उनकी अनबन देखकर दुःख| तुम एक त्यागमयी गोपी थीं| जब रासलीला प्रारम्भ होती तो तुम निकुंज के द्वार पर खड़ा होकर पहरा देती थीं ताकि कोई अन्य पुरुष का प्रवेश न हो सके| रास लीला में भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरूषों का प्रवेश निषेध था| एक बार स्वयं भगवान शिव प्रभु की रास लीला देखने आए| तुमने उनको भी रास लीला में प्रवेश करने से रोक दिया था| तब भगवान शिव ने तुमसे कहा था, 'हे ललिता, कृष्ण हमारे आराध्य हैं| उनके दर्शन किए बिना हमारे हृदय को शान्ति नहीं मिलती| कोई तो उपाय होगा कि तुम हमें हमारे प्रियतम के दर्शन करा सको|'

तब ललिता जी ने कहा, 'हे भोलेनाथ, आप भली भांति जानते हैं कि रास में कृष्ण के अतिरिक्त कोई और पुरूष प्रवेश नहीं कर सकता| हाँ, यदि आपका प्रभु के दर्शन करना आवश्यक है तो आपको गोपी का श्रृंगार करना होगा|'

'भगवान् शिव शंकर ने तुरंत अनुमति दे दी| तब तुमने भोलेनाथ का श्रृंगार किया| उन्हें चोली पहनाई, कानों में कर्ण फूल डाले, घूँघट डाला, इत्यादि, इत्यादि| तब भोले नाथ का रास लीला में प्रवेश हुआ और उन्होंने पूर्ण रूप से अपने आराध्य भगवान् कृष्ण के दर्शन किए| जब यह अन्य देवताओं को पता चला तो वह भी आप के पास ऐसी ही प्रार्थना ले कर आए| आपने देवताओं की नहीं सुनी| देवताओं ने तब क्रोध कर तुम्हें कलियुग में दो बार पृथ्वी पर मनुष्य रूप में अवतार लेने का श्राप दे दिया| पहला अवतार तुमने स्वामी हरिदास जी के रूप में लिया| उस अवतार में तुमने अपनी संगीत साधना से भगवान के विग्रह रूप को प्रकट किया| आपने तानसेन एवं बैजू बावरा जैसे शिष्यों को शिक्षित किया| अपनी संगीत साधना से राधा कृष्ण को प्रगट कर सभी को उनके दर्शन कराए| अब दूसरा अवतार सहजो बाई के रूप में लिया है| इस अवतार में गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी की कृपा से तुम कृष्णमय हो कर समाधि होने पर साकेत धाम चली जाओगी|'

यह कथा सुनकर दीदी माँ के वात्सल्य पर उस दिन सहजो बाई बहुत रोई थीं| अपना सर दीदी माँ के कंधा पर रख सुबक सुबक कर कह रहीं थीं, 'दीदी माँ, मुझे छोड़कर आप कभी कहीं नहीं जाना|'

दीदी माँ बोलीं, 'सहजो बहन, जो आया है, उसे जाना तो है ही| बस अपने कर्तव्य से कभी च्युत ना हों, यही हमारी गुरुदेव और ईश्वर से कामना होनी चाहिए| स्मरण रहे सहजो कि साधु संतों की सेवा ही स्वयं में भगवान की सेवा है| संसार रूपी सागर को पार करने के लिए यदि हरि नाम नाव की तरह है, तो साधु उसका खेने वाला है| इसलिए सत्संग और साधु सेवा सदैव करते रहनी चाहिए| उनके मुख से साधु संत की सेवा भाव का एक पद निकल पड़ा|

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव |
जब संगति ह्वै साधकी, तब पावै सब भेव ||
साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान |
मेटैं दुविधा जीव की, सब का करैं कल्यान ||
कोटि जक्ष ब्रत नेम तिथि, साध संग में होय |
विपम ब्याधि सब मिटत है, सांति रूप सुख जोय ||
साधू बिरला जक्त में, हष सोक करि हीन |
कह न सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ||
कलि केवल संसार में और न कोउ उपाय |
साध-संग हरि नाम बिनु मन की तपन न जाय ||
साध-संग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय |
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारे खोय ||

दीदी माँ दया बाई का स्वर अत्यंत सुरीला था| इस पद के भक्ति भाव समाहित गायन से सहजो बाई पूर्णतः अचेतन भाव में चली गईं| उनके नैनों से अश्रु बहने लगे| दोनों गुरु बहनों ने एक दूसरे को आलिंगन में बाँध लिया|

इसी प्रकार समय बीतता चला जा रहा था| गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के साथ दीदी माँ दया बाई सहजो बाई को वेद, वेदान्तों का ज्ञान तो देतीं ही थीं परन्तु उन शिक्षाओं में गुरु भक्ति का विशेष स्थान होता था| सहजो बाई के हृदय में गुरु

भक्ति का बीज इस प्रकार जम गया कि उन्होंने एक अत्यंत सुन्दर रचना कर स्वयं दीदी माँ दया बाई को भी चौंका दिया|

राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने जन्म दियो जग माहीँ, गुरु ने आवागमन छुड़ाईं |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने पाँच चोर दिए साथा, गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने कुटुम्ब जाल में घेरी, गुरु ने काटी ममता बेड़ी |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने रोग भोग उरझायू, गुरु जोगी कर सबई छुड़ायू |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने कर्म भर्म भर्मायू, गुरु ने आतम रूप दिखायू |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
हरि ने मोसूँ आप छिपायो, गुरु दीपक दे ताहि दिखायो |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
फिर हरि बँध-मुक्ति गति लाए, गुरु ने सब ही भर्म मिटाए |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||
चरणदास पर तन मन वारूं, गुरु ना तजू हरि को तज डारूँ |
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ||

इस पद में सहजो बाई ने गुरुदेव के प्रति विनम्र एवं आत्मीय भाव में अपने मन के भाव उजागर कर दिए| सहजो बाई ने सार-दर-सार सत्य को प्रकट कर दिया|

इस पद के द्वारा सहजो बाई ईश्वर को भी सन्देश देती हैं| गुरु के सम हरि को न निहारूं, अर्थात जिस मन से, भाव से, आदर से, समर्पण से, श्रद्धा, आस्था से मैं अपने गुरु को देखती हूं, उससे हे हरि, मैं तुम्हें भी नहीं देखती| गुरु के दर्शन मात्र से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है, मैंने इस भाव को जान किया है| गुरु दर्शन से हृदय को ऐसी शान्ति मिलती हैं जैसे कोई बहुत बड़ा अनमोल कोष पा लिया हो|

सहजो बाई आगे कहती हैं, ‘हरि ने जन्म दिया जग मांहि, गुरु ने आवागमन छुड़ाई|' हम भूजन चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटते रहते हैं, जन्म, मृत्यु, फिर जन्म| यह क्रम तो समाप्त ही नहीं होता| परन्तु गुरु ने ऐसी सीख सिखाई, ऐसी विधि बताई कि आवागमन की बात ही समाप्त कर दी|

सहजो बाई आगे कहती हैं कि हरि ने कुटुम्ब जाल में फंसा कर माया मोह में डाल दिया, परन्तु 'गुरु ने काटी ममता बेड़ी'| इस संसार में जिस का आप से स्वार्थ पूरा हो, वह तो प्रसन्न हो जाता है और जिस के मन अनुसार आपने कार्य नहीं किया, वह क्रोधित हो जाता है| गुरु ने इस मोह ममता की डोरी ही काट दी| सारा झंझट ही समाप्त कर दिया| यद्यपि संभवतः यह सुलभ तो नहीं है पर गुरु का आदेश मान लो, सच्चाई को जान लो, गुरु की मान लो तो कल्याण हो जायेगा| गुरुदेव कहते हैं, परिवार से प्रेम करो पर मोह में मत फंसों| यही तो जीवन में प्रसन्नता एवं आनन्द अनुभव करने का रहस्य है|

सहजो बाई आगे सन्देश देती हैं कि 'हरि ने रोग भोग में उलझाया| गुरु ने जोगी बन कर यह सब छुड़ाया|' भगवान ने तो शरीर दिया| शरीर तो रोगों का घर है| भोगों में लालायित क्षणिक सुख की अनुभूति शरीर को रोगी बना देती है| मनुष्य काम, क्रोध, मोह, लोभ में कितने अनुचित कार्य करता है| इन दुर्गुणों के कारण अपने लिये स्वयं संकट ले लेता है| गुरु, शिष्य को इन भोगों के प्रति उदासीन बना कर उसे मुक्त कर देता है|

सहजो बाई आगे कहती हैं, 'हरि सर्वशक्तिमान हैं| सर्व नियन्ता हैं| सब कुछ उन्हीं के बस में है| सब कुछ करने वाले वही हैं किन्तु दृष्टिगोचर नहीं होते| स्वयं को छुपा कर रखा हुआ है| और गुरु, जिन्होंने इतने उपकार किये, उन के साक्षात दर्शन करना सुलभ है| उनके देव रूपी स्वरूप को देख कर धन्य हो जाओ, बात कर लो, आशीष ले लो, गुरु की कृपा पा लो, साक्षात दर्शन करो|’

गुरु की कृपाओं से धन्य सहजो बाई अपने सद्गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास पर तन-मन वार कर कहती हैं| मेरा निर्णय ठीक ही कि 'गुरु न तजूँ, हरि तज दूँ|'

इस पद से प्रसन्न हो दीदी माँ दया बाई ने सहजो बाई का आलिंगन कर लिया| उनके स्वयं के मुख से भी एक रचना निकल पड़ी|

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै | गुरु बिनु चौरासी मन जावै ||
गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागै | गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ||
गुरु ही दीन दयाल गोसाईं | गुरु सरनै जो कोइ जाई ||
पलटैं करैं काग सूँ हंसा | मन को मेटत हैं सब संसा ||
गुरु हैं सागर कृपा निधाना | गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना ||
हानि लाभ दोउ सम करि जानैं | हदै ग्रन्थ नीकी विधि मानैं ||
दै उपदेश करैं भ्रम नासा | दया देत सुख सागर बासा ||
गुरु को अहिनिस ध्यान जो करिये | बिधिवत सेवा में अनुसरिये ||
तन मन सूं अज्ञा में रहिये | गुरु आज्ञा बिन कछू न करिये ||

इसी प्रकार पता ही नहीं चला किस प्रकार दस वर्ष बीत गए| सन १७४६ में दीदी माँ दया बाई गंभीर रूप से बीमार हो गईं| उनका भू जन्म उद्देश्य तो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के साथ साथ सहजो बाई को भगवद प्राप्ति कराना था जो अब पूर्ण हो चुका था| संत शिरोमणी एवं सहजो बाई की उपस्थिति में सहजो बाई को गुरुदेव को समर्पित कर दीदी माँ दया बाई ने इस पार्थिव शरीर को छोड़ दिया| सहजो बाई ने अपनी माँ को खो दिया था| हृदय ने तो बहुत चाहा कि वह दहाड़ मार कर रोए परन्तु गुरुदेव के श्री मद्भगवद्गीता ज्ञान ने उन्हें यह करने से रोका|

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते |
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ||

गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने सहजो बाई को ज्ञान दिया, 'हे पुत्री, आत्मा को अव्यक्त, अकल्पनीय तथा अपरिवर्तनीय कहा जाता है| यह जानकार तुम्हें शरीर के लिए शोक नहीं करना चाहिए| दया बाई के जीवन उद्देश्य की पूर्ति हो गई और वह प्रभु के समीप साकेत धाम चलीं गईं| उनका अब पुनर्जन्म नहीं होगा| वह साकेत धाम में ही अब तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगी| जब तक प्रभु ने तुम्हें श्वासें दीं हैं तब तक दया बाई के कार्यों को आगे बढ़ाओ|'

सहजो बाई ने तब अपने आप को सम्हाला| सर्व प्रथम उन्होंने दीदी माँ दया बाई के समस्त काव्य पदों को एकत्रित किया और उन्हें 'दया बोध' ग्रन्थ नाम से प्रकाशित किया| दीदी माँ दया बाई के दिखाए मार्ग पर वह चलने लगीं| गुरुदेव की सेवा का पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया| अब वही गुरुदेव का भोजन अपने हाथों से स्वयं बना उन्हें खिलातीं| गुरुदेव को तो समाज कल्याण कार्यों से अवकाश ही नहीं मिलता था| उन्हें न अपने तन की चिंता थी, न अपने स्वास्थ्य की| सहजो बाई ने यह सुनिश्चित किया कि गुरुदेव को समय पर इस तन को जीवित रखने के लिए भोजन मिलता रहे| साथ साथ ही गुरुदेव के समाज कल्याण कार्यों में हाथ बटाने लगीं| सहजो बाई का कवि हृदय उन्हें काव्य लिखने के लिए भी बाध्य करता कहा| सहजो बाई ने प्रमुख भक्ति ग्रन्थ ‘सहज प्रकाश’ की तब रचना की|

सहज प्रकाश - एक झलक

‘संतबानी पुस्तक माला’ इलाहाबाद द्वारा 'सहज प्रकाश' का सन १९७७ में १२वां संस्करण 'सहजो बाई की बानी' नाम से प्रकाशित किया गया| 'सहजोबाई की बानी' ग्रन्थ को २१ अध्यायों में विभाजित किया| माता सहजोबाई द्वारा रचित 'सहज प्रकाश' में लिए गए प्रत्येक विषय की हम यहां संक्षिप्त में चर्चा करेंगे|

'सहज प्रकाश' मधुर ब्रज भाषा में रचित एक अत्यंत मनमोहक काव्य है| इस काव्य में भक्ति से लेकर मनुष्य जीवन कर्म की सभी शिक्षाएं निहित हैं|

जैसा उपरोक्त इस पुस्तक में चर्चित है, सहजो बाई गुरुदेव को ईश्वर से भी अधिक उच्च स्थान देती थीं| वह संत कबीर जी के इस सिद्धांत को शत प्रतिशत अनुसरण करती थीं|

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय |
बलिहारी गुरू अपने गोविन्द दियो बताय ||

'सहज प्रकाश' पुस्तक में माँ सहजो बाई का गुरु के प्रति समर्पण पूर्ण रूप से देखा जैसा सकता है| माँ इस ग्रन्थ का प्रारम्भ गुरु वन्दना से करती हैं|

नमो नमो गुरु देवन देवा | नमो नमो गुरु अगम अभेवा ||
नमो नमो निरलम्ब निरासा | नमो नमो परमातम बासा ||
नमो नमो त्रिभुवन के स्वामी | नमो नमो गुरु अंतरजामी ||
नमो नमो गुरु पातक हरता | नमो नमो पारायण करता ||
गति मति छाके आनंद रूपा | नमो नमो गुरु ब्रह्म स्वरूपा ||
नमो नमो मम प्रान पियारे | नमो नमो तिर्गुन तें नियारे ||
भक्ति ज्ञान जोग के राजा | सहजो के पुरबो सब काजा ||
जो कोई सरन तुम्हारी आयो | तुरीयातीत बिज्ञान बसायो ||

भगवान् महर्षि सुकदेव सहजो बाई के गुरु संत चरण दास जी के गुरुदेव थे| अतः सहजो बाई उन्हें दादा रूप में सम्बोद्धित कर उन्हें और गुरुदेव संत शिरोमणी चरण दास जी दोनों को ही प्रणाम करती हैं|

कर जोरूँ परनाम करि, धरूँ चरण पर शीश |
दादा गुरु सुकदेव जी, पूरन बिस्वा बीस ||
परमहंस तारन तरन, गुरु देवन गुरु देव |
अनुभै बानो दीजिये, सहजो पावे भेव ||

माँ सहजो बाई कहती हैं कि गुरु चार प्रकार के होते हैं| लेकिन मेरे गुरु चरण दास जी तो सर्व समर्थ हैं, चारों गुरु प्रकार उनमें समाहित हैं|

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग |
गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग ||
चरणदास समरथ गुरु, सर्ब अंग तेहि मांहि |
जैसे कूँ तैसा मिले, रीता छाँड़ें नाहिं ||

हरि की कृपा पाना कठिन कार्य है, वह प्राप्त हो भी सकती है और नहीं भी| परन्तु गुरु तो सदैव कृपा कर बुद्धि को निर्मल रखते हैं|

हरि कृपा जो होए तो, नाहीं होए तो नाहिं |
पै गुरु कृपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जांहि ||

इस भाव सागर से पार उतारने के लिए गुरु के चरण ही तीर्थ हैं| जिन्होंने वह पकड़ लिए, उनका ही कल्याण हुआ|

सब तीरथ गुरु के चरन, नित ही परबी होए |
सहजो चरनोदक लिए, पार रहित नहीं कोय ||

जो गुरु की आज्ञा सिरोधार्य कर कार्य करता है, उसी शिष्य का कल्याण होता है|

गुरु अज्ञा दृढ करि गहै, गुरु मत सहजो चाल |
रोम रो म गुरु को रटै, सो सिष होए निहाल ||

गुरु की अवज्ञा करने वाला एवं उनमें दोष देखने वाला शिष्य कभी निर्वाण नहीं पा सकता|

गुरु अज्ञा मानें नहीं, गुरहि लगावे दोष |
गुरु निंदक जग में दुःखी, मुए न पावे मोष ||

गुरु की महिमा वर्णन करती हुई माँ सहजो बाई कहती हैं|

परमेश्वर सूं गुरु बड़े, गावत बेद पुरान |
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान् ||
दीपक ले गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे मांहि |
काम क्रोध मद मोह में, सहजो उरझो नाहिं ||
सहजो गुरु परताप सूं, होए समुन्दर पार |
बेद अर्थ गूंगा कहै, बानी कित इक बार ||
निस्चै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार |
चरणदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार ||
चिउंटी जहां न चढ़ सके, सरसों न ठहराय |
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ||
सहजो गुरु ऐसा मिला, जैसे धोबी होय |
दै दै साबुन ज्ञान का, मलमल डारे धोय ||

माँ सहजो ऐसे धूर्त गुरुओं से बचने का सुझाव देती हैं जो आपके धन के लालायित हैं|

ऐसे गुरु तो बहुत हैं, धूत धूत धन लेंहिं |
सहजो सतगुरु जो मिलें, मुक्ति धाम फल देंहिं ||

गुरु एवं ब्रह्म की प्राप्ति के लिए लगन आवश्यक है| लगन एवं सत्संग, इन दोनों का हृदय में संगम सुख, शान्ति और अंततः मोक्ष प्राप्त कराता है|

साध मिले पूरी भई, जनम जनम की आस |
सहजो पायो भाव तें, सतसंग में बास ||
साध मिले हरि ही मिलें, मेरे मन परतोत |
सहजो सूरज धूप ज्यों, जल पाले की रीत ||
साध संग में चांदना, सकल अन्धेरा और |
सहजो दुर्लभ पाइए, सतसंगत में ठौर ||
जो आवे सतसंग में, जाति बरन कुल खोय |
सहजो मैल कुचैल जल, मिले सु गंगा होय ||

माता सहजो बाई ने वृद्ध अवस्था आने पर भी अपने आप को ईश्वर को समर्पित न करने पर प्राणियों को डांट लगाई है| एक ईश्वर ही तुम्हें जीवन में सुख एवं शान्ति पूर्वक मरण प्रदान करा सकता है|

सहजो धोले आइया, झड़ने लगे दाँत |
तन गुंझल पड़ने लगीं, सूखन लागी आंत ||
ऐसी बरस ऊपर लगी, बिरध अवस्था होए |
आगे की थिरता नहीं, पिछली गई सब खोय ||
तीन अवस्था बीत कर, चौथी आई मंद |
वृद्ध अवस्था सिर चढ़ी, ताहू न चेता अंध ||
चार अवस्था खो दईं, लियो न हरि को नाम |
तन छूटे जम कूटि है, पापी जम के ग्राम ||
आया जगत में क्या किया, तन पाला कै पेट |
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट ||

माँ सहजो ने मृत्यु दशा का बड़े ही अच्छे प्रकार से वर्णन किया है| अगर प्राणी समय से नहीं चेता और प्रभु की शरण नहीं गया, तो इस चौरासी लाख योनी के जन्म-मृत्यु के जाल में फंसा रह जाएगा|

जम की सूरत देखकर, सुधि बुधि गई नसाय |
सहजो जो संकट बन्यो, मुख सूँ काहू ना जाय ||
सहजो मिरतू के समय, पीड़ा होय अपार |
बीछू एक हज़ार ज्यों, डंक लगाई इकसार ||
पकरि बाँध जम ले चलै, धर्मराय के पास |
कई बार आगे गए, छप्पन जहां तरास ||
कई भांति के दंड हैं, सहजो नाना त्रास |
नरक कुंड दुःख भुगति करि, फिर चौरासी बास ||

आत्म-हत्या अथवा किसी भी प्रकार की अकाल मृत्यु को माँ सहजो ने बड़ा ही दुःखदायी दर्शाया है| ईश्वर के विमुख रहने से ही प्राणी इस प्रकार की मृत्यु को प्राप्त कर असहनीय दुःख झेलता है|

काल मौत जो आगे गाई | अकाल मृत्यु कहै सहजो बाई ||
सस्तर मौत मरे जो कोई | यह भी मौत अकालहिं होइ ||
बिगड़े रोग पत्थ नहीं कीन्हो | यह भी मौत अकालहिं चीन्हो ||
कोई भांति जो बिष खा मरै | और जीवित पावक में जरै ||
जल में डूब जाए जो कैसे | लागे प्रेत मरै कोई ऐसे ||
सांप डसे छूटे जो काया | महलापतनी तें दबि जाया ||
कोई ठग फांसी दे मारा | जंगल पसु तोड़ जो डारा ||
यह सब मृत्यु अकाल दिखाई | मुए सूँ योनि पिसाचर पाई ||
प्रेत योनि कूँ पाए के, दुःखी भये अज्ञान |
आप दुःखी दुःख देत हैं, उठ गई सब पहिचान ||

माँ सहजो बाई हरि के नाम भजन को ही मुक्ति का मार्ग बताती हैं| शास्त्रों में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इत्यादि की शिक्षा दी है परन्तु माँ सहजो के अनुसार केवल और केवल, 'हरि भक्ति' ही प्राणी को चौरासी लाख योनि के जन्म-मृत्यु के जाल से छुड़ा सकती है|

लाख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतंत |
जनम मरन छूटे नहीं, बिना सरन भगवंत ||
जज्ञ दान तीरथ करै, पूजा भांति अनेक |
मुक्ति ना पावे सहजिया, बिना भक्ति हरि एक ||
इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्मा की आब |
आगे तो भी मरन है, सहजो सकल बहाव ||
राम नाम ले सहजिया, दीजै सर्ब अकोर |
तीन लोक के राज लों, अंत जाहुगे छोर ||
बिना भक्ति थोथे सभी, जोग जज्ञ आचार |
राम नाम हिरदे धरो, सहजो यही विचार ||
चौरासी के दुःख छटें, छप्पन नर्क तरास |
राम नाम ले सहजिया, जमपुर मिले ना बास ||
काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भेज हरि को नाम |
निस्चै सहजो मुक्ति भवे, लहै अमरपुर धाम ||

माँ सहजो ईश्वर प्रेम को अत्यंत महत्व देतीं हैं| ईश्वर प्रेम, जन सेवा भाव एवं ईश्वर भक्ति, यही प्रभु से मिलन एवं जन्म-मृत्यु से छुटकारा दिला सकते हैं| मंत्रोचारण से ज्ञान तो मिल सकता है परन्तु प्रभु नहीं, ऐसा माँ सहजो मानती हैं|

प्रेम दिवाने जो भए, मन भयो चकनाचूर |
छके रहे घूमत रहें, सहजो देख हज़ूर ||
प्रेम दिवाने जो भए, पलट गयो सब रूप |
सहजो दृष्टि ना आवै, कहा रंक का भूप ||
प्रेम दिवाने जो भए, जाति बरन गई छूट |
सहजो जग बौरा कहै, लोग गए सब फूट ||
प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावे गुरु के ध्यान |
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजे केवल ज्ञान ||

माँ सहजो ने प्रभु के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों की अति उत्तम व्याख्या की है| सगुण प्रभु की उपासक माँ सहजो कहती हैं कि हम भक्तों को तारने के लिए ही निर्गुण

प्रभु ने सगुण रूप धारण किया है| अतः सगुण ईश्वर को स्मरण कर इस भाव सागर से तर जाओ|

निराकार आकार सब, निर्गुण और गुनवंत |
है नांही सूँ रहित है, सहजो यों भगवंत ||
नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप |
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि प्रगट हरि गूप ||
वही आप परगट भयो, ईसुर लीला धार |
मांहि अजुध्या और ब्रज, कौतिक किए अपार ||
भक्त हेतु हरि आइया, पिरथी भार उतारि |
साधन की रच्छा करी, पापी डारे मारि ||
निर्गुन सूँ सर्गुन भए, भक्त उधारनहार |
सहजो की दण्डौत है, ताकूँ बारम्बार ||
गीता में श्री कृष्ण ने, वचन कहे सब खोल |
सब जीवन में मैं बसूं, कै चर कहा अडोल ||
मैं अखंड व्यापक सकल, सहज रहा भर पूर |
ज्ञानी पावे निकट ही, मूरख जाने दूर ||
जोगी पावे जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार |
सहजो पावे भक्ति सूँ, जा के प्रेम आधार ||
धन्य जसोदा नन्द धन्य, धन्य ब्रजमंडल देस |
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल के भेस ||

माँ सहजो बाई कृष्ण के प्रेम में इतनी तल्लीन हैं कि वह होली उन्हीं के साथ खेलती हैं|

मैं तो खेलूं प्रभु के संग, होरी रंग भरी |
जित देखूं तित रमि रहौ रे, सब में व्यापक है हरी ||
सब कुछ भयो दियो सुख जिन कूँ, अद्भुत लीला है करी |
नाना जतन किए मिलवे कूँ, प्रीतम पायो हम घरी ||
पावत ही सब भ्रम भय भागे, आवागमन छूटी लरी |
जीवन मुक्त भयो मन मोरो, ब्याधा सब आसा जरी ||

अमर लोक पद फगुवा पैवे, जनम मरन बिपता दली |
चरणदास गुरु किरपा कीन्हे, सहजो हिय आनंद हली ||

माँ सहजो बाई ने हरि की लीला का इस पद में अति सुन्दर चित्रण किया है|

तेरी लीला अधिक सुहावनी |
देखि देखि मन हुलसत है, संतन के मन भावनी ||
तत गुन करि ब्रह्मण्ड बनाया,अधर धरयो अचरज भयो |
जाके मध्य यही संसारा, भांति भांति रंग रंग हयो ||
सात दीप नौ खंड रचे हैं, स्वर्ग नरक पाताल हीं |
इच्छा करत सबै बन आयो, होए गया तत्काल हीं ||
माया अगम अपार तुम्हारी, बरन सके कहाँ बेद है |
तीन गुनन तक बुध पहुंचत है, परे तुम्हारो भेद है ||
छिन में उत्पति परलय छिन में, जो चाहो सब कुछ बनै |
चरणदास गुरु दृष्टि देइ जब, गुनाबाद सहजो बनै ||

इस प्रकार अनगिनत पदों की रचना कर माता सहजो बाई अमर हो गईं|

भगवान् कृष्ण दर्शन एवं समाधि

माँ सहजो बाई की गुरु भक्ति का चमत्कार तो देखिए कि स्वयं भगवान् कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए| एक दिन दोपहर को जब सहजो बाई गुरुदेव संत चरण दास जी के लिए भोजन बना रहीं थीं, तब स्वयं भगवान् कृष्ण एक युवा ब्रह्मचारी के रूप में माँ के समक्ष प्रगट हुए|

"माँ बहुत भूख लगी है, भोजन दो", ब्रह्मचारी के शब्द माँ को सुनाई दिए|

ब्रह्मचारी का स्वर सुन माँ बाहर आईं| दिव्य दृष्टि से पहचान लिया कि ईश्वर उनके द्वार आए हैं| लेकिन यह प्रपंच क्यों? ब्रह्मचारी का रूप क्यों? मुरली बजाते हुए मेरे कन्हैया मेरे समक्ष क्यों नहीं आये? माँ ने सोचा, कोई बात नहीं| प्रभु प्रसन्न हों अथवा अप्रसन्न| मैं भी आज उनके साथ परिहास करूंगी| अप्रसन्न हो भी जाएंगे तो गुरुदेव हैं उनको मनाने के लिए|

सहजो बाई बोलीं, 'हे ब्रह्मचारी, तुम्हें भोजन अवश्य मिलेगा| अभी गुरुदेव भोजन के लिए शीघ्र पधारने वाले हैं| ग्रीष्म काल है और आज गर्मी भी बहुत है| भोजन करते समय तुम उनको पंखा झल शीतलता प्रदान करना| गुरुदेव के भोजन समाप्ति पर मैं तुम्हें भी भोजन दूंगी और देखो, तुम गुरुदेव के समक्ष नहीं आ जाना, बस दूर से ही पंखा झलना|’

माँ सहजो जानती थीं कि अगर ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् स्वयं गुरुदेव के समक्ष आ गए तो वह तुरंत उन्हें पहचान जाएंगे और उनका खेल बिगड़ जाएगा| भक्त के प्रति भगवान् का प्रेम तो देखिए| ब्रह्मचारी के रूप में कान्हा बोले, "बस माँ, इतनी सी बात| यह तो मेरा बड़ा ही सौभाग्य होगा कि मुझे गुरुदेव की सेवा करने का अवसर मिलेगा|”

गुरुदेव यथा समय भोजन के लिए पधारे| कुटिया में एक विचित्र सुगंध का अनुभव कर सहजो से बोले, 'सहजो, यह सुगंध कहाँ से आ रही है? कौन सा पुष्प लाई हो आज अर्पण के लिए जिसकी सुगंध इतनी महक रही है|"

भोली भाली सहजो क्या उत्तर दें| झूंठ भी गुरुदेव से नहीं बोल सकतीं| फिर गुरुदेव भी सिद्ध दिव्य दृष्टि वाले महान संत थे| वह स्वयं ही बोले, 'कन्हैया, छुपने की आवश्यक्ता नहीं| दर्शन दो|"

भगवान् प्रगट हो गए| संत जी ने और इसके पश्चात सहजो ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया| भक्त और भगवान् दोनों ने प्रेम पूर्वक भोजन किया|

भोजन पश्चात भगवान् माँ से बोले, 'सहजो मैं तुम्हारी गुरु भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूँ, वर मांगो|"

सहजो बोलीं, 'हे प्रभु आपने मुझे गुरुदेव दे दिए| अब मेरी कोई कामना नहीं|"

भगवान् ने प्रसन्नता से उनके सर पर अपना कर रखा और बोले, ''सहजो, तुम सरस्वती का दूसरा ही रूप हो| मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ| इस जीवन में तुम भक्ति के साथ संत चरण दास जी द्वारा बताए मार्ग पर चलते हुए जन सेवा करो| तुम्हारी समाधि समय मैं स्वयं तुम्हें विमान में साकेत धाम के लिए लेने आऊँगा|'

प्रभु ने अपना वचन निभाया| सन १७८२ में गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास की समाधि के पश्चात सहजो बाई वृंदावन आ गईं और वहीं उन्होंने अपने आश्रम की स्थापना की| भगवान् कृष्ण की भक्ति में लीन २४ जनवरी सन् १८०५ को भक्तिमती सहजो बाई ने वृंदावन में देह त्याग किया| कहते हैं कि उस समय एक तीव्र प्रकाश का अनुभव हुआ और विमान का स्वर लोगों को सुनाई दिया| माँ सहजो बाई उसी विमान में प्रभु के साथ बैठकर साकेत धाम चली गईं|

श्री राम कथा संस्थान उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करता है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करता रहता है।

श्री राम कथा संस्थान
३५, मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com

लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा

सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रुचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है| संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया| उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़, ऑस्ट्रिया, से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधि विशिष्टता के साथ प्राप्त की| सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिआ में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिआ के खनन उद्योग में कार्य रत हैं|

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की| यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है| यह लघु उपन्यास ' शबरी: महान राम भक्त की कथा' उसी प्रयास के फल स्वरूप एक प्रस्तुति है|